* श्रीः *

सिपाही-विद्रोह

या

सन् सत्तावन का गदर।

(सन् १८५७ के प्रसिद्ध गदर का सचित्र-सम्पूर्ण इतिहास
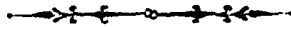
लेखकः—

'मनोरञ्जन'—सम्पादक,

श्रीयुक्त पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

प्रकाशक—

उमादत्त शर्मा,

राष्ट्रीय-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, रत्नाकर प्रेस।

१९२—१९४ हेरीसन रोड,

कलकत्ता।
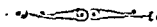
संवत् १९७६ वि०।

प्रथम संस्करण २०००

मूल्य ४)
सजिल्द ४॥)
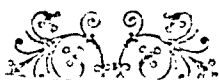
Printed and published by,
UMADATTA SHARMA.
at the-
Ratnakar Press, Rashtriya-Grantha-Ratnakar-Karyalaya
162-164 Harrison Road, CALCUTTA.
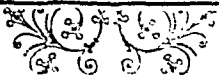
"For to think that a handful of people can, with the greatest courage and policy in the world, embrace too large an extent of Dominion, it may hold for a time, but it will fail suddenly."

——*BACON.*

निवेदन।
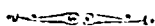
कई वर्षसे—'सिपाही-विद्रोह' प्रकाशित करनेकी इच्छा थी, वह कितनी ही झञ्झटों और अड़चनोंके वाद आज पूरी हो रही है। कार्यारम्भ करने पर इसके प्रकाशित करनेका विज्ञापन दिया गया था, यह देख हमारे और कई भाइयों से भी इसके प्रकाशित करनेका लोभ, संवरण न हुआ। हमारे और कई भाइयों ने हमसे भी पहले 'रजनी वावू' के 'सिपाहो युद्धेर-इतिहास' नामक वङ्गला पुस्तकके छोटे-वड़े अनुवाद प्रकाशित कर दिये, कई प्रकाशित होने वाले हैं। इसके लिये वे हमारा धन्यवाद स्वीकार करें, क्योंकि हमारे विज्ञापन से पहले हमारे इन प्रतिष्टित भाइयों को इसकी कभी जरूरत महसूस नहीं हुई थी!

इस इतिहास का मसाला संग्रह करने तथा इसके प्रकाशन में हमें श्रीयुक्त वावू हरिहरनाथसिंह वी० ए० वी० एल० तथा श्रीयुक्त पं० हेमचन्द्र जोशी वी० ए० से वहुत कुछ परामर्श मिले हैं, चित्रोंके संग्रह करनेमें स्थानीय इम्पीरियल लायब्रेरीके लायब्रेरियन-साहव तथा लण्डनके मि० फिलिप्स और लण्डन-प्रवासी वंधुवर-पं० ज्ञानचन्द्रजी एम० ए० से वहुत कुछ सहायता मिली है; इस-लिये हम इनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

पुस्तकके लेखक—'मनोरञ्जन'—सम्पादक तथा हिन्दीके प्रौढ़ और यशस्वी लेखक—श्रीयुक्त पं० ईश्वरीप्रसाद शर्माने इसके लिये हमारे अनुरोधसे महीनों किताबें पढ़ीं, विवेचन किया और जहां-तहां लायब्रेरियोंमें जानेकी दौड़-धूप कर इसे सर्वाङ्गपूर्ण करनेकी यथासाध्य चेष्टा की, इसके लिये हम उन्हें क्या धन्य-वाद दें ? यदि उनकी यह कृति नाप तोल कर ठीक उतरी, तो हिन्दी-संसार उनका एहसान मान सकता है, नहीं तो हमने और उन्होंने कुछ भी नहीं किया

प्रकाशक ।

भूमिका।
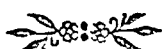
भारतवर्षके इतिहासमें सन् १८५७ ई० बहुत ही प्रसिद्ध है। इसी साल यहां वह प्रसिद्ध 'सिपाही-विद्रोह' आरम्भ हुआ था, जो इतिहासमें अपनी विचित्रता और भयङ्करताके कारण एक महत्वपूर्ण घटना माना गया है। सर्वसाधारण में 'सन् ५७ का बलवा' लोकोक्ति की तरह प्रसिद्ध हो गया है। खेद है, कि इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक-घटनाका कोई इतिहास अब तक हिन्दीमें नहीं था। अँगरेजीमें इस विषयकी कितनी ही छोटी-बड़ी पुस्तकें निकल चुकी हैं। बङ्गला में भी सुलेखक बाबू रजनीकान्त गुप्त का पांच खण्डों में विभक्त 'सिपाही-युद्धे र-इतिहास' है, जो समस्त देशी भाषाओं के साहित्यमें इस विषयकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक हैं और जिसमें बड़ी ही मनोहारिणी भाषामें इस विद्रोहकी प्रायः सभी घटनाएं वर्णित हैं। अँगरेजीमें 'के' और 'मालेसन' साहबोंका इतिहास इस विषयमें प्रमाणिक माना जाता है और इन लेखकोंने दोनों पक्षों की बातें, अनेक स्थलोंमें, बड़ी ही निष्पक्षपातिता के साथ लिखी हैं। इनका इतिहास देखने पर हमें मालूम हुआ, कि बाबू रजनीकान्त गुप्त को अपने इतिहासके लिये बहुतसा मसाला इन ही से मिला है। बड़े ही दुःखकी बात है, कि जहां सैकड़ों भले बुरे उपन्यासों के अनुवाद, बङ्गला से हिन्दीमें किये

जाते रहे, वहां अब तक किसी ने गुप्तजी के इतिहास की ओ
ध्यान भी नहीं दिया—स्वतन्त्र परिश्रम करने की तो बात ही
अलग है।

इसी अभाव को दूर करने के लिये हमने कुछ अँगरेज़ी-आदि
की पुस्तकों के सहारे यह ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया औ
उत्साही प्रकाशक बन्धुवर पं० उमादत्तशर्मा ने इसे प्रकाशि
करने का बीड़ा उठाया ; ग्रन्थ बहुत शीघ्र लिखा जाता औ
अबतक कभीका छप जाता, पर लिखना आरम्भ करते ही हम
तो ऐसे बीमार पड़े, कि दो महीने तक चारपाई पर पड़े रहे
और प्रकाशक महोदय भी अपना प्रेस स्थापित करने की धुन में
लगे। इधर उनका विज्ञापन कितने ही समाचार-पत्रों में
निकलते देख, कुछ और प्रकाशक भी इसी ग्रन्थ को
निकालने के लिये तत्पर हो गये और उनके ग्रन्थ इसके पहले
प्रकाशित भी हो गये। पर चूंकि हमारा सङ्कल्प पुराना था
कितने ही फर्मे छप चुके थे और ग्रन्थ भी आधे से अधिक लिखा
जा चुका था, इस लिये हमने इसे लिखने और प्रकाशकों ने
छापने से हाथ न खींचा और उन इतिहासों के छप जाने पर भी
आज भी यह ग्रन्थ अपनी कितनी ही विशेषताओं के साथ लोक
लोचनों के सम्मुख आता है। आशा है, कि सुविवेचक ग्राहक
और पाठक, इस ग्रन्थ की विशेषताओं की ओर अवश्य ध्यान
देंगे। हाँ, इतना कह देना परम आवश्यक प्रतीत होता है, कि
पूर्व-प्रकाशित ग्रन्थोंमें से एकमें जैसा वर्णन-बाहुल्य है और दूसरे
घटना-सङ्कोच, वैसा आप इसमें नहीं पायेंगे, हमने सिधी-

सादी भाषा में प्रायः सभी घटनाओं का समावेश कर दिया हैं और स्थान-स्थान पर अपनी सम्मति भी दे दी है, जो वर्त्तमान कालके पाठकोंको निश्चय ही रुचिकर प्रतीत होगी। यद्यपि रजनी-बाबूकी बङ्गला पुस्तकसे भी हमें बड़ा सहारा मिला है, तथापि न तो यह ग्रन्थ उनकी पुस्तक का 'इत्र' है, न पालिश किया हुआ अनुवाद। जैसे अन्यान्य सहायक ग्रन्थों से, जिनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित की गयी है,हमने सहायता ली है,वैसे ही गुप्तजी के बहुमूल्य ग्रन्थसे भी आवश्यकतानुसार साहाय्य ग्रहण किया हैं। जो लोग इस ग्रंथको ध्यानपूर्वक आदिसे अन्ततक पढ़ जाने का श्रम उठायेंगे, उन्हें हमारे इस कथनकी यथार्थता स्पष्ट विदित हो जायेगी।

पुस्तकके अन्तमें 'सिंहावलोकन' शीर्षक जो अध्याय है, उसमें विद्रोह पर आलोचनात्मक विचार-परम्परा प्रकाशित की गयी है। उसे एक वार खूब गौरसे पढ़ जाने की हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं; क्योंकि उसमें विद्रोह के विषयमें नये ढङ्गसे विचार करने का प्रयास किया गया है। आशा है कि वह अंश पाठकोंको अवश्य रुचिकर प्रतीत होगा।

हमारे कलकत्ते न रहनेके कारण पुस्तक के प्रूफ देखने का भार प्रेसके प्रूफरीडरोंके ही ऊपर रहा। इस से यत्र-तत्र कुछ अशुद्धियां रह गयी हैं, आशा है पाठक सुधार कर पढ़ेंगे।

आरा, विजयादशमी, सं० १९७९। } निवेदक, ईश्वरीप्रसाद शर्मा

सहायक ग्रन्थों की सूची।

हमने इस ग्रन्थके लिखनेमें निम्न-लिखित भिन्न-भिन्न भाषाओं के ग्रन्थों से यथास्थान अच्छी सहायता प्राप्त की है, एतदर्थ हम इनके लिखनेवालों के प्रति, हृदय से कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।

1. Sepoy war, by Sir John Kaye, K.C.S.I., F.R.S.
2. The story of the Indian Mutiny, by Henry Gilbert.
3. My recollections of the Sepoy revolt, by Mrs. Muter
4. Two months in Arrah in 1857, by John. James Halls
5. Indian Mutiny, by Charles Ball.
6. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई,—ले० श्री युत दत्तात्रय-बलवन्त पारसनीस। (मराठी)
7. अमरसिंह,—ले०-पं० प्रतापनारायण मिश्र। (हिन्दी)
8. सिपाही-युद्धेर-इतिहास (पांचोंखण्ड)—ले० श्रीयुत-रजनीकान्त गुप्त। (बंगला)
9. इस पुस्तक के प्रकाशक, बन्धुवर पं० उमादत्त शर्म्मा द्वारा संगृहीत कई पुस्तकें और इधर-उधरकी खोजका बहुतसा मसाला।

विषय-सूची।
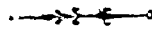
संख्या।	अध्याय।	विषय।	पृष्ठ संख्या।
१	उपक्रमणिका—	(आग कैसे लगी ?)—	१–४४
२	पहला अध्याय—	(विद्रोह का आरम्भ)—	४५
३	दूसरा अध्याय—	(आग चेती)—	५६
४	तीसरा अध्याय—	(चिनगारियां उड़ने लगीं)—	७८
५	चौथा अध्याय—	(दिल्ली पर धावा)—	६८
६	पांचवां अध्याय—	(लार्ड केनिङ्गकी चेष्टा)—	१३६
७	छठा अध्याय—	(लड़ाई जारी ही रही)—	१४६
८	सातवाँ अध्याय—	(विद्रोह फैलने लगा)—	१६२
६	आठवां अध्याय—	(जौनपुर और इलाहावाद)—	१७६
१०	नवां अध्याय—	(कानपुर-काण्ड)—	१६५
११	दसवां अध्याय—	(अंगरेजोंने वुरीतरह वदला लिया)-	२३७
१२	ग्यारहवां अध्याय—	(पञ्जाव-प्रकरण)—	२५६
१३	वारहवां अध्याय—	(दिल्ली और वहादुरशाह)—	२७६
१४	तेरहवां अध्याय—	(लार्ड केनिंग क्या कर रहे थे ?)-	३००
१५	चौदहवां अध्याय—	(पश्चिमोत्तरप्रान्तमें क्या हुआ ?)-	३११
१६	पन्द्रहवां अध्याय—	(रियासतों की रियासत)—	३५६
१७	सोलहवां अध्याय—	(कालविनसाहवके अन्तिम दिन)-	३८०
१८	सत्रहवां अध्याय—	(लखनऊ के उपद्रव)—	३८८

चित्र-सूची।

सिपाही विद्रोह

या

सन् सत्तावनका गदर।

उपक्रमणिका

आग कैसे लगी ?

(१)

ईसवी सन् १८५७ में अँगरेजी हुकूमत की जड़ हिन्दुस्तान में एक प्रकारसे जम गयी। गोरे चमड़ेका रोब हर जगह छा गया। परन्तु अभी तक बहुतसे प्रान्त स्वाधीन थे, उनके पैरोंमें पराधीनता की बेड़ियां पड़नी बाकी थीं!

धीरे-धीरे उन सब प्रदेशों को भी वृटिश सिंह के पैरों के नीचे दबा देने की चेष्टा अनेक अँगरेज अधिकारियों की ओर से की जाती और कहीं एक, तो कहीं दूसरी नीति चलाकर उनकी स्वाधीनता हरण करने का प्रयास होता था। बहुतेरे उच्चाकांक्षा वाले अँगरेज अधिकारी कन्याकुमारी से काश्मीर और अटक से कटक तक भारतके सारे मानचित्र को लाल रङ्ग में रङ्गा हुआ देखना चाहते थे। इसके लिये वे मित्रोंको भी शत्रु बना लेते, आश्रितों

११ वर्ष की थी। उन्हें सर जान लाजिन नामक एक अँगरेज़ मास्टर पढ़ाया करते थे। १८५३ में उन्हें यार लोगोंने मिल जुल कर क्रुस्तान वना डाला! इस के साल भर वाद ही वे विलायत भेज दिये गये। उन की माता उन्हें देखने के लिये विलायत गयीं और वहीं स्वर्गवासिनी हो गयीं।

इस तरह वीरवर रणजीतसिंह के लीला-क्षेत्र पञ्जाव को सन्धिके नियम ताक पर रख कर, लार्ड डलहासीने अँगरेज़ी सल-तनतमें मिला लिया और सर हेनरी लारेन्स वग़ैरह कुछ सुयोग्य अँगरेज़ कर्मचारियोंकी एक शासन-समिति सङ्गठित कर उसी के ऊपर पञ्जाव के शासन का समस्त भार अर्पण कर दिया। ये लोग वड़ी ही होशियारी और मिलनसारी से सिक्खों को अपने मेल में लाने लगे; क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे, कि इस तरह सन्धि के नियम भङ्ग कर पञ्जाव पर अधिकार जमा लेने से सभी सिक्ख सरदार मन-ही-मन असन्तुष्ट हैं और यह असन्तोष किसी दिन वुरा रंग ला सकता है। आख़िरकार यह दवा काम कर गयी और इन वुद्धिमान् अँगरेज़ों ने चिकनी-चुपड़ी वातों और मेल-मिलाप के वर्त्ताव से उन के दिल के घाव भर दिये और वे धीरे-धीरे अँगरेजों के साथ मैत्री के सूत्र में वँधते चले गये।

परन्तु लार्ड डलहौसी ने उसी साल यह समिति तोड़ दी। उन्होंने अनेक की जगह एक को ही पञ्जाव का अधिकारी वनाना चाहा। इसी लिये सर जान लारेन्स को पञ्जाव का प्रधान कमिश्नर वना कर उन्हों ने सर हेनरी लारेन्स को राजपूताने के रेज़िडेण्ट का पद दे उन्हें वहां को रवाना कर दिया।

पहले तो सिक्ख इससे बहुत ही असन्तुष्ट हुए ; परन्तु पीछे सर जान लारेन्स की कार्य-पटुता, दृढ़ता, न्याय-प्रियता आदि से सब लोग उनके प्रशंसक बन गये।

(२)

पञ्जाब के बाद लार्ड डलहौसी ने पूर्व उपद्वीपकी ऐरावती नदी के किनारे बसे हुए 'पेगू' नगर को अधिकार में करने की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। १८५२ में ही पेगू पर अधिकार हो गया। पेगू पर चढ़ाई करने का भी कोई कारण न था। यह भी महज़ गवर्नर जेनरल साहब की राज्य-विस्तार की लालसा मात्र थी। इस प्रकार लार्ड डलहौसी एक ओर पराये राज्यों को वृटिश राज्य में मिलाते जाते थे और दूसरी ओर अपनी राजनीति का जाल फैला कर बिना लड़ाई-भिड़ाई के ही मित्र राज्यों में भी अँगरेजी झण्डा फहराने की चेष्टा कर रहे थे। इस तरह की बेइन्साफी की भी लोगों ने क्यों तारीफ़ की है, यह एक विचारने की बात है!

अब पाठक देखें, कि लार्ड डलहौसी की इस विलक्षण राजनीति ने अंग्रेजों का अधिकार किस प्रकार बिना लड़ाई-भिड़ाई मार-काट और खून-खराबी के ही बढ़ा दिया। जिन राजाओंके औरस पुत्र न हों, वे दत्तक पुत्र लेकर अपने राज्य का भार उसे अर्पण कर सकते हैं। यह हमारे यहां की प्राचीन परिपाटी है ; परन्तु लार्ड डलहौसी ने इसबार यह नियम जारी किया, कि यदि ये दत्तकपुत्र वृटिश गवर्नमेण्ट के पसन्द न होंगे, तो गद्दी से उतार दिये जायेंगे और उनका राज्य अंग्रेजी राज्य में मिल:

लिया जायगा। बंगाल और बम्बई के कितने ही कूटनीतिज्ञ सिविलियनों ने सोच-विचार कर यह क़ायदा जारी किया था और इस प्रकार हिन्दुओंके शास्त्र-सम्मत दत्तक-विधानको भी उलट देनेकी चेष्टा की गयी! इससे सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी और लोग समझ गये, कि कम्पनी ने यह चाल आसानी से रियासतों को अपने अधिकार में कर लेने के लिये चली है! सब से पहले इस नये नियम का प्रयोग महाराष्ट्र-प्रदेश के सितारा- राज्य पर हुआ।

सितारा महाराष्ट्र का एक प्रसिद्ध और सुन्दर स्थान है। हिन्दू-जातिके रक्षक, प्रबल प्रतापी महाराज शिवाजी इस स्थान को बहुत पसन्द करते थे। जिस समय भारत में अंग्रेजों का सिक्का जम रहा था, उस समय सितारे की गद्दी पर प्रतापसिंह नामक एक प्रसिद्ध वीर बैठे थे, जो शिवाजी के वंशज थे। मराठोंमें इसीलिये उनकी बड़ी मान-मर्यादा थी। १८१९ में बृटिश गवर्नमेण्ट के साथ प्रतापसिंह की सन्धि हुई। लेकिन २० वर्ष बाद ही उन पर यह जुर्म लगाया गया, कि उन्होंने गोवा की पोर्चुगीज सरकार से मिलकर बृटिश सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा है। प्रतापसिंह ने बार-बार कहा, कि यह सन्देह मिथ्या है, मैं अपनी निर्दोषिता पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर सकता हूं: पर किसीने एक न सुनी। बिना आईन-कानून और बिना विचार के ही एक दिन रातोरात प्रतापसिंह सितारे से कई मील दूर पहुंचा दिये गये, जहां वे रात भर पशुओं के रहने के एक स्थानमें रखे गये। इसके बाद वे काशी भेज दिये गये और अंगरेजी

सरकार ने उनकी समस्त धन-सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। प्रतापसिंह के भाई अप्पासाहब, बाजीराव पेशवाके हाथ कैद होकर कैदखाने में पड़े हुए थे। वृटिश गवर्नमेण्ट ने उन्हें कैद से छुड़ाकर सितारे की गद्दी पर बिठा दिया। १८४८ ई० में ही वे भी परलोकवासी हो गये। उनके कोई पुत्र न होनेके कारण उन्होंने मरने से पहले शास्त्र की विधि के अनुसार दत्तक-पुत्र ग्रहण किया। इधर राज्य से अलग किये हुए प्रतापसिंह ने भी एक लड़के को गोद लिया था ; परन्तु लार्ड डलहौसी ने इन दोनों ही दत्तक-पुत्रों को नाजायज ठहरा दिया। फिर क्या था! राज्य लावारिस करार दे दिया गया और वृटिश राज्य में मिला लिया गया !

लार्ड डलहौसी की इस चाल को कोर्ट-आफ-डाईरेक्टर्स ने भले ही मान लिया ; परन्तु प्राचीन संधि के अनुसार न चलकर उन्हों ने जो मित्रराज्य को ही हड़प कर लिया,इसलिये अंगरेज नीतिज्ञों और धर्मज्ञों ने भी उनकी बड़ी निन्दा की।

सितारा के बाद आपने भारत के केन्द्र-स्थल बुन्देलखण्ड के झांसी-राज्य की ओर नजर फेरी। यह राज्य पहले पेशवाओं के अधीन था और बराबर मराठे ही इस राज्यके मालिक रहते आये थे। झांसी के राजा रामचन्द्रराव से अंगरेजों की सन्धि थी और उसके अनुसार दोनों एक दूसरे के साथ भलमनसाहत का बर्ताव करने को बाध्य थे। १८२५ में जब लार्ड कम्बर-मियर ने भरतपुर के मजबूत किले पर हमला किया था, उस समय नाना पण्डित नामक मध्य भारतके एक सरदार ने बड़ी

भारी सेना लेकर कालपी नगर पर हमला किया था । उस सं
के समय झांसी के राजा ने ४०० घुड़सवार और १,००० पैद
के साथ-साथ दो तोपें भेज कर कालपी-नगर की रक्षा की थी
. इस मित्रता के नाते भारत के गवर्नर जेनरल लार्ड विलिय
बेण्टिङ्क ने १८३२ ई० की १६ वीं दिसम्बर को झांसी के रा
दरबार में आकर रामचन्द्रराव को महाराज की उपाधि अं
छत्र, चंवर आदि राज-चिन्हों से सम्मानित किया । इस घट
के तीन ही वर्ष बाद रामचन्द्रराव की मृत्यु हो गयी ।

दुर्भाग्यवश उनके कोई सन्तान न थी, इसलिये रियासत
लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ । अन्तमें वृटिश गवर्नमेण्ट के एजे
ने उनके चाचा रघुनाथराव को ही पूरा हक़दार समझ व
गद्दी पर बिठाया ; पर तीन ही वर्ष बाद ये भी मर गये । इन
भी कोई पुत्र नहीं होने से फिर वही झगड़ा उठ खड़ा हुआ । उ
समय गवर्नर-जेनरल लार्ड आकलैण्ड ने इस झगड़े को तै कर
के लिए एक कमीशन बिठाया, जिसने रघुनाथरावके भाई गङ्ग
धर रावको गद्दी दिलाने की सिफारिश की । अन्तमें येही झां
के राजा हुए ।

परन्तु न मालूम इस वंश पर यह क्या शापसा था कि, गङ्ग
धररावके यहाँ भी कोई पुत्र न हुआ । मरने से पहले इन्होंने अं
रेज़ रेज़िडेण्ट और एक फ़ौजी अफ़सर के सामने ही एक लड़
को अपना दत्तक-पुत्र बनाया । इसके बारे में रेज़िडेण्ट को प
लिखते हुए उन्होंने लिखा था, कि मैं अपने एक सम्बन्धी के लड़
को गोद लेता हूं । इसका अभी तो आनन्दराव नाम है ; प

अबसे दामोदर गङ्गाधरराव कहलायेगा। जब तक यह लड़का बालिग़ न हो जाये, तब तक बालक की माता और मेरी विधवा पत्नी ही राज्य की पूरी स्वामिनी होकर रहेगी। आप लोग ऐसी दया-दृष्टि रखेंगे, जिसमें कोई इन लोगोंके साथ बुरा बर्ताव न कर सके।

पर बेचारे मरते हुए गङ्गाधरराव की यह विनती न निभ सकी। ज़माना लार्ड डलहासी के प्रताप का था। उन्होंने पञ्जाब और सितारे की तरह झांसीको भी हथिया लेना चाहा। चाहने भरकी ही देर थी--एक क़लम फेर देना ही काफ़ी था। उन्होंने झट फ़र्मान जारी कर गोद को नाजायज़ करार दे दिया और झांसी का सिंहासन राव-वंश के हाथ से निकल गया।

गङ्गाधरराव की विधवा पत्नी महाराणी लक्ष्मीबाईमें पुरुषों की तरह वीरता, धीरता, दृढ़ता और तेजस्विता भरी हुई थी। उनके विचार बड़े ही उच्च थे। वे सौन्दर्य और वीरत्व दोनों की आधारभूता थीं। रमणी—सुलभ कोमलता, कमनीयता और सुन्दरता के साथ-साथ वीरों कीसी वीरता तेजस्विता और रण कर्कशता भी उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे समझ गयीं, कि अंगरेज़ लोग उनका राज्य हड़प लेना चाहते हैं ; तोभी उन्होंने सुलहनामे की शर्तें वग़ैरह बतला कर वृटिश-गवर्नमेण्ट के निकट प्रार्थना पत्र भेजा ; परन्तु कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। लार्ड डलहौसी की नीति ने झांसी को भी निगल ही लिया! इस अन्याय को देख कर लक्ष्मीबाई बड़ी ही दुःखित हुई। साथ ही उनके मनमें अंगरेज़ों के प्रति घोर द्वेष भी उत्पन्न हुआ। इस

ना ही लिख भेजा, कि प्रधान गवर्नमेण्ट की सम्मति विना मैं
त मामले में कुछ भी नहीं कह सकता। खैर, यथासमय और
स्त्र विधिसे दत्तक-ग्रहणकी क्रिया नागपुर के महल में सम्पन्न
ई और अप्पा साहब ने ही तृतीय रघुजी की समस्त श्रद्धादि
यायएँ की। इसके वाद इनका नाम जनोजी भोंसला पड़ा।

यह समाचार मैनसल साहब ने प्रधान गवर्नमेण्ट के पास
ख भेजा। उस समय लार्ड डलहौसी नये जीते हुए पेगू-
देश को देखने गये थे, इसी लिये तुरन्त कोई फ़ैसला न हुआ।
हां से लौट कर आते ही सन् १८५४ ई० को २८ वीं जनवरी को
न्हों ने हुक्म जारी किया, कि यह गोद लेना नाजायज़ हुआ।
स लिये नागपुर की रियासत कम्पनी के अधिकार में कर ली
ाती है।

यशोवन्त अहरराव, तृतीय रघुजी के एक निकट के सम्बन्धी
, इस लिये उनकी माता मैनाबाई भी नागपुर के राजमहल में
ी रहती थीं। जिस समय यशोवन्तराव की पैदायश हुई थी,
स समय राजकुमारों के जन्म के समय जैसे २१ तोपों की
लामी दगती थी, वैसेही दगी और बड़ी धूम-धाम हुई। उनका
ालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा भी राजकुमारों कीही भाँति हुई।
तृतीय रघुजी के इतने दुलारे थे, कि सब लोग यही समझते
, कि वे इसी वालक को अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिये
ोद लेंगे। ऐसे निकट आत्मीय को भी लार्ड डलहौसी ने अपने
र्मान में "इधर-उधर से आया हुआ" "साधारण मराठा" लिख
ारा!

का जोश तुरन्त ही ठण्ढा पड़ गया। इधर रघुजी की विधवा
नी को पकड़ लाकर अँगरेजों ने उन से ज़बरदस्ती नागपुर
ज्य के स्वत्व-त्याग पत्र पर दस्तख़त करवा लिये। इसके
द सब सैनिकों के हथियार छीन लिये गये और उनकी जगह
गरेज़ी सैन्य का चारों ओर पहरा बिठा दिया गया।

इसके बाद नागपुर के राजमहल की लूट-खसोट आरम्भ
ई। ज़मींन खोद-खोद कर रुपये और अशर्फ़ियां निकाल ली
यीं। राणियों के स्त्री-धन और धर्म के लिये अलग निकाली
ई सम्पत्ति पर भी कम्पनी ने क़ब्ज़ा कर लिया! इस तरह
सभ्य अंगरेज़ों ने सन्धि के नियमों से बंधे हुए अपने एक मित्र
ाज्य को मटियामेट कर डाला। लार्ड डलहौसी की नीति की
ह कैसी अपूर्व महिमा है, वह पाठक ही देखें और विचार करें।
जस समय इङ्गलैण्ड की महाराणी अपने युरोपियन मित्र-राज्यों
ी रक्षा करने में लगी हुई थीं, उसी समय यहां भारत में उनके
ी भाई-बन्धु अपने मित्र-राज्यों का सर्वनाश करते हुए भी न
हिचकते थे। उधर इङ्गलैण्ड का पर-राष्ट्र-विभाग पौलैण्ड के
ुछ बड़े-बड़े लोगों का धन लूट लेने के लिये रूस की निन्दा कर
हा था, इधर भारत की वृटिश गवर्नमेण्ट नागपुर-राज्य की
ारी सम्पत्ति लूट लेने से भी बाज़ न आयी!

(३)

इस प्रकार थोड़े ही दिनों के अन्दर मराठों के तीन प्रधान
राज्य हड़प कर लिये गये। पहले जिनके साथ मित्रता और
सन्धि की गयी थी, पीछे उन्हीं के गले पर छुरी फेर दी गयी।

नागपुर को हथियाने का एक कारण तो स्वयं लार्ड डलहौसी एक स्थान पर लिखा है। वे लिखते हैं :—“ नागपुर-रा का शासन ठीक-ठिकाने के साथ हो, तो इङ्गलैण्ड का एक व भारी अभाव दूर हो सकता है। यहां रुई बहुत पैदा होती है यदि यहां से खूब काफ़ी तादाद में रुई विलायत भेजी जाया क तो इङ्गलैण्ड के व्यापार की बड़ी उन्नति हो। जब मैं इङ्गलैं से चलने लगा था, तब मैञ्चेष्टर के व्यापारियों ने मेरा ध्यान इ ओर आकृष्ट किया था। इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने भी क वार इस ओर मेरा ध्यान खींचा है। मैं स्वयं भी इस ओर उदासीन नहीं हूं। यहां से रुई चालान होने लगे, तो इङ्गलैण् को फिर किसी देश का मुंह न जोहना पड़े।”*

कहना न पड़ेगा, कि मैञ्चेस्टर के वनियों के लाभ के लिये यह अन्याय का काम किया गया था। इसीलिये सभी अंगरेज़ों आँख कान वन्द कर इस अन्याय का समर्थन किया है। त तो एक निष्पक्षपात अँगरेज़ लेखक ने लिखा है,—“रुईने अँगरेज़ की न्याय-प्रियता के कान मूँद कर आँखें फोड़ दीं, जिससे व अन्धी और वहरी हो गयी!”†

इसके सिवा लार्ड डलहौसी ने राजपूताने के करौली-र ज को भी सितारा और नागपुर की तरह हड़प जाना चाहा था पर इसमें इनको मुँह की खानी पड़ी। दत्तक-पुत्र-नाजा

* India under Dalhousie & Canning, by Duke of Argyl Pt. 38.

† H. J. B. fortors the Rebellion in India.

ठहरने पर भी सर हेनरी लारेन्स की चेष्टा से राज्य का एक प्रकृत स्वत्वाधिकारी सिंहासन पा गया। इस बार लार्ड डलहौसी की दाल न गली।

इसके बाद लार्ड डलहौसीकी दृष्टि और एक राज्य पर पड़ी। भारतका मानचित्र देखने पर दक्षिणी भारत के केन्द्र-स्थल में बरार, पश्चिमघाट, तुङ्गभद्रा और कृष्णा के मध्यवर्त्ती रायचोर दोआब इत्यादि कई एक प्रदेश दिखलाई देते हैं। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है। यहाँ की जैसी अफीम और रूई की खेती दुनिया में और कहीं नहीं होती। इस सम्पत्ति-शालीराज्य के अधिपति की वंशानुक्रमिक उपाधि 'निज़ाम' है और राजधानी हैदराबाद। जिन नवाब की कृपा से कितने ही साधारण अवस्था वाले अँगरेज़ बनियों को दक्षिणी भारत में घुसनेकी जगह मिली थी, वे भी किसी समय निज़ाम के ही आश्रित थे।

सन् १८०० ई० की १२ वीं अक्तूबर को लार्ड वेलेसली ने निज़ाम के साथ जो सन्धि की थी, उसके अनुसार बहुत से अपने सैनिक उनकी सेना में सम्मिलित कर दिये थे। धीरे-धीरे इन सैनिकों की संख्या बढ़ती ही जाती थी, परन्तु इन सैनिकोंका ख़र्च चलाना निज़ाम के लिये बोझसा हो गया और उन पर ऋण का भार लदने लगा। अन्त में इस ऋण की संख्या ७८ लाख तक पहुंच गयी!

लार्ड डलहौसी यह सहन न कर सके। उन्होंने १८५१ ई० में निज़ामको लिखा, कि आप या तो शीघ्र ही यह ऋण अदा कर दीजिये अथवा ५६ लाख सालाना आमदनी की भूमि बृटिश

गवर्नमेण्ट को दे दें ; गवर्नमेण्ट इससे तीन साल में अपना रुपया वसूल कर लेगी। यह हुक्मनामा पाते ही निज़ाम घबरा उठे और उन्हों ने ऋण परिशोध करने की चेष्टा करनी आरम्भ की। ४० लाख रुपये तो उन्होंने उसी दम दे दिये और बाक़ी के लिये कुछ मुहलत माँग ली। पर १८५३ में ही उसका सूद बढ़कर फिर रक़म ४५ लाख तक पहुँच गयी। अब तो लार्ड डलहौसी से सब्र करते न बना और उन्होंने निज़ाम की कुछ ज़मीन्दारी हाथ में कर लेनी चाही। निज़ाम इस पर राजी नहीं थे ; परन्तु डलहौसी साहब तो तुले बैठे थे, इस लिये बल प्रदर्शन करने को तैयार हो गये। पर पीछे सन्धि के ही बहाने भूमि हड़पने की तरकीब सोची गयी। रेज़िडेन्ट ने निज़ाम के पास आकर कहा, कि आप को प्रति वर्ष आठ लाख रुपये पेन्शन की तरह मिलेंगे, आप इस रियासत का इन्तज़ाम कम्पनी के हाथों में देदें ; परन्तु निज़ाम को यह प्राण रहते स्वीकार नहीं था। अन्त में अछता-पछता कर उन्हें तब तक के लिये बरार प्रदेश अँगरेजों को दे देना पड़ा, जब तक कि उन पर से सारा ऋण उतर न जाये। इस प्रकार ४५ लाख रुपये के लिये अँगरेज़ों ने यह विस्तृत प्रदेश निज़ाम से छीन लिया। इस प्रदेश में भी रूई बहुत उपजती है। अनाज भी काफ़ी पैदा होता है। इस प्रकार एक और मित्र के गले पर भी लार्ड डलहौसी ने छुरी चला दी।

बरार के बाद लार्ड डलहौसी ने आरकट के नवाब पर हाथ साफ़ किया और उस के ख़ान-दान को ही वहाँ से खदेड़ भगाया। तब से वे मदरास में जाकर रहने लगे और उनकी नवाबी

के साथ ही साथ उन का समस्त प्रभाव और सम्मान नष्ट हो गया। उन्हें केवल १॥ लाख रुपया सलाना पेन्शन के तौर पर दिया जाना स्वीकृत हुआ।

मुग़ल-सम्राट् औरङ्गज़ेब के ही ज़माने में तञ्जोर का राज्य हिन्दुओं के हाथ से निकल कर मराठों के हाथ में आ गया था। १७९९ ई० में तञ्जोर के मराठा सरदार सरफ़जी ने बृटिश गवर्नमेण्ट से सन्धि कर अपना क़िला और राज्य का शासन-भार अँगरेजों के ही हाथ में सौंप दिया। वे आप काठ के पुतले की तरह सिंहासन पर बैठते थे ; पर काम सारा अँगरेजों के मन का ही होता था। १८३२ ई० में सरफ़जी की मृत्यु हो जाने पर उन के इकलौते पुत्र शिवजी सिंहासन पर बैठे। तेरह वर्ष बाद १८५५ ई० की २९वीं अक्तूबर को ये भी परलोकवासी हो गये। इनके कोई पुत्र नहीं था, केवल दो कन्याएं थीं।

उस समय शिवजी की बड़ी लड़की मरने की दशा को पहुँची हुई थी, इस लिये तञ्जोर के रेज़िडेन्ट फोरबस साहब ने शिवजी की दूसरी लड़की को सिंहासन दिलाना चाहा। क्योंकि इस राज्य में पहले भी स्त्रियों को पुरुषके अभावमें गद्दी मिल चुकी थी। परन्तु जिस दिन रेज़िडेन्ट का यह प्रस्ताव मदरास की शासन-समिति में पेश हुआ, उस दिन लार्ड डलहौसी भी वहीं थे। उन्होंने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया और तञ्जोर भी अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

इसी तरह बंगाल की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर अवस्थित सम्बलपुर-राज्य भी कम्पनी के अधिकार में आ गया। लार्ड

डलहौसी ने मानों विलायत से शपथ करके भारत की यात्रा की थी, कि वहाँ चलकर मैं, न्याय से हो या अन्याय से, अँगरेज़ी राज्य का विस्तार करूंगा!

हम लार्ड डलहौसी की इन बे-इन्साफियों का हाल इसी लिये लिख रहे हैं, चूंकि हमें दिखलाना है, कि सिपाही-विद्रोह होने के पहले यहाँ के शासकों ने कैसी-कैसी अन्यायपूर्ण कार्रवाइयां करके प्रजा के मन में अपने प्रति प्रेम की जगह घृणा पैदा कर दी थी। ऊपर के वर्णनों से पाठकों को अच्छी तरह मालूम हो गया होगा, कि इन कार्रवाइयों में से एक भी ऐसी नहीं थी, जो न्याय के तराज़ू पर तौलने से लार्ड डलहौसी के पलड़े को भारी कर सके। अब हम एक और घटना का यहाँ वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं, जो कि ऊपर की सब घटनाओं से विशेष महत्व रखती है और हमारी इस पुस्तक की घटना से विशेष सम्बन्ध रखने वाली है।

(४)

भारत के इतिहास में सितारा, नागपुर और पूना—इन तीनों स्थानों के मराठे राज्य-वंश बहुत प्रसिद्ध हैं। लार्ड डलहौसी ने सितारे और नागपुर राज्यों को किस प्रकार कम्पनी के अधिकार में मिला लिया, वह हम पहले ही लिख चुके हैं। अब थोड़ा सा हाल पूने का यहाँ लिख देना अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है। पूना लार्ड डलहौसी के बहुत पहले ही कम्पनी के अधिकार में आ चुका था।

सन् १८१८ ई० की ३री जून को द्वितीय महाराष्ट्र-युद्ध के

बाद पूने के प्रसिद्ध पेशवा बाजीरावने अँगरेज़ सेनापति सर जान मालकम के हाथ में आत्म-समर्पण कर दिया। बाजीराव बड़े वीर थे, अतएव उन्होंने वीर की तरह शक्ति भर लड़ाई की और हार जाने पर हथियार नीचे डाल, सामरिक नियमानुसार विजेता की शरण ले ली। विजेताओं ने भी उनके साथ वीर का सा बर्त्ताव किया और उन्हें ८ लाख रुपया सालाना वृत्ति देकर किसी खास जगह भेज देने का प्रस्ताव किया। वे पूने से हटा कर कानपुर से बारह मील दूर बिठूर नामक स्थान में भेज दिये गये। वे अपने परिवार वर्ग के साथ वहीं गङ्गा के किनारे रहने लगे। वहाँ पहुँचने पर गवर्नमेण्ट ने उन्हें एक छोटी सी स्वतन्त्र जागीर भी दे दी। सन् १८३२ ई० में गवर्नमेण्ट की आज्ञानुसार इस जागीर के भीतर रहने वाले लोग अँगरेज़ों के दीवानी और फ़ौजदारी क़ानूनों से बरी कर दिये गये। इस प्रकार बाजीराव इस छोटे से राज्य के स्वतन्त्र अधिपति होकर अपने प्रिय अनुचरों के साथ रहने लगे।

पहले तो वृटिश गवर्नमेण्ट बाजीराव का यहाँ पूरा दल बँधा देखकर डरी; पीछे जब अनेक अवसरों पर बाजीराव ने अँगरेजों की पूरी पूरी सहायता की, तब उसका यह सन्देह दूर हुआ। बाजीराव अपनी पहली स्मृति को विसर्जन कर पवित्रता, संयमशीलता और धार्मिकता के साथ तपस्वी की तरह गङ्गा के किनारे वास करने लगे।

बाजीराव को कभी रुपये पैसे का अभाव नहीं होने पाया। ८ लाख सलाना वृत्ति और जागीर की आमदनी मिलाकर उनके

पास बहुत सा धन होता चला जाता था। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके इस सारे ऐश्वर्य्य का भोगने वाला कोई न था! सब को इस बात की चिन्ता होने लगी, कि यह सारी दौलत कौन भोगेगा? स्वयं बाजीराव को भी इस चिन्ता ने आ घेरा। तब उन्होंने एक दत्तक-पुत्र ग्रहण करने का विचार किया। मृत्यु से कई साल पहले बाजीराव ने अपने दत्तक-पुत्र को पेशवा की उपाधि तथा ८ लाख वार्षिक वृत्ति का उत्तराधिकारी मान लेने की प्रार्थना वृटिश गवर्नमेण्ट से की; परन्तु उनकी वह प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। सिर्फ इतना ही कहा गया, कि आप के स्वर्ग-वासी होने पर आपके परिवार के भरण-पोषण का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जायेगा। मतलब यह, कि बाजीराव के जीते ज़ी कोई बात तय नहीं हुई—सब कुछ भविष्यत् पर निर्भर रखा गया। कुछ समय बाद बाजीराव का शरीर टूट गया, उन्हें लक़वा मार गया, आँखें दृष्टि-शक्ति से हीन हो गयीं और वे मौत के किनारे पहुँच गये।

१८५१ ई० की २८वीं जनवरी को ७७ वर्ष की अवस्था में बाजीराव की मृत्यु हो गयी। उन्होंने १८३९ ई० में जो वसीयत-नामा लिखा था, उस में उन्होंने अपने दत्तक-पुत्र को पेशवा के ख़िताब और अपनी समस्त स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति का वारिस बनाया था। उनके इस दत्तक-पुत्र का नाम धुन्धुपन्त-नाना साहब था। बाजीराव की मृत्यु के समय नाना साहब की उमर २७ साल की थी। नाना साहब बड़े ही शान्त-स्वभाव, -मापी, मिताचारी और अँगरेज कमिश्नरों के अनुगामी थे।

अँगरेज़ इतिहास लेखकों की कठोर लेखनी ने भी उनके गुणों की शंसा करने में कमी नहीं की है। पिता की मृत्यु के बाद नाना-साहब को प्रायः ३० लाख रुपये की सम्पत्ति मिली। उन्होंने इसका आधे से भी अधिक भाग का कम्पनी-काग़ज़ ख़रीद लेया। कमिश्नरों ने भी अपनी रिपोर्ट में लिखा है, कि नाना साहब को १६ लाख रुपये का गवर्नमेण्ट-पेपर (कम्पनी काग़ज़), १० लाख रुपये की मणि-मुक्ता आदि, ३ लाख की अशर्फियाँ, ८ हज़ार के सोने के गहने और २० हज़ार रुपयेके चाँदी के बर्त्तन मिले थे।

बाजीराव के परिवार में बहुत से दास दासियाँ थीं। उन सब के भरण-पोषण का भार नानासाहब पर पड़ना था। इस लिये उन को वृत्ति दिलाने के लिये बाजीराव को बड़ी चिन्ता थी। इसी खर्च-वर्च के लिये नाना साहब को अँगरेज़ों का मुंह जोहने के लिये लाचार होना पड़ा; क्योंकि ८ लाख की सलाना वृत्ति देने वाले वे ही थे। इस समय सूबेदार रामचन्द्र पन्त नामक बाजीराव के एक बड़े विश्वासी अनुचर के हाथ में परिवार का सारा प्रबन्ध था। वे ही बाजीराव के प्रधान परामर्शदाता और उनके अनुचरों के मुखिया थे। रामचन्द्र पन्त ने अपने स्वर्गीय मित्र का हक़ दिलवाने के लिये कमर कसी। उन्होंने नानासाहब की ओर से पैरवी करते हुए बृटिश-गवर्नमेण्ट को यह पत्र लिखा,—

"परम आदरणीया कम्पनी ने जिस प्रकार भूतपूर्व महाराज का रक्षण और प्रतिपालन किया है, उसे याद कर उन के उत्तराधिकारी नाना साहब को भी पूरा भरोसा है, कि सरकार उन्हें भी पहले महाराज की ही तरह मानेगी। इस समय बृटिश

गवर्नमेण्ट की दया और उदारता के सिवा उनका कोई सहार
नहीं है। नाना साहव सदा गवर्नमेण्ट की शक्ति और अभ्युद
ही वृद्धि चाहते हैं और आगे भी चाहते रहेंगे।"

विठूर के कमिश्नर ने तो इस प्रार्थना को स्वीकार किया
पर ऊपर के अधिकारियों ने नामंजूर कर दिया। उन दि
टामसन साहव पश्चिमोत्तर-प्रदेश के छोटे लाट थे। वे वड़े ह
विचित्र जीव थे—भारत के राज-रजवाड़ों पर उन की तनि
भी श्रद्धा न थी। उन्होंने विठूर के कमिश्नर को लिख दिया
कि आप प्रार्थना करने वालों को साफ कह दें, कि वे वहुत आश
न करें। इन दिनों भारत के वड़े लाट लार्ड डलहौसी थे। फि
क्या था? टामसन साहव का ही वोल वाला रहा। ला
डलहौसी ने साफ लिख दिया, कि "पेशवाने ४३ साल तक ८लाख
रुपया सालाना वृत्ति पायी है; इसके सिवा उन्हें जागीर भ
मिली हुई थी। उन्हें २ करोड़ से अधिक का लाभ हो चुक
था। उन्हें किसी तरह का विशेष-खर्च-वर्च तो था ही नहीं
उन्हें कोई औरस पुत्र भी नहीं हुआ। वे मरते समय अपने परि
वार के लिये २८ लाख रुपये की सम्पत्ति छोड़ गये हैं। २
समय पेशवा के जो सव आत्मीय-स्वजन वर्त्तमान हैं, उन
कोई स्वत्व गवर्नमेण्ट नहीं मानती। उनका सरकार से
की प्रार्थना करना भी व्यर्थ है। क्योंकि पेशवा जो कुछ माल
मता छोड़ गये हैं, वही उनके पालन-पोषण के लिये काफी है
हो सकता है, कि जितना ऊपर लिखा है, उससे भी अधिक
साहव छोड़ गये हों।"

इस प्रकार नाना साहब की प्रार्थना विफल हो गयी और उनकी वृत्ति-जीवन भर के लिये छिन गयी। जिन्हों ने काबुल और पञ्जाब की लड़ाइयों में रुपये-पैसे और सैनिकों से अगरेज़ों की खूब सहायता की थी। उन्हीं बाजीराव के पुत्र की वार्षिक वृत्ति बन्द कर बृटिश गवर्नमेण्ट ने मानो मित्रता शब्द पर ही लाञ्छन लगा दिया। इतनी ही मिहरबानी की, कि उनकी जागीर नहीं छीन ली—हां, अब से उस जागीर के लोग सरकारी दीवानी और फौजदारी कानून के आधीन बना दिये गये।

यहां की सरकार ने जब धुन्धुपन्त की सारी आशा पर पानी फेर दिया, तब उन्होंने नाना युक्तियों और तर्कों से पूर्ण एक प्रार्थनापत्र विलायत में कम्पनी के बोर्ड-आफ-डाईरेक्टर्स के पास भेजा। उसमें आपने अपने पक्ष की पुष्टि बड़ी ही प्रबल युक्तियों से की थी ; परन्तु वहां भी कुछ सुनवाई न हुई। विलायत से बड़ी ही निराशा-पूर्ण चिट्ठी आयी, जिसमें बोर्ड ने गवर्नर-जेनरल के ही मत का समर्थन किया था।

विलायत से उत्तर आने के पहले ही नानासाहब ने अज़ीमुल्ला-ख़ाँ नामक एक सुन्दर और सुपठित मुसलमान युवक को अपनी ओर से पैरवी करने के लिये विलायत भेजा था। वह बेचारा भी अपनी चेष्टा में सफल न हो सका। जब अज़ीमुल्ला अपना कार्य सिद्ध न कर सका, तब अपनी इच्छा के अनुसार वहीं मौज़ें लूटने लगा। वह एक तो बड़ा ही ख़ूबसूरत और ठाठ-पसन्द नौजवान था, दूसरे अँगरेज़ी पढ़ा हुआ था, इसलिये बड़ी आसानी से वहाँ के मौजी जीवों की जमात में मिल गया और

बहुतसी वड़े घरानों की औरतों तक को अपना पक्षपाती बना लिये। फिर क्या पूछना है? उनकी पाँचों घी में रहने लगीं। इन्हीं दिनों एक आदमी सितारे के पदच्युत राजा का दूत होकर विलायत की राजधानी में आया हुआ था। वह जाति का मराठा था और उसका नाम था रङ्गबापाजी। ये बेचारे भी अपने उद्योग में विफल ही हुए। एकही काम से विलायत आकर विफल होने पर ये दोनों दूत आपस में मित्र हो कर कुछ दिन वहीं रहे। पीछे रङ्गबापाजी को तो ईस्टइण्डिया कम्पनी ने नगद २,५०,०००) रुपये देकर विना भाड़े के ही बम्बई तक पहुंचा दिया; परन्तु अज़ीमुल्ला से विलायत की वह मौज-बहार छोड़ते न बनी और इसने जन्मभूमि की मोह-माया त्याग, सदा वहीं रहने का सङ्कल्प कर लिया। मतलब यह, कि नाना-साहब का काम तो खटाई में पड़ा ही, उनका दूत उनसे जो कुछ पैसा ले गया था, वह भी उसने वहीं बरबाद कर डाला!

(५)

पंजाब, नागपुर, सितारा, झांसी वग़ैरह को कम्पनी के राज्य में मिला कर ही लार्ड डलहौसी को सन्तोष नहीं हुआ—उन की टेढ़ी निगाह एक और समृद्धि-शाली राज्य पर पड़ चुकी थी, परन्तु चूंकि वहां के अधिपति लावारिस नहीं थे, इसलिये उसे जुलाब की गोली की तरह झट निगल जाने का मौक़ा नहीं था पर जब लार्ड डलहौसी की लोभ-दृष्टि पड़ चुकी, तब उसकी ख़ैरियत कहां थी?

यह राज्य अयोध्या का था। अति प्राचीन काल से अयोध्या

सुख-समृद्धि से पूर्ण रहती चली आयी है। उसकी यही समृद्धि उसका काल हो गयी। हिन्दुओं का पतन होने पर भी मुसलमानों के हाथमें अयोध्या धन-धान्य से पूर्ण ही बनी रही। इस लिये लार्ड डलहौसी की इस पर लार टपकी।

जिस समय बंगाल के नवाब मीरक़ासिम अँगरेज़ों से लड़ाई में हारकर अयोध्या के नवाब शुजाउद्दौलाकी शरण में चले आये थे, उसी समय से कम्पनी के साथ अयोध्या का राजनीतिक सम्बन्ध आरम्भ हुआ। शुजाउद्दौला ने शरणागत की रक्षा के लिये अँगरेज़ोंके विरुद्ध बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की थी। सन् १७६४ ई० की २३ वीं अक्तूबर को बक्सर में दोनों सेनाओं का सामना हुआ! नवाबने हारकर अँगरेज़ों से सन्धि कर ली। उस सन्धि के अनुसार नवाब ने युद्ध के व्यय-स्वरूप ५० लाख रुपये देना और अपने ख़र्च से बहुत सी अँगरेज़ी सेना अयोध्यामें रखना स्वीकार किया। शुजाउद्दौला ने बराबर इस सन्धि के नियम के अनुसार कार्य किया और अँगरेज़ों को सदा अपना मित्र माना। परन्तु सन्देह बृटिश-शासन का प्रधान मन्त्री है। और सन्देह ही उस समय बृटिश-कम्पनी के स्वार्थ साधन का अद्वितीय साधन था। फिर क्या था? सन्धि हुए तीन वर्ष भी न हुए होंगे, कि इस बात की अफ़वाह उड़ी, कि नवाब ने अँगरेज़ों के विरुद्ध षड्यन्त्र और सैन्य-संग्रह किया है। नवाब से कैफ़ियत तलब की गयी। उन्होंने उपयुक्त कारण दिखलाते हुए अपनी ख़ूब ही सफ़ाई दिखलायी; मन्त्रि-सभा के भी अनेक सदस्यों ने उनका पक्षावलम्बन किया; परन्तु बृटिश-कम्पनी का सन्देह दूर

न हुआ। इसलिये फिर से नया सुलहनामा हुआ। इसके अनुसार नवाब अबसे ३५ हजार से अधिक सैन्य नहीं रख सकते थे। बस इसी समय से नवाब के भाग्य का चक्र घूमना आरम्भ हुआ। कम्पनी को यह देख कर बड़ा लोभ-समाया, कि नवाब शुजाउद्दौला के पास इतना बड़ा राज्य है, इतनी सम्पत्ति, इतनी विशाल प्रजामण्डली और ऐसा अभेद्य दुर्ग है! इसीलिये कम्पनी के राजनीति-कुशल कर्मचारियों ने उन्हें दोस्ती के बन्धनों में ही बाँध कर फँसा लेना चाहा।

विलायत से डाइरेक्टरों ने भारत गवर्नमेण्ट को लिखा, कि तुम लोग जब मौक़ा पाओ, तभी चुनार का किला अपने हाथ में कर लो। यह किला कुछ दिन के लिये नवाब ने ज़मानत के तौर पर अँगरेज़ों के हाथ में दे दिया था; पर जब उन्होंने ५० लाख का अपना ऋण परिशोध कर दिया, तब यह किला उन्हें वापिस मिल गया। इसबार विलायत से पत्र पा कर कम्पनी ने फिर इस किले को क़ब्ज़े में कर लेना चाहा। अनुकूल अवसर के लिये बहुत दिनों तक इन्तज़ारी नहीं करनी पड़ी। इन दिनों सारे भारत में मराठों का उपद्रव जारी था—उनकी सेना रुहेलखण्ड से होती हुई अवध में आकर उत्पात करने लगी। कम्पनी ने अपनी कूट-नीति को सफल करने के लिये यही मौक़ा अच्छा समझा। इन लोगों ने नवाब को मराठों से बचाने की प्रतिज्ञा कर उनसे फिर एक नयी सन्धि की, जिसके अनुसार कम्पनी ने फिर चुनार का किला अपने हाथ में ले लिया और इलाहाबाद को कुछ दिनों के लिये अपने अधिकार में कर रखा।

इस प्रकार कम्पनी की दोस्ती का अच्छा नतीजा नवाब को मिला। पहले तो उनकी फौज की संख्या घटा कर ३५ हजार कर दी गयी और पीछे चुनार और इलाहाबाद के क़िले हाथ से निकल गये।

इस समय बृटिश-कम्पनी का ख़जाना एक तरह से ख़ाली हो रहा था। विलायत से डाइरेक्टरों की लगातार चिट्ठी आ रही थी, कि रुपया भेजो, रुपया भेजो ; पर देखना, किसी पर जोर-जुल्म न करना। इस तरह के पत्र पाते-पाते हेस्टिंग्ज की सरकार घबरा उठी। लाचार १७७२ ई० की २० वीं मार्च को बृटिश गवर्नमेण्ट ने जो कड़ा और इलाहाबाद के प्रदेश नवाब से खरीदे थे, उन्हें फिर नवाब के ही हाथ ५० लाख रुपये पर बेंच दिया। साथ ही नवाब के लिये जो अँगरेज़ी फौज तैयार रखी गयी थी, उसके ख़र्च के लिये नवाब ने हर महीने दो लाख दस हज़ार रुपये देने स्वीकार किये। इस प्रकार दोस्ती के नाम पर नवाब साहब अपनी सम्पत्ति नष्ट करने लगे। एक ओर उनके रुपये से कम्पनी का ख़जाना भरने लगा, और दूसरी ओर उनके अधिकृत प्रदेशों पर अँगरेजी झण्डा फहराने लगा।

सन् १७७५ में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई। उनके पुत्र आसिफुद्दौला गद्दी नशीन हुए, नवाब शुजाउद्दौला के साथ अँगरेजी फ़ौज के ख़र्च चलाने के लिये जितना रुपया दिया जाना तय पाया था, उसमें अबके ५० हजार और जोड़ दिये गये। साथ ही नये नवाब के साथ सन्धि कर बृटिश गवर्नमेण्ट ने काशी, जौनपुर और गाजीपुर अपने अधिकार में कर लिये।

१७८७ ई० में नवाब आसिफुद्दौला की मृत्यु होने के बाद उनके पुत्र मिर्जाअली गद्दी पर बैठे : परन्तु अँगरेजों ने देखा, कि इनकी अपेक्षा आसिफुद्दौला के भाई सआदतअली से रुपया ऐंठने में अधिक सुभीता होगा। इसीलिये मिर्जाअली गद्दी से उतार दिये गये और सन् १७९८ की २१ वीं जनवरी को ही सआदतअली-खाँ लखनऊ की नवाबी पा गये। इनके साथ जो सन्धि हुई, उसके अनुसार वृटिश-सैन्यका ख़र्च ७६ लाख रुपया सालाना कर दिया गया। इधर सेनाकी संख्या घटाकर १० हजार कर दी गयी।

इस प्रकार सन्धि पर सन्धि करके अँगरेज लोग अवध की नवाबी की टाँग तोड़ने लगे। ७६ लाख रुपया फ़ौजी ख़र्च और चुनार, काशी, ग़ाजीपुर, जौनपुर, कानपुर, फ़तेहगढ़ और इलाहाबाद आदि पर अधिकार कर लेने पर भी सन्तोष न हुआ और नवाब के साथ और भी दोस्ती का हक़ अदा करने का सङ्कल्प किया।

इसी समय मार्किस-आफ़-वेलेसली कलकत्ता आये। उनका ध्यान अयोध्याकी ओर आकृष्ट हुआ। अयोध्या में अब तक जो अँगरेजी सैन्य रहता आया था, उसके सिवा उन्होंने और भी दो दल सैन्य रखने का हुक्म जारी किया। साथ ही यह भी लिखा कि या तो आप कुछ पेन्शन लेकर गद्दी से अलग हो जाइये और नहीं तो इन सब सैनिकों का ख़र्च चलाइये। सन् १८०१ ई० की १४ वीं नवम्बर को नवाब के साथ फिर सन्धि हुई। इस अनुसार इन्हें अँगरेजों के हाथमें १,३५,२६,४७४) रु० सालाना

आयकी जमीन्दारी जो सारे अवध-राज्य के आधे से अधिक भाग में फैली हुई थी, दे देनी पड़ी। इस प्रकार जिस मतलबसे अँगरेजोंने इन्हें नवाबी गद्दी पर बिठाया था, उसे सवा सोलह आने सिद्ध कर लिया। १८१४ ई० की ११ वीं जुलाई को इनकी मृत्यु हो गयी।

उनके मरने पर उनके बड़े लड़के ग़ाजीउद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बैठे। अँगरेजों ने अब भी अवध का पिण्ड न छोड़ा था। समय-समय पर ग़ाज़ीउद्दीन हैदर भी रुपया दे-देकर पुरानी मित्रता का निर्वाह करते रहे। सन् १८१४ में जब नेपाल की लड़ाई छिड़ी, तब नवाब ने कानपुर में मुलाक़ात कर एक करोड़ रुपये देने चाहे; परन्तु गवर्नर-जेनरल ने यह रुपये न लेकर ६) सैकड़े सूद पर एक करोड़ आठ लाख पचास हज़ार रुपये ऋण के तौर पर लिये। फिर इस लड़ाई में अधिक ख़र्च पड़ा, इसलिये एक करोड़ का ऋण और भी नवाब से ही लिया गया। १८१६ ई० में वृटिश गवर्नमेण्ट ने ग़ाज़ीउद्दीन को पुश्त-दर-पुश्त के लिये 'राजा' का ख़िताब दे दिया।

ग़ाज़ीउद्दीन के बाद नसीरुद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर आ बिराजे। १८३७ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी। तब इनके चाचा मुहम्मद अलीशाह नवाब हुए। लार्ड आकलैण्ड ने सन् १८३७ ई० की १८ वीं सितम्बर को इनके साथ जो सन्धि की, उसके अनुसार यह तय पाया कि अगर नवाब के राज्यमें अत्याचार और विश्रृङ्खला फैल जायगी, तो वृटिश-गवर्नमेण्ट सुयोग्य कर्म्मचारी द्वारा सूबे अवध की व्यवस्था करायेगी और जब सब ठीक हो जायेगा, तब रियासत फिर नवाब के हवाले कर देगी।

१८४२ ई० में मुहम्मदअलीशाह की मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र अमजदअली गद्दी पर बैठे ; पर कुछ ही दिन बाद १८४७ ई० में नवाब वाज़िदअली शाह अवध के नवाब हुए। बस इन्हींकी अमलदारी के समय अँगरेज़ों की बहुत दिनों की लालसा पूरी हो गयी! अब तक तो सन्धि पर सन्धि करके, अपने मनके नवाब को गद्दी पर बैठा कर मतलब गाँठा जाता रहा। इस बार एक दम मुँह फैला कर अयोध्या का राज्य निगल जाने की तैयारी हुई।

इस समय भारत के गवर्नर-जेनरल लार्ड डलहौसी थे—वे भला अवध पर नज़रे-इनायत क्यों न फेरते? उस समय कर्नल स्लीमेन नवाब के दरबार में रेजिडेण्ट थे। वे यद्यपि रियासत में जहाँ-तहाँ गोलमाल और अत्याचार होने की शिकायत करते थे, तथापि यह नहीं चाहते थे, कि बेचारे नवाब की सारी सम्पत्ति ही छीन ली जाये।

उन्होंने एक पत्र में लार्ड डलहौसी को स्पष्ट लिख दिया था, कि अगर हम लोग अयोध्या या इस राज्य का कोई अंश हड़प लेने की चेष्टा करेंगे, तो सारे हिन्दुस्तानमें हमारी बदनामी फैल जायगी; फिर यह बदनामी किसी तरह दूर न होगी, हमारी नेकनामी ऐसी-ऐसी दर्जनों रियासतों से भी अधिक मूल्यवान् है।

परन्तु लार्ड डलहौसी ने यह सब एक न सुनी और अयोध्या की रियासत में जो गोल-माल फैला हुआ था, उसे ज्यों-का-त्यों जारी रहने दिया। उनकी यह उदासीनता देख, मि० स्लीमेन को बड़ा दुख हुआ और वे समझ न सके, कि लाट साहब की

इच्छा क्या है ? अन्त में कर्नल स्लीमेन की नौकरी छीन ली गयी और उनकी जगह जेनरल आउटरम १८५४ ई० की २४ वीं नवम्बर को सूबे अवध के रेजिडेण्ट होकर आये। उन्हीं के हाथों सारी यज्ञ-क्रिया सम्पन्न कराने का विचार निश्चित हुआ। लार्ड डलहौसी ने अवध के सूबे भर में अत्याचार फैला हुआ है, यही बहाना निकाल कर अयोध्या-राज्य हड़प कर लेना चाहा। इसके लिये उन्हें विलायत से भी परवाना मिल गया।

अब क्या था ? लार्ड डलहौसी ने झटपट एक सभा एकत्र की और उसमें नवाब के नाम एक फर्मान का मसविदा तैयार किया गया ! यह फर्मान लेकर जिस समय रेज़िडेण्ट आउटरम नवाब के दरबार में पहुँचे, उस समय चारों ओर शोर सा पड़ गया। नवाब के वजीर ने सारा हाल सुन कर अपनी ओर से कैफियत देने के लिये मुहलत माँगी ; नवाब की माँ ने पुनर्विचार के लिये प्रार्थना की ; परन्तु रेजिडेण्ट ने कहा, कि अब तो जो कुछ होना था, वह हो चुका, अब कुछ भी नहीं हो सकता। उस दिन चौथी फरवरी थी। उसी दिन नवाबी महल की सारी तोपें हटा ली गयीं, सब सैनिकों के हथियार छीन लिये गये ! नवाब अपने भाई और कितने ही अपने मन्त्रियों के साथ रेजिडेण्ट के दरबार में आये। इसके बाद बड़ी ही शोचनीय दशा उपस्थित हुई। रेजिडेण्ट ने गवर्नर जेनरल का पत्र और कठोर दण्ड देनेवाला सन्धि पत्र नवाब के हाथ में देकर कहा,—"बस आप को दण्ड दिया गया है, उसे चुप-चाप सिर झुका कर स्वीकार कर लीजिये और इस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करदीजिये।"

हथिया लिये। इसके बाद नवावकी धन-सम्पत्ति, गृह-सज्या, वस्त्राभूषण, गाड़ी, घोड़े, हाथी और पुस्तकालयकी हस्त लिखित पुस्तकें तक नीलाम कर दी गयीं ! इतना ही नहीं, महल-सराकी औरतों तक को अन्दर से घसीट, आम रास्ते पर लाकर उनके गहने-कपड़े छीने गये ! अयोध्याके नवावों के साथ अँगरेज़ोंकी पुश्तैनी प्रीतिका अन्त में यही परिणाम निकला।

अन्याय और अत्याचार कहां नहीं होते ? चोरी-डकैती क्या आज भी संसार से उठ गयी हैं ? आजभी तो अयोध्याके वर्त्तमान शासकों के अधीन चोरी-डकैती बहुत होती है—फिर ऐसा कह कर सारे राज्य को ही हज़म कर लेना, साफ़-साफ अनधिकारचर्चा करना था। नवाव वाजिदअलीशाह पढ़े-लिखे विद्वान् थे ; क्या उनके आंखें नहीं थीं, जो वे अपने राज्यमें होने वाले घोर अत्याचारोंको बात सुनकर भी चुपचाप बैठे रह जाते ? इतिहास में कहीं कोई ऐसा वर्णन नहीं मिलता, जिससे सूबे भरमें कहीं किसी ऐसे अत्याचारका होना पाया जाता हो, जैसे अत्याचार और किसी प्रान्तमें न होते हों।

इसी तरह अपने आठ वर्ष के शासनकालमें लार्ड डलहौसी ने मनमाने ढंगसे राज्य-विस्तार किया। हमने जितने प्रदेशों का हाल लिखा है, उनके अलावा भी उन्होंने कितने ही राज्य अँगरेजी राज्यमें मिलाये थे ; परन्तु हमने उनका हाल इसीलिये नहीं लिखा, चूंकि हमारे इस ग्रन्थके प्रतिपाद्य इतिहास से उनका वैसा लगाव नहीं है।

इस तरह अपनी संहारिणी नीति का चक्र आठ वर्षतक

चलाकर सन् १८५६ में उन्होंने अपनी विदाई के लिये जो पत्र विलायत भेजा, उसमें अपनी नीति के बहुत गुण गाये और अपने गौरव के गर्वमें आपही अपनी शेखी बघारी ; परन्तु उनकी कार्रवाइयों ने अन्तमें भारतमें कितनी बड़ी आग सुलगा दी, यही बतलाना हमारा उद्देश्य है।

(६)

देशी-राज्योंका बल घटानेके सिवा वृटिश गवर्नमेण्टने जागीरदारों और जमीन्दारों का बल भी खूब ही घटाया। बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें इससे बड़ी गड़बड़ मची। इसी समय बम्बई में भी निष्कर-भूमिके बन्दोबस्त की चेष्टा आरम्भ होने से असन्तोष की आग भड़क उठी! बम्बई-प्रदेशके निवासियों पर इसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े अत्याचार भी हुए। जिनसे ऊब कर सब लोग ऐसे समय की प्रतीक्षा करने लगे, जब कहीं भी कोई ऐसा विप्लव उठ खड़ा हो, जो अँगरेजी सत्ताकी जड़ खोद डाले।

इधर इन राजनीतिक कारणों के सिवाय कई सामाजिक कारण भी ऐसे जमा हो रहे थे,जो आने वाले पिप्लव के सहायक बन गये। अँगरेजी शिक्षा के प्रचारसे जहां एक ओर नवयुवकों में नये विचार घर कर रहे थे, वहां दूसरी ओर पुराने ख़यालके लोग यही सोचने लगे, कि कम्पनी ने यह ढंग हमें कृस्तान बना डालने के लिये निकाला है।

जो लोग किसी अपराध के लिये सरकार से दण्ड पाकर कैदख़ाने में भेज दिये जाते हैं, उनके भरण पोपण का करना सरकार का काम है। प्राचीनकाल में यह नियम था,

क क़ैदियों को खाने के ख़र्च के लिये कुछ बँधी हुई रक़म ही
महीने में दे दी जाती थी, जिससे वे इच्छानुसार चीज़ें ख़रीदकर
नाते खाते थे। पर इस नियम के चलने में बड़ी गड़बड़ होने
लगी। क़ैदी लोग एक की जगह तीन घंटे खाने ही पीनेमें लगा
ते थे, जिससे काममें बड़ा नुक़सान होता था। इसलिये क़ैद-
ख़ाने में रसोइये नौकर रखे गये और क़ैदी लोगोंके अलग-अलग
चूल्हे-चौके बने। परन्तु इस पर बहुत से क़ैदियों को आपत्ति
होने लगी; क्योंकि रसोइये सभी समय अपनी ही जाति के
नहीं मिलते। उन लोगों ने सोचा, कि खाने पीनेका यह गोल-
माल रच कर ये अँगरेज लोग हमें क्रस्तान बना लेना चाहते हैं।
यह विचार क़ैदख़ाने की चाहरदिवारी तक ही बन्द न रहा;
बल्कि नगर-नगर और ग्राम-ग्राममें फैलने लगा। फिर क्या था?
सब लोग यह सोचकर क्षुब्ध हो उठे, कि अन्तमें ये अँगरेज हम
सब लोगों को सस्ते ही क्रस्तान बना लेना चाहते हैं। इसी-
लिये हिन्दुओं में अँगरेजों के प्रति द्वेष और सन्देह के भाव भरने
लगे और अन्तमें इसका परिणाम बड़ा ही भयानक हुआ।

इधर तो हिन्दू-जाति चली जाने के सन्देह में पड़ कर
अँगरेजों से द्वेष रखने लगे, उधर जो मुसलमान अपने राज्य खो-
कर भी अब तक उर्दू-फ़ारसी और मौलवी-मुल्लाओं का आदर
होते देख, बड़े राजी रहते थे, वे ही अब यह देख कर अँगरेजों
के कट्टर दुश्मन बन गये, कि ये लोग तो हमारी भाषा के साथ-
हमारे मौलवियों का भी मान घटा देना चाहते हैं।

जो हो, क़ैदियों के लिये रसोइदार नियुक्त करने के मामले में

गवर्नमेण्ट को बड़ी-बड़ी आफतोंका सामना करना पड़ा। इससे शाहाबाद, सारन, पटना आदि स्थानों में लोमहर्षणकाण्ड हो गये और अधिकारियों को बेतरह तङ्ग होना पड़ा। इसी सिलसिलेमें यह हालत लिख देनी भी ज़रूरी मालूम पड़ती है, कि पहले कैदियोंको पानी पीनेके लिये लोटा दिया जाता था, परन्तु कभी कभी यह लोटा पानी पीनेके स्थानमें मार-पीटके काममें भी लाया जाता था, इसीलिये अधिकारियों ने लोटे की जगह मिट्टी के बर्तन देने शुरू किये। रसोइदारों के पीछे जैसी हलचल मची थी, इसबार लोटेके मामले में भी वैसी ही हलचल आरम्भ हुई। क़ैदख़ानेमें ही नहीं, बाहर भी, यह चर्चा होने लगी, कि जाति नष्ट करनेका यह नया तरीका निकाला गया है। फिर क्या था? इधर कैदियों में असन्तोष फैला, उधर बाहरी जनता में। आरे में तो इन कैदियों ने ऐसा ऊधम मचाया, कि अन्तमें लाचार होकर जेल के अधिकारियों को उन पर गोली चलानी पड़ी। उधर मुजफ्फरपुर में कैदियों के इतने सहायक वहाँ के अधिवासियों में हो गये, कि उन लोगोंकी बढ़ी चढ़ी शक्ति देख कर कैदियों को लोटा लौटा देने में ही अधिकारियोंने अपनी कुशल समझी।

इस प्रकार बृटिश-गवर्नमेण्ट को मानो ईश्वर की ओरसे एक चेतावनी मिली, कि यद्यपि भारतवर्ष के मनुष्य स्वभाव से सीधे सादे और सन्तुष्ट हैं, तथापि जाति और धर्म का नाश होने की आशङ्का से वे अपनी सारी सीधाई भूल जा सकते हैं। यह हल-चल तो जेल की चहारदिवारीके अन्दर बन्द हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़े हुए कैदियों की थी, इससे वैसा कुछ भय का कारण

हीं था ; परन्तु जिन लोगों से भय किया जा सकता था, उनमें गी इस तरहके सन्देह-पूर्ण भाव घर कर रहे थे, यह गवर्नमेण्टको ताड़ लेना चाहिये था और झट उसका प्रतिकार कर अपनी रक्षा कर लेनी थी ; पर यहां वह चूक गयी और इसीलिये उसकी गोलमाल कार्रवाइयों और विद्या के अभिमान में चूर रहने वाले ब्राह्मण-पण्डितों तथा मौलवी-मुल्लाओं की उत्तेजना ने देश भरमें एक प्रचण्ड आग लगादी।

(७)

जब अँगरेजों ने देखा, कि इतने बड़े विशाल देश में अपनी सत्ता जमाये रखने के लिए बहुत बड़ी सेनाकी आवश्यकता है। और वह सारी सेना विलायत से ही ले आना बड़ा कठिन और खर्चीला ढंग है, तब यहीं के लोगों को धीरे-धीरे सेना में भर्ती करना आरम्भ किया और उन्हें अँगरेजी ढंग से सामरिक शिक्षा देनी शुरू की। क्रमशः इस भारतीय सेनाकी संख्या में वृद्धि होती चली गयी। इन्हीं सैनिकोंका नाम 'सिपाही' प्रसिद्ध हुआ।

क्रमशः भारतीय-सिपाही वीरता और रण-कुशलता में अँग-रेजी सैनिकों की रणकुशलता की बराबरी करने लगे और अपनी स्वामिभक्ति तथा आज्ञानुगामिता के कारण अधिकारियोंकी श्रद्धा और विश्वासके पात्र होते चले गये। दूसरे इन सिपाहियों के लिये उन्हें उतना खर्च भी नहीं करना पड़ता था, जितना गोरे सिपाहियों के लिये।

पहले-पहल दक्खिन की लड़ाइयों में, जब कि अंगरेजों को फरांसीसी सेना के साथ लोहा बजाना पड़ा था, तभी भार-

तीय सिपाही-सैन्य का ठीक-ठिकाने के साथ संगठन हुआ था
इन लोगों ने प्रत्येक युद्धमें अंगरेजों की ऐसी सहायता की—आ
पेट खाकर, घोर दुःख-कष्ट उठाकर भी जैसी वीरता दिखायी-
उसे देख कर अँगरेज प्रभुओं को दंग रह जाना पड़ा।

उस समय मद्रास में भारतीय सिपाही-सैन्य के १४ दल व
मान थे, जिनके प्रत्येक दल में एक हज़ार सैनिक रहते थे
रायर्टक्लाइव जब अपना और कम्पनी का भाग्योदय करने
विचार से मद्रास से कलकत्ते चले, तब उन्होंने इन सैनिकों
एक दल अपने साथ ले लिया और कलकत्ते पहुंच कर और
सिपाही भर्ती करना आरम्भ किया। क्रमशः उनके पास सिप
हियों के ६ दल तैयार हो गये, जिन्होंने पलासी की लड़ाई
खूब ही वीरता दिखायी।

उस समय तक अंगरेजों आर भारतीय सिपाहियों में मन
मालिन्य का कोई प्रसङ्ग नहीं आया था। न तो सिपाहियों
धार्मिक कार्यों की खिल्ली उड़ायी जाती, न उनकी सच्ची सेवा
उपेक्षा ही की जाती, वे सानन्द छापा-तिलक लगाते कप
पहनते, अलग रहते और अलग खाते-पकाते थे। कोई उन
इन सब बातों में दख़ल नहीं देता था।

परन्तु धीरे-धीरे वृटिश गवर्नमेण्ट की ही ओर से सन्देह
कारण पैदा किये जाने लगे। एक बार पहले कई एक सि
हियों को मामूली अपराध के लिये प्राणदण्ड दिया गया अं
इससे जब उनके मनमें कुछ आतङ्क फैला, तब उनकी स्वतन्त्रता
अनुचित हस्तक्षेप किया जाने लगा। हिन्दु-सिपाहियों की कप

माला और छापा-तिलक तो गये ही, साथ ही उनकी पगड़ी भी उतार ली गयी और उसकी जगह अंगरेज़ी ढंग की टोपी पहनने का हुक्म जारी हुआ। साथ ही मुसलमान सिपाहियों को दाढ़ी मूंछ घुटवाने का भी हुक्म हुआ, जिससे वे भी हिन्दुओं की तरह परम असन्तुष्ट हो उठे। पर यह असन्तोष केवल मन-ही-मन पुष्ट होता रहा; क्योंकि वे जानते थे, कि यह प्रकाशित होने पर हमें भी पहले के सिपाहियों की तरह तोप के सामने रख कर उड़ा दिया जायगा।

इसके सिवा सिपाहियों को कम्पनी से और भी कई बातोंकी शिकायत थी। वे चाहे लाख होशियार क्यों न हों और नौकरी में सारा जीवन ही क्यों न बिता चुके हों; पर ऊंचे-ऊंचे पद उन्हें मिलने असम्भव थे। वे सब अंगरेजों के बांटे पड़ते थे। इसके सिवा पहले के राज-रजवाड़े, लड़ाई जीतने पर अपने सैनिकों को पुरस्कार-स्वरूप भूमि दान किया करते थे; परन्तु कम्पनी केवल चिकनी-चुपड़ी बातें ही बना कर काम निकालने लगी। बड़े-बड़े युरोपियनों के साईसों से भी सिपाहियों की अवस्था गिरने लगी। वे पशु की तरह माने जाने लगे। यह सब बातें धीरे-धीरे सिपाहियों के मनमें कम्पनी के प्रति घृणा उत्पन्न करने लगीं। वे जी-ही-जी में सोचने लगे, कि ये अंगरेज तो हमारी इज़्ज़त, हमारी जाति और हमारा धर्म भी लिया चाहते हैं, इसलिये अपने को इनके हाथों से बचा लेना चाहिये। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के सिपाही एक ही कारण से असन्तुष्ट हो रहे थे, अतएव इस मामले में दोनों एक हो गये।

इसी समय एक हवा का झोंका ऐसा लगा, कि आग कुछ भड़क उठी और सिपाहियोंके हृदय में छिपा हुआ असन्तोष प्रकट हो पड़ा। नवाव हैदरअली के वंशधर सिंहासन-भ्रष्ट होकर वेलोर के क़िले में अपने दिन विता रहे थे। उनके पास वहुत कुछ मालमता था और साथ ही अनेक स्वधर्मावलम्वी साथी भी थे। वे लोग वड़ी मौज से अपनी पराधीनता काट रहे थे; परन्तु सिपाहियों के मारे उनके आनन्द में विघ्न पड़ा करता था, इसलिये उन लोगों ने सोचा, कि इन सिपाहियों को किसी तरह यहां से दूर करना चाहिये।

इधर सिपाही-सैन्य के पुराने अफसरों की पेन्शन हो जाने से उनकी जगह पर नये-नये अफसर आये थे, जो सिपाहियों के साथ वड़ा वुरा वर्त्ताव करते थे। वस इसी मौक़े को अच्छा समझ कर नवाव के आदमियों ने सिपाहियों को भड़काना शुरू किया।

इसका परिणाम यह हुआ, कि सभी सिपाही अंगरेजों के विरुद्ध हो गये और उन्होंने एक दिन रात को अचानक युरोपियन फौजों पर धावा वोल दिया। इससे वहुत से युरोपियन मारे गये परन्तु तुरत ही इसका प्रतिकार हुआ और विद्रोहियों को अंगरेजी सेनाकी गोलियोंके आगे मरना और भागना ही पड़ा। टीपू सुलतान के वंशधरों ने जिस मतलव से यह उपद्रव खड़ा कराया था, वह पूरा न पड़ा। वड़ी-वड़ी मुश्किलों से उनके प्राण वचे, नहीं तो फौजी कानून के अनुसार विचार होने पर उनको वड़ा दण्ड मिलता।

यह आग वेलोर तक ही न रही। और-और जगहों में भी फैल चली। सारे मैसूर, मद्रास; कर्नाटक और निज़ाम राज्य में सिपाही लोग अंगरेज़ों की सत्ता मिटा देने के लिये षड्यन्त्र करने लगे। परन्तु साल बीतते न बीतते ही यह विप्लव समाप्त हो गया, हां, दिलों के अन्दर से द्वेष की जड़ न दूर हुई—वह केवल कुछ काल के लिये छिप रही।

क्रम से बहुत दिनों तक सिपाही लोगों में शान्ति विराजती रही। इनको जहाँ-जहाँ लड़ने के लिये भेजा गया, वहाँ-वहाँ इन लोगों ने बड़ी कुशलता और ईमानदारी के साथ युद्ध कर अँगरेज़ी राज्य का विस्तार करने में श्वेताङ्ग प्रभुओं की सहायता की; पर इस सेवा के बदले में उन्हें क्या मिला? कुछ भी नहीं। इसी लिये फिर असन्तोष की वृद्धि हो चली। वे लोग सोचने लगे,—"जब इस प्रकार अपनी जान सङ्कट में डालने पर भी इनाम-वनाम तो दूर रहा, रुपये-दो रुपये की वृद्धि वेतन में भी नहीं होती, तो फिर इस झकमारी से क्या लाभ ?"

इसी तरह का मनोभाव उस समय सिपाहियों के चित्त में धड़का रहा था, जिन दिनों वे पञ्जाब जीतने के लिये गये हुए थे। धीरे-धीरे उनमें लुक-छिपकर सलाहें होने लगीं। किसी तरह प्रधान सेनापति सर चार्ल्स नेपियर को इसका पता लग गया और उन्होंने इन षड्यन्त्रकारियों के तीन मुखियों को पकड़ कर जन्म भर के लिये कालेपानी भेज दिया। परन्तु इससे असन्तोष कम न होकर और भी बढ़ गया। ६६ नम्बर की पलटन ने खुल्लम-खुल्ला बग़ावत कर दी। पहाड़ी गुर्खों की पलटन ने इन लोगों

को पराजित कर इनके हथियार वगैरह छीन लिये। पीछे इस पल्टन के सिपाहियों ने अपनी भूल मान ली और प्रधान सेनापति सर चार्ल्स नेपियर से कहा, कि हम लोग सरकार के दुश्मन नहीं हैं, केवल वेतन बढ़वाने के लिये ही हमने अपने असन्तोष का सरकार को परिचय दिया है। यह कैफ़ियत पाकर सर चार्ल्स नेपियरने भारत-सरकार को सिपाहियों का वेतन बढ़ा देने के लिये लिखा।

उस समय लार्ड डलहौसी गवर्नर-जेनरल के पद पर विराजमान थे। उन्होंने इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया, जिससे असन्तुष्ट होकर सर चार्ल्स नेपियर ने इस्तीफा दे दिया। इससे सिपाहियों को बड़ी निराशा हुई और उनकी श्रद्धा भी कम्पनी पर से घट गयी।

इसी समय वर्मा की लड़ाई छिड़ी और सिपाहियों को जहाज़ में भरकर वहाँ भेजने का विचार हुआ; परन्तु चूँकि सिपाहियों ने पक्की प्रतिज्ञा कर ली, कि हम लोग समुद्र-यात्रा करके धर्म न गँवायेंगे, इस लिये सरकार को उन्हें भेजने का विचार छोड़ देना पड़ा।

उधर इसी जमाने में विलायत में नेपोलियन के वीर-दर्पसे त्राहि-त्राहि मची हुई थी, अतएव वहाँ से अधिक गोरी पल्टनें नहीं मँगायी जा सकती थीं; क्योंकि वहीं के युद्ध के लिये बहुत से सैनिक दरकार थे, यहाँ कैसे भेजे जाते?

जब से अँगरेजों से हिन्दुस्तान का सम्बन्ध स्थापित हुआ, से यूरोप की राजनीतिक हलचलों और लड़ाई-भिड़ाइयों के

विषय में हिन्दुस्तान में भी हलचल मचे विना नहीं रहती थी। क्रीमिया-युद्ध के समय हिन्दुस्तान में बड़ी-बड़ी विचित्र गप्पें उड़ा करती थीं। हर गली कूचे में रूस और इङ्गलैण्ड की इस लड़ाई की ही चर्चा रहती थी। एक वार गप्प उड़ी, कि रूस ने इङ्गलैण्ड पर क़ब्ज़ा कर लिया है, महारानी विक्टोरिया वहाँ से भाग कर भारत के गवर्नर जेनरल के यहाँ छिपी हुई हैं! इस उड़ती ख़बर ने सर्व साधारण के मन में अँगरेजों के प्रति श्रद्धा दूर करने में बड़ी मदद पहुँचायी। इसी समय क्रिमिया-युद्ध में भारतीय सिपाहियों को भेजने का भी प्रस्ताव हुआ। इससे सब लोग बड़े विस्मित हुए और धर्मनाश की आशङ्का से सिपाही सब घबरा उठे। सूक्ष्मदर्शी लोगों ने सिपाहियों के मन का यह भाव ताड़ लिया।

कह चुके हैं, कि यह ज़माना डलहौसी के शासन-काल का था। उनका सा गवर्नर जेनरल हिन्दुस्तान में शायद ही और कोई आया हो। उनके समय में भारत की बहुत कुछ उन्नति हुई, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु साथ ही उनकी राजनीतिक चालें ऐसी क्रूर थीं, कि उन्होंने प्रजा के बहुत बड़े भाग को अँगरेज़ी सल्तनत का कट्टर दुश्मन बना दिया। वे जो मन में आता, वही करते—किसी की एक न सुनते थे। इसी लिये उन्हें अपने शासन-काल के अन्त तक यह न मालूम होने पाया, कि हिन्दुस्तान के लोग जाति और धर्म को किस प्रकार प्रियतम पदार्थ समझते हैं? यहाँ वाले अपने प्राचीन राजाओं और उनके वंशधरों को कैसी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, यह भी उन्होंने नहीं

जाना। इसलिये उन्होंने कितने राज्यों को चौपट कर डाला, कितनों को जाल में लाकर ऐसा फाँसा, कि वे क़यामत तक सिर न उठा सकें और नाना साहब की वृत्ति भी बन्द कर दी। इस तरह हिन्दुस्तानियों के मनोभाव के विरुद्ध लगातार आचरण करते हुए उन्होंने हिन्दू, मुसल्मान, दोनों जातियों को अँगरेजी राज्य का शत्रु बना दिया। वृत्ति बन्द करने से नानासाहब अँगरेजों के जानी दुश्मन हो गये, झाँसी छिन जाने से महाराणी लक्ष्मीबाई जली बैठी थीं और अयोध्या का विस्तृत राज्य हड़प कर लेने से बङ्गाल के सिपाही मन-ही-मन ख़ार खाये बैठे थे। इस प्रकार सारे भारतवर्ष के लोगों के मन में असन्तोष का बीज बोकर लार्ड डलहौसी सन् १८५६ ई० में हिन्दुस्तान से विलायत चले गये। वे आप तो चले गये, परन्तु अपने उत्तराधिकारी का मार्ग कण्टकाकीर्ण बनाते गये!

लार्ड डलहौसी के बाद लार्ड केनिङ्ग यहाँ के गवर्नर-जेनरल बनाये गये। इन्हीं के समय में वह प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह हुआ, जिसका इतिहास लिखने के लिये हमने इस समय लेखनी उठायी है।

इतनी उपक्रमणिका इसलिये दे दी गयी है, जिससे पाठकगण इस भयानक-विद्रोह के मूल कारणों को समझ सकें।
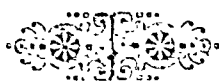
सिपाही विद्रोह ।
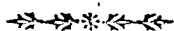
पहला अध्याय ।

विद्रोह का आरम्भ ।
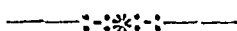
हम पहले लिख आये हैं कि न्याय से अथवा अन्याय से, अंगरेज़ी राज्य का बहुत विस्तार कर, लार्ड डलहौसी १८५६ ई० में विलायत चले गये और उनके बाद लार्ड केनिङ्ग का शासनकाल आरम्भ हुआ। सन् १८५६ किसी प्रकार बीत गया। सन् १८५७ का शीत-काल भी आनन्दसे अतिवाहित हो गया। चारों ओर शान्ति ही शान्ति दिखलाई-दे रही थी। परन्तु यह सारी शान्ति बड़ी भारी अशान्ति की सूचना दे रही है, यह कोई न जान सका।

लार्ड डलहौसी ने अपनी हरकतों से हिन्दुस्तान के बहुत से लोगों को अंगरेज़ों का जानी दुश्मन बना दिया था। कोई तो इनसे घृणा करने लगे थे, कोई डाह करने लगे थे और कोई सन्देह तथा आशङ्का से इनकी प्रत्येक चाल को परखा करते थे। उक्त लाट साहब की बदौलत कितनों ने अपनी सम्पत्ति खो दी, कितने राजा से रङ्क हो गये, कितने ही अपनी जननी जन्मभूमि से हटाये जाकर निर्जन में दिन बिता रहे थे और कितने ही

अपने लुप्त गौरव के उद्धार के लिये उत्कण्ठा के साथ उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। क्रमशः इन सब लोगों ने एक-मत हो कर भारतवर्ष से अंगरेज़ों की सत्ता उठा देने का सङ्कल्प किया और विद्रोह मचाने की धुन में लग गये। परन्तु उनका उद्देश्य हिंसामूलक होने के कारण उसमें धीरता, धर्म-भाव और विवेक की एकबारगी कमी थी। तो भी वे लोग चेष्टा करने से बाज़ न आये और उन्होंने मौक़ा पाकर अंगरेज़ों के अधीन भारतीय सिपाहियों को ही भड़काना शुरू किया। मौक़ा भी अच्छा हाथ लग गया। एक सच्ची घटना को लेकर ही चारों ओर एक भयङ्कर किम्वदन्ती फैल गयी। यही किम्वदन्ती अन्त में समस्त अनर्थों की जड़ हुई।

अब तक सिपाही "ब्राउन-बेस" नामक बन्दूक व्यवहार करते थे; परन्तु इस बार एक नयी तरह की बन्दूक जारी की गयी, जिसका निशाना "ब्राउस-बेस" से बहुत दूर तक पहुंचता था। पहले तो इस नये हथियार की बात सुनकर सिपाहियों को बड़ा हर्ष हुआ; परन्तु पीछे तो इसीने वह काण्ड कर डाला, जो भारत के इतिहास का एक अपूर्व अध्याय है। ख़बर उड़ी, कि इस नयी बन्दूक में चर्बी मिले हुए टोटे व्यवहृत करने होंगे; क्योंकि ऐसा किये बिना ये बन्दूकें भरी ही नहीं जा सकतीं। ये टोटे दांत से काटकर बन्दूक में भरने पड़ते हैं। इसके सिवा ये सुअर और गाय की चर्बी से तैयार किये जाते हैं, यह ख़बर क्रमशः तमाम जगह फैल गयी और सिपाहियों में घोर आन्दोलन आरम्भ हुआ।

सब से पहले यह ख़बर कहां से और कैसे जाहिर हुई, उसका

इतिहास भी बड़ा ही मनोरञ्जक है। पाठकों की जानकारी के लिये हम उसे भी नीचे लिखे देते हैं।

कलकत्ते से आठ मील उत्तर 'दम दम' में पहले एक सैनिक-निवास था, जहां बंगाल के तोपचियों का प्रधान अड्डा था। यहीं सैनिकों को अस्त्र-विद्या की शिक्षा दी जाती और बहुत से रण-पण्डित वीर पुरुष यहीं पड़े हुए अपने दिन बिताया करते थे। परन्तु अन्त को यह स्थान इस काम के लिये अच्छा न समझा गया और यहां का तोपख़ाना मेरठ भेज दिया गया। तोपख़ाना हटाये जाने पर सिपाहियों के वारिकों और अफ़सरों के बंगलों में और और लोग रहने लगे। हां, अब तक यहां कारतूस तैयार करने वाला एक कारख़ाना और गुदाम रह गया। साथ ही जो नयी बन्दूक़ सरकार ने जारी की थी, उसकी व्यवहार-शिक्षा के लिये जितने स्थान सरकार ने नियत किये, उनमें एक 'दमदम' भी प्रधान स्थान बनाया गया।

एक दिन जनवरी के महीने में 'दमदम'के पास ही उक्त स्थान में एक सिपाही बैठा हुआ था। इसी समय उसके निकट एक ख़लासी, जो 'दमदम'के कारतूसवाले कारख़ाने में काम करता था, आया और बोला,—"महाराज! मुझे बड़ी प्यास लगी है, ज़रा अपना लोटा दीजिये, तो मैं जल पीलूं।"

सिपाही जाति का ब्राह्मण और ख़लासी किसी नीच जाति का मनुष्य था। महाराज ने बिगड़ कर कहा,—"अरे! क्या बकता है? मेरे लोटे में पानी पीने का तेरा ही मुंह है? जानता नहीं, मैं ब्राह्मण हूं?"

यह सुनते ही उस ख़लासी ने ज़रा हंसकर कहा,—"बड़े ब्राह्मण बने हो! रहो—ये साहब लोग देखते-देखते सब को एक करे डालते हैं!"

सिपाही ने पूछा,—"अबे! इसका क्या मतलब?"

ख़लासी बोला,—महाराज! अब के हमारे कारख़ाने में एक नये ढंग का कारतूस तैयार-हो रहा है। उसमें गाय की चर्बी और सूअर का पित्ता लगा हुआ है। अब उसे ही आप लोगोंको ओठ से पकड़ कर दांत से काटना पड़ेगा। अबके सब सिपाहियों की जाति गयी।

यह कह, वह ख़लासी मुस्कराता हुआ चला गया। बेचारे ब्राह्मण-सिपाही को तो बोलती बन्द हो गयी। वह घबराया हुआ अपने बारिक में आया और उसने सब किसी को यह समाचार सुनाया। सुनते ही सब लोग अचम्भे में आगये। जाति और धर्म के नाश की तैयारी होती देख, सबके सब थर्रा उठे! सबके जी में यह बात जम गयी कि ये अंगरेज़ इसी ढंग से हमें कृस्तान बनालेना चाहते हैं।

बस इसी बात को लेकर धीरे-धीरे, चुपचाप, सिपाहियों में कानाफूसी होने लगी। अबतक तो बराबर ही ये लोग अपना दुखड़ा अपने गोरे अफसरों को सुनाया करते थे; परन्तु अब आपस में ही बातें होने लगीं—साहब लोगों को कानोंकान ख़बर न होने पायी कि किस प्रकार ऊपर बिना बादल के ही वज्र गिरने की तैयारी हो रही है। इधर एक छावनी से दूसरी छावनी में एक नगर से दूसरे नगर में यह अफ़वाह फैलने लगी। उधर

गरेज़ अफ़सर निश्चिन्तता की नींद में ख़र्राटे मारते रहे! धीरे-
रे यह जनरव सारे बंगाल में फैल गया!

बंगाल के सिपाहियों में अधिकांश लोग सूबे अवध के रहने
ाले थे। किस तरह अंगरेज़ों ने इस प्रान्तको धीरे-धीरे निगल
ाया और अन्त में यहां के नवाब वाजिदअलीशाह को मटिया-
ुर्ज में लाकर नज़रबन्द कर दिया था, यह बात वे आंखों देख
ुके थे। इस लिये बंगाल के सिपाहियों में यह ख़बर पाते ही
ोर असन्तोष फैलने लगा। उन लोगों ने मन-ही-मन सोचा:—
देखो, इन अंगरेज़ों ने हमारे देश के नवाब साहब को यहां लाकर
ैद कर रखा है और अब हम लोगों की जाति और धर्म का नाश
करने की धुनमें हैं। इन लोगों का इरादा सब को एक कर देने
का है, जिसमें सब लोग फिरङ्गियों कीसी पोशाक पहनें और
न्हीं की सी चाल चलें। फिर तो सारे देश में अङ्गरेज़ियत की
ी धूम हो जायगी, हिन्दू और मुसलमान धर्म मिट कर सब का
र्म ईसाई हो जायेगा।"

इसी तरह के विचारों ने सिपाहियों के मनमें अंगरेजों के
रति घोर घृणा और द्वेष उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। फिर
्या था? जिन लोगों को अंगरेज़ों ने धोखा दिया था, जिनका
ाज्य छीना था, जिनका हक़ मारा था, उन सब लोगों ने इस
ौके को अच्छा समझकर सिपाहियों के असन्तोष को और भी
ढ़ाना आरम्भ किया। लार्ड डलहौसी जिस अनिष्ट का बीज
ोगये थे, वह अब धीरे-धीरे अङ्कुरित होने लगा।

जिन लोगों ने धीरे-धीरे भारतवर्ष के सभी प्रधान प्रधान

राज्यों को कम्पनी के हाथ में चले जाते देखा था, ज़मीन्दारों के स्वत्व छिनते देखे थे, और यह सब देख-सुन कर जो मन-ही-मन अँगरेजों से जले बैठे थे, वे लोग इस अवसर पर भला कब चुप बैठे रह सकते थे? उन्होंने सिपाहियों के मनमें कम्पनी के दोषों की बात बैठाने की भरपूर चेष्टा की। इसके बाद ही जब टोटे में गाय और सुअर की चर्बी मिलायी जाने की बात फैली, तब तो सिपाहियों के साथ-साथ सर्वसाधारण भी उत्तेजित हो उठे। जो अग्नि कुछ काल से भीतर-ही-भीतर घूमायित हो रही थी, वह इसबार बड़े ज़ोरों से भड़क उठी।

दमदम से कई मील दूर पुण्यपयस्विनी भागीरथी के किनारे बारकपुर में एक प्रसिद्ध सैनिक-निवास है। बंगाल के सैनिकों का अधिकांश निवास यहीं रहता है। १८५७ ई०में यहां पैदल सिपाहियों की चार टुकड़ियां रहती थीं। इन चारों में से नम्बर दो और नम्बर तैंतालिस की पलटनों ने सेनापति नाट को आधीनता में काबुल की लड़ाई जीती थी। शेष दोनों में से नं० ३४ की पलटन तो एकबार हुक्म उदूली करनेके कारण तोड़ दी गयी थी और उसको जगह नयी पलटन खड़ी की गयी। इस नयी पलटन ने द्वितीय सिक्ख-युद्धमें बड़ी वीरताके साथ लड़ाई की और सरकार से प्रशंसा पायी थी। इस सैन्यदल के सेनापति कर्नल ह्वीलर थे।

ये थोड़े ही दिन से इस काम पर नियुक्त थे। ४३ वीं पलटन के सेनापति कर्नल कनेड़ी थे। ये भी थोड़े ही दिनों से इस जगह पर आये थे। पर १७ वीं और दूसरी पलटन के सेनापति बहुत दिनों के पुराने थे। इसलिये वे लोग सब के सुपरिचित

थे। सैनिक-निवास के कर्त्तृत्व का भार चार्ल्स ग्रान्ट के ऊपर था। जौनहियरसे यहां के समस्त सैनिक विभाग के सेनापति थे। एक दिन एकाएक बारकपुर के तारघर में आग लगी। दूसरे दिन फिर एक अँगरेज अफ़सर का बंगला जल गया। इसी तरह एक-एक करके अँगरेजों के रहने के स्थान प्रति दिन जलाये जाने लगे। केवल बारकपुर में ही क्यों, यहां से बहुत दूर पर रानीगञ्ज में, जहां दूसरी पलटन की एक शाखा रहती थी, वहां इसी तरह का अग्निकाण्ड जारी हुआ। साथ ही ढलती रात को सिपाहियों की सभा होने लगी। प्रत्येक रात्रि को सब लोग इकट्ठा होकर तीव्र भाषा में अँगरेज़ों की निन्दा करने लगे। इस प्रकार ये लोग केवल सभा कर या साहबों के घर में आग लगा कर ही नहीं रह गये, बल्कि भिन्न-भिन्न छावनियों भेज चिट्ठीमें-भेज कर यह सब हाल सब पर प्रकट करने लगे। इस तरह सभी छावनियों में चर्बी लगे टोटे की बात प्रकाशित हो गयी।

बारकपुर से प्रायः सौ मील दूर उत्तर की ओर बहरमपुर में गङ्गा के किनारे ही पलटनों की एक छावनी है। जो सब नवाब किसी समय दिल्ली के बादशाह के नाम मात्र अधीन रह कर बंगाल, बिहार और उड़ीसा के मालिक बने रहते थे, उन लोगोंके सुन्दर-सुन्दर वास-भवन इसके पास ही अपनी निराली छटा छह-राते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस समय मुर्शिदाबाद के नवाबों की इतिहास-प्रसिद्ध क्षमता और गौरव लुप्त हो चुका था। नवाब नाज़िम इस समय प्रचुर धन-सम्पत्तिके अधिकारी होकर असंख्य दास-दासियों के साथ भोग-विलासी धनिक की तरह अपने

इधर बारकपुर में जेनरल हियरसे ने अपने सिपाहियों को देशी भाषा में समझाना शुरू किया, कि तुम लोग व्यर्थका सन्देह न करो ; जो टोटे तुम्हें आज दिये जा रहे हैं, वे ही सदा दिये जायंगे—तुम लोग चुपचाप धैर्य और सन्तोष के साथ कार्य करो, नहीं तो जिस प्रकार १६ वीं पलटनके लोगों को दण्ड दिया जाने को है, वैसा ही यहां भी होगा। इस तरह की अन्तिम वक्तृता जेनरल हियरसे ने २६ वीं मार्च को दी थी। परन्तु वक्तृता की मोहिनी शक्ति और तेजस्विनी भाषाका अपूर्व उच्छ्वास, बहुत दिनों तक सिपाहियों को शान्त न रख सका। जेनरल हियरसे के श्रोताओं ने ऊपरसे तो बड़ी शान्ति-प्रियता दिखलायी ; पर भीतर ही भीतर चक्र चलाते रहे। १६ नं० पलटन को दण्ड दिया जायगा, उसके सिपाहियों के हथियार छीन लिये जायँगे, इस समाचार से उन लोगों का द्वेष और भी बढ़ चला।

इसी समय कर्नल मिचेल बहरमपुर से १६ वीं पल्टन को लिये-दिये आ पहुंचे। साथ ही यह भी ख़बर फैली, कि बहुत से गोरे सिपाही जहाज़ से कलकत्ते में उतरे हैं और अभी बारकपुर पहुंचा ही चाहते हैं। यह ख़बर पाते ही सिपाही लोग और भी उत्तेजित हो उठे। उन्होंने सोचा, कि यह पल्टन हमें दण्ड देने के लिये ही बुलायी गयी है।

उस दिन रविवार था। दोपहर में सभी अँगरेज अफ़सर और सेनापति अपने-अपने विश्रामागार में आराम कर रहे थे। उन्हें उस समय क्या ख़बर थी, कि इधर सिपाहियों में कैसी हल-चल जारी है।

सिपाहियों में मंगल पाँड़े नामका एक हट्टा कट्टा; मज़बूत और नौजवान सिपाही था। वह बड़ा ही धर्मनिष्ठ हिन्दू था। उस दिन उसने भी सुना, कि हम लोगों को सजा देने के लिये बहुतसे गोरे सिपाही बुलाये गये हैं। भांग के नशे में चूर मंगल-पाँड़े के होशोहवास जाते रहे—वह आपेसे बाहर हो गया। जाति और धर्मनाश करने वाले अँगरेजों को सज़ा देने के लिये एक हाथ में तलवार और दूसरे में भरी पिस्तौल ले, वह सिपाहियाना ठाठ से अपने घर से बाहर निकला। रास्ते में जो कोई मिला, उसीसे मङ्गल पाँड़े ने कहा, कि देखो, ये अँगरेज हमारा धर्म लेना चाहते हैं, तुम लोग इनके दिये हुए टोटे न छूना, इनमें गाय की चर्वी लगी हुई है! इसी समय रास्तेमें एक विगुल वाला मिला। मङ्गल पांड़े ने उससे कहा, कि विगुल बजाकर तमाम सिपाहियों को एकत्र करो; पर उसने विगुल नहीं बजायी; किन्तु युवक सिपाही का जोश तोभी कम न हुआ और वह उन्मत्त की तरह दौड़ा हुआ अँगरेजों की रहने की जगह की तरफ़ चला। इसी समय सामने एक अंगरेज अफसर को खड़ा देख, मङ्गल पांड़े ने उस पर गोली छोड़ी; परन्तु वह उसके न लगकर बग़ल से निकल गयी।

पासही ३४ न० पलटन के सिपाही भी थे; पर उन्होंने मङ्गल-पांड़े के साथ मिल युद्ध की घोषणा नहीं की। हां, उसे रोक-टोक कर उसके हथियार छीनने का भी उन लोगों ने प्रयास नहीं किया। इन्हीं में से एक हवलदार ने एडजुटेण्ट के घर में जाकर मङ्गल पांड़े का सिर फिर जाने का समाचार कह सुनाया।

लेफ्टिनेण्ट बौग उस समय ऐडजुडेण्ट थे। ने सार्जेण्ट-मेयर हिडसन के साथ परेड में चले आये, जहां मङ्गल पांड़े का ऊधम मच रहा था। उन्हें देखते ही पास ही पड़ी हुई तोप के पीछे से मङ्गल पांड़े ने उन पर गोली छोड़ी, जो उनके घोड़े को लगी। घोड़े के साथ-साथ वे भी गिर पड़े। पलक मारते ही वे सावधान होकर उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने ऊपर हमला करने वाले पर निशाना साध कर गोली छोड़ी; पर उनका भी निशाना ठीक न बैठा। तब वे तलवार लेकर आगे बढ़े। इसी समय एक और सैनिक उनकी मदद को चला आया। यह देख कर भी मङ्गलपांड़े का जोश कम न हुआ! वह भी तलवार लेकर आगे बढ़ा। चारों ओर प्राय: ४०० सिपाही आकर खड़े हो गये; परन्तु और किसीने इस युद्ध में किसी का पक्षावलम्बन नहीं किया। सब लोग चुपचाप दो युरोपियन सैनिकों के साथ एक देशी सिपाही का युद्ध देखने लगे। मङ्गलपांड़े तलवार चलानेमें ग़ज़बका फुर्तीला था—उसने उन दोनों होशियार सैनिकों की देह मारे तलवार के वार के लहूलुहान कर दी। दोनों की जान जाने की नौबत आ पहुंची। तब एक मुसलमान सैनिक साहस कर उनके प्राण बचानेके लिये आगे बढ़ा। उसका नाम था, शेख़ पल्टू। मङ्गल पांड़े ने लेफ्टिनेण्ट बौग को मारने के लिये तलवार उठायी ही थी, कि पल्टू ने पीछे से आकर उसका हाथ थाम लिया। तलवार घूम कर पल्टू के हाथ पर बैठी, तोभी पल्टू ने उसे न छोड़ा। इसी समय लेफ्टिनेण्ट बौग और उनके साथी प्राण लेकर अपने-अपने निवास-स्थान पर चले आये।

छीन लिये गये और उन्हें अपने-अपने घर जाने का हुक्म दे दिया गया। ये लोग अपनी पहली करनी के लिये दुःखित थे और अब तक गवर्नमेण्ट के विरोधी नहीं हुए थे। यद्यपि ३४ वीं पल्टन के लोगों ने उनके पास जाकर कई बार उन्हें उभाड़ने की चेष्टा की थी। इतने पर भी इनकी सजा बहाल रही। यदि इनका पश्चात्ताप और वर्त्तमान शान्तभाव देख, गवर्न्मेंएट पुरानी बातें भूल जाती; तो शायद इस दल के सभी लोग गवर्नमेण्ट के सच्चे मित्र प्रमाणित होते; परन्तु होनहार को कौन मेट सकता है? गवर्न्मेंएट ने इन्हें मित्र न बनाकर शत्रु ही बना लिया!

दूसरा अध्याय।

आग चेती।

मङ्गल पाँड़े की हरकतों ने हर अँगरेज़ के मन में हड़कम्प पैदा कर दिया। गवर्नर-जेनरल के पास इस सैन्यदल को भी तोड़ डालने के लिये अर्जी भेजी गयी, परन्तु लार्ड केनिङ्ग के से शान्त-स्वभाव और सुविवेचक से जल्दबाज़ी करते न बनी। कभी-कभी तो जल्दबाज़ी बहुत बुरी होती है; पर कभी उसके सिवा कल्याण का और कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। इस विषय में भी ऐसाही हुआ। उस सैन्यदल को निरस्त्र करने में जितनी ही देर होने लगी, उतना ही इन लोगों के मन में गवर्नमेण्ट के प्रति घृणा विद्वेष और उपेक्षा का भाव भरने लगा। इधर यह असन्तोष केवल बंगाल तक ही सिमा-बद्ध न रह कर समस्त भारतवर्ष में व्याप्त होने की तैयारी करने लगा।

कलकत्ते से हज़ारों मील दूर पञ्जाब-प्रदेश में अम्बाला नाम का एक नगर है। इसके पास ही भारतवर्ष के भाग्य का बार-बार फ़ैसला करनेवाला वह कुरुक्षेत्र नामक युद्धक्षेत्र है, जहां कौरव-पाण्डवों के भयङ्कर बन्धु-विरोध की मीमांसा हुई थी, जहां पृथ्वीराज और समरसिंह की प्राण-वायु के साथ-ही-साथ हिन्दुओं का सौभाग्य-सूर्य्य सदाके लिये डूब गया था, जहां मराठों

ने रत्न-सिंहासन पानेकी आशासे युद्ध कर अन्तमें अपनी जन्मभूमि को दी, जहां हिन्दू और मुसलमान—विजेता और विजित—दोनों ही अनन्त निद्रा में शयन कर संसार को साम्यवाद की अपार महिमा बतला रहे हैं। जिस समय युरोप के बड़े-बड़े राष्ट्र जंगली पशुओं को मार-मार कर खाने के सिवा और कुछ भी नहीं जानते थे, उस समय भी यह अम्बाला वर्त्तमान था और यहां के अधिवासी परमोच्च सभ्यता के अधिकारी थे।

जिन दिनों का हाल लिखा जा रहा है, उन दिनों यहीं पर गवर्नमेण्ट का प्रधान सैनिक अड्डा था। प्रधान सेनापति आनसन साहब मार्च महीने के मध्य भाग में ही यहां आकर शिमले जाने की तैयारी कर रहे थे। इसी समय सिपाहियों में असन्तोष फैलने की ख़बर उनके पास पहुंची।

इस समय अम्बाले में जो भिन्न-भिन्न सैनिक-दल थे, उन्हें भी नयी बन्दूकों के चलाने की विधि सिखलायी जा रही थी। शिक्षा देने का काम लेफ्टिनेण्ट मार्टिनो के सुपुर्द था।

इन्हीं दिनों ३६ नं० की पलटन प्रधान सेनापति के साथ-साथ अम्बाले आयी हुई थी। अम्बालेके कुछ सिपाही उनलोगोंसे मिलने गये। नयी बन्दूकों के चलाने की शिक्षा दी जा रही है, यह बात सुनते ही ३६ वीं पलटन के सिपाहियों ने कहा, कि ये अँगरेज इसी बहाने से हमें क्रस्तान बनाया चाहते हैं—अपवित्र टोटे देकर ये हमारी जाति और धर्म नष्ट करने को तैयार हैं, यह सुनते ही अम्बाले के वे सिपाही बड़े ही चिन्तित हुए। उन्होंने वहां से आकर यह बात लेफ्टिनेण्ट मार्टिनो से कही। इतने में

एक सिपाही रोता-चिल्लाता हुआ वहां आ पहुंचा और मार्टिनों साहब से कहा, कि मेरी तो जाति चली गयी—कोई मेरे साथ भोजन करने को तैयार नहीं है। यह सुनकर मार्टिनों साहब बड़े ही चक्कर में पड़े। दर्याफ्त करने पर उन्हें मालूम हुआ, कि अम्बाला छावनी के सभी सिपाही यह सुनकर आतङ्कित हो रहे हैं, कि उन्हें अपवित्र चर्बी मिले हुए टोटे व्यवहार करने होंगे। किसी-किसी को तो इस बात का भी सन्देह हो गया है, कि उसने वही अपवित्र टोटा व्यवहार किया है, इसलिये घर जाने पर कोई उसके हाथ का छुआ पानी भी न पियेगा। मतलब यह, कि सभी भीत, चञ्चल और धर्म तथा जाति की रक्षा के लिये व्याकुल हो रहे हैं। यह सब मालूम कर साहबने सहकारी ऐडजुटेण्ट जेनरल के पास एक पत्र लिखा। प्रधान सेनापति को पहले ही इस बात का पता लग गया था, इसीलिये वे उचित कार्रवाई करने के विचार में लगे हुए थे। २३ वीं मार्च को वे अस्त्र-शिक्षा किस प्रकार दी जा रही है, इसका मुलाहिजा करने आये। इसके एक दिन पहले उनके पास खबर आयी थी कि सिपाही लोग अपने हृदय के कुछ भाव उन पर प्रकट किया चाहते हैं। अतएव उन्होंने आते ही सब सिपाहियों को अपने पास बुलाया और इस आशय की एक वक्तृता दी :—

"इन सिपाहियों में यह जो भ्रम फैल रहा है, कि गवर्नमेण्ट इन लोगों की जाति और धर्म नष्ट किया चाहती, यह एक वाहियात बेजड़ है। भला सरकार को आप लोगों की जाति या धर्म नष्ट करने से क्या लाभ होगा? जिन नये टोटों को लेकर यह मिथ्या-

भ्रम फैल रहा है, वे अब तक न तो जारी किये गये हैं, न जारी किये जायँगे। ऐसा कहने पर भी जो लोग अपने अफसरों या सेनापति की बातका विश्वास नहीं करते, वे सैनिक नहीं कहे जा सकते ; क्योंकि सैनिकों का पहला कर्त्तव्य अपने ऊपर वाले अफसरों की आज्ञा पालन करना है। मैं आप लोगों को बतला देना चाहता हूं, कि सैनिकों को इस प्रकार की हुक्म-उदूली के लिये बहुत कड़ा दण्ड दिया जाता है। मैं यह बात आप लोगों को डराने के लिये नहीं कहता ; सिर्फ यह जँचा देना चाहता हूं, कि आप लोग-अपने-अपने साथियों और अधीन सिपाहियों को समझा दें, कि गवर्मेण्ट ने न तो आजतक किसी के धर्म में हस्तक्षेप किया है और न आगे करना चाहती है। मेरा यह पूर्ण विश्वास है, कि आप लोग सैनिक धर्मका पालन करेंगे।"

यह कह प्रधान सेनापति चुप हो गये। उन्हें हिन्दीमें बोलने का अभ्यास नहीं था, इसलिये वे अँगरेजीमें ही बोले थे। उनकी बातों का मर्म मार्टिन साहब ने सिपाहियों को समझा दिया। पर जैसे जेनरल हियरसे की वक्तृताओंका कोई फल न हुआ, वैसे ही प्रधान सेनापति की बातें भी सिपाहियों के एक कान से जाकर दूसरे कान से निकल गयीं। हां, कुछ देशी अफसरों को प्रधान सेनापति की बातें बहुत पसन्द आयीं और उन्होंने सिपाहियों की ओर से मार्टिनो साहब से कहा,—"आप प्रधान सेनापति साहब को यह बतला दें, कि सिपाही लोग नये टोटे व्यवहार करने को तैयार हैं ; परन्तु इस समय यह बात हर गांव और हर कसबे फैल रही है, कि सरकार ने सिपाहियों के धर्म बिगाड़ने के

लिये चर्बी मिले हुए टोटे जारी किये हैं। इसीलिये सब लोगों को भय हो रहा है, कि कहीं घर जाने पर वे अपने भाई बन्धुओं द्वारा जातिच्युत न कर दिये जायें। ऐसा होने से बेचारों का जीवन ही बरबाद हो जायगा।"

मार्टिनो साहब ने यह सब हाल प्रधान सेनापति को बतला देने की प्रतिज्ञा की और अपनी इस प्रतिज्ञा का यथासमय पालन भी किया। उन्होंने ऐडजुटेण्ट जेनरल को जो पत्र लिखा, उस में साफ़-साफ़ लिख डाला, कि—

"सैनिकों में बहुत से बुद्धिमान् और विश्वासी मनुष्य भी हैं। इन लोगों का कहना है, कि हम लोग सेनापति का हुक्म मानने को तैयार हैं; परन्तु उन्हें भय है, कि जैसा शोर चारों ओर मच रहा है, उससे उनके जाति से अलग किये जाने का ढंग है। मैंने जहाँ तक पता लगाया है, उससे मैं कह सकता हूं, कि उनका यह कहना बेजा नहीं है। भारतवासियों को धर्म का बड़ा ख़याल रहता है। आजकल न जाने क्यों, उनके धर्मभाव को इतनी ठेस पहुँची है, कि सब-के-सब उत्तेजित हो रहे हैं। अपवित्र टोटेवाली बात तो गौण है; प्रधान कारण कोई और ही मालूम होता है।"

यथासमय मार्टिनों साहब का यह पत्र ऐडजुटेण्ट जेनरल के आफ़िस से प्रधान सेनापति के पास भेज दिया गया। जेनरल आनसन यह पत्र पाकर बड़ी चिन्ता में पड़े। उन्होंने उसी दिन गवर्नर-जेनरल को इस आशय का एक पत्र लिखा, कि मुझे इस बात का विश्वास है कि 'शिक्षागार' का सैनिक दल सन्तुष्ट है

और ठीक-ठिकाने से रहेगा ; परन्तु उनके साथ उनके भाई-बन्धु कैसा व्यवहार करेंगे, यही एक चिन्तनीय विषय है। गवर्नर-जेनरल को यह पत्र भेज कर सेनापति आनसन साहब फिर सोचने लगे, कि अब कैसे क्या करना चाहिये ? पहले तो उन्होंने अम्बाले का शिक्षागार ही उठा देना चाहा ; पर पीछे यही निश्चय किया, कि टोटोंके काग़ज़ के बारे में ही सिपाहियों के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ है; इस लिये जब तक उनके बारे में मेरठ से कोई संवाद नहीं प्राप्त होता, तबतक उनका व्यवहार बन्द रखना ही ठीक है।

इधर गवर्नर-जेनरल साहब ने प्रधान सेनापति की चिट्ठी के जवाब में इस आशय का एक पत्र लिखा:—

अम्बाले के सैनिक शिक्षागार को उठा देना जितना बुरा होगा, उतना ही बुरा टोटे का व्यवहार बन्द करना भी होगा ; क्योंकि इससे सैनिकों की शिक्षा पूरी न होगी और वे यह ठीक समझ जायेंगे, कि टोटे में ज़रूर ही कोई अपवित्र वस्तु थी, तभी गवर्नमेण्ट ने उसका व्यवहार बन्द कर दिया है। इसलिये मेरी तो राय यही है, कि टोटे काम में लाये जायें। इससे वे अपना भ्रम दूर कर सकेंगे और औरों के भी भ्रम छुड़ायेंगे। अभी टोटे का इस्तेमाल रोक देने से जो सन्देह पैदा हुआ है, वह और भी बढ़ जावेगा—फिर उसका परिणाम बड़ा बुरा होगा।"

यह पत्र पाकर प्रधान सेनापति आनसन को अपना विचार बदल देना पड़ा और अम्बाले के शिक्षागार में टोटे का व्यवहार बन्द न हुआ।

इसके बादही आनसन साहब शिमला चले गये और वहां

और ठीक-ठिकाने बने की जो आज्ञा हुई है, उसीसे चिढ़कर सिपा कैसा व्यवहार की है, कि हमलोग सिपाहियों के रहने के सब घर को यह पत्र गे।* परन्तु विचारकों के सामने कोई अपराधी कि अब ाया जा सका। यद्यपि किसीने गवाहों को गवाही देने शिघ्न रोका, न डराया-धमकाया, तथापि किसीने किसी के ऊपर अपराध न लगाया। यह देख समस्त अधिकारी हैरत में आ गये। प्रधान सेनापति ने बड़े खेद के साथ गवर्नर जनरल को लिखा—"हम लोग अम्बाले के इस अग्नि-काण्ड के एक भी अपराधी को अबतक नहीं पकड़ सके। यह बड़े विस्मय की बात है। दुष्टगण जिसे अपना वैरी समझते हैं, उसीका घर जला डालते हैं और इन लोगों ने ऐसी गुट्टबन्दी कर रखी है, कि जो असल हाल जानता है, वह भी भेद खोलने को तैयार नहीं है।"†

इसी तरह दिन बीतने लगे। भारतवर्ष से अँगरेजों को दूर कर देने का सिपाहियों का सङ्कल्प दृढ़ होता चला गया, गवर्नर जेनरल और उनके मन्त्रीगण रात-दिन इसी चिन्ता में चूर रहने लगे, कि किस प्रकार आनेवाली विपद् टाली जा सकेगी; परन्तु भारत के प्रधान सेनापति आनसन इस विषय में उतने दत्तचित्त नहीं थे। वे शिमला-शैल के सौन्दर्य का ही आनन्द उपभोग कर रहे थे। उनकी यह उदासीनता बड़ी ही बुरी थी।

लार्ड केनिङ्ग जिस बात से डर रहे थे, अन्तको वही सामने आयी। एकही उद्देश्य-साधन को अपना लक्ष्य बनाकर, हिन्दू और

* Holmes history of the Indian mutiny

† Kayes sepoy war Vol-1-

मुसलमान एक हो रहे हैं, इस बात का पूरा-पूरा प्रमाण पाया गया। अब तक अधिकारी वर्ग यही जानते थे, कि नयी राइ-फल-बन्दूकें और चर्बी मिले टोटे ही सारे असन्तोष की जड़ है; क्योंकि पैदल सेना में हिन्दू ही अधिक हैं और वे जाति और धर्म नाश की शङ्का पद-पद पर किया करते हैं। अब के मेरठसे ख़बर आयी, कि वहाँ के घुड़सवार सिपाही भी सरकारके विरुद्ध सिर उठा रहे हैं। ये सिपाही अधिकांश में मुसलमान ही थे, अब अधिकारियों की आँखें खुलीं और वे समझ गये, कि इस समय हिन्दू और मुसलमान अपना आपस का लड़ाई-झगड़ा भूल कर हम अँगरेजों के विरुद्ध एक होकर खड़े होना चाहते हैं। इनका एक मात्र उद्देश्य हमें हिन्दुस्तान से मार भगाना ही हो रहा है।

मेरठ में सैनिकों की एक बड़ी भारी छावनी थी। यहां देशी और गोरी दोनों पलटने रहती थीं। यहाँ तोपचियों का भी एक बड़ा भारी अड्डा था। पैदल और घुड़सवार, दोनों तरह के सिपाही भी चतुर सेनापतियों के अधीन हर घड़ी तैयार रहते थे। यहां नये टोटे तैयार करने का कारख़ाना भी था। सैनिक निवास के बीचों-बीच काली नदी बह रही थी। सारी छावनी की लम्बाई चौड़ाई २ मील थी। उत्तर की ओर अफ़-सरों के रहने के मकान बने हुए थे। वहीं गोरे सिपाहियों के डेरे भी थे। युरोपियन सैनिकों के डेरे से बहुत दूर नदी के दूसरी तरफ़ हिन्दुस्तानी सिपाहियों के रहने के स्थान थे। कहने का मतलब यह, कि गोरे और काले सिपाही एक साथ नहीं रहते

थे। इस समय मेरठ में १८५३ गोरे और २९२२ काले सिपाही मौजूद थे।

पहले ही ख़बर उड़ चुकी थी, कि मेरठ के सिपाहियों में बड़ा असन्तोष फैला हुआ है; इसीलिये पश्चिम की प्रायः सब छावनियों के सिपाही उधर ही को कान लगाये हुए थे। प्रति दिन लोगों का यह कौतूहल बढ़ता ही जाता था। लोगों के हृदय में यह विश्वास जड़ पकड़ता ही गया, कि अँगरेज लोग हमारा धर्म लेने को तुले बैठे हैं। बहुत से लोगों ने तो इस बात का हर जगह प्रचार करने का बीड़ा सा उठा लिया था; वे कहीं साधु संन्यासी या कहीं फ़कीर बन कर पहुंचते और लोगों को तरह तरह के लटके सुना कर अँगरेजों के विरुद्ध उभाड़ा करते थे। कोई कहता,—"कम्पनी का राज्य सन् १७५७ में हिन्दुस्तान में जारी हुआ, अब सौ वर्ष बाद इनका क्या परिणाम होता है, वह देखना।"

दूसरा कहता,—"मुसलमानों में यह बात पहले से ही कही हुई है, कि सौ साल तक आग पूजने वालों का राज्य रहेगा, इसके बाद सौ साल तक इसामसीह के मानने वालों का। इनके राज्य में बहुत लोग दुःखी होंगे, इसलिये उनके आंसुओं से तरस खाकर खुदा फिर सच्चाई का राज्य कायम करेगा और हर एक काफिर का सिर तन से जुदा कर दिया जावेगा।"

ऐसा ही एक फ़क़ीर इन दिनों मेरठमें आया हुआ था, जो हाथी पर सवार हो तमाम जगह घूमता फिरता था। उसके साथ ... से चेले और नौकर-चाकर थे। पहरेवालों को उस पर

कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने अधिकारियों को ख़बर दी। अन्त में उसे शहर छोड़ देने का हुक्म दिया गया। इसके बाद ही वह अपने साथियों समेत अपने स्थान से हट गया; पर मेरठ से न टला। बहुतों का तो यह अनुमान है, कि वह किसी पलटन में ही लुक-छिप कर रहता होगा।

टोटे के मामले को लेकर जैसी उत्तेजना मेरठ में फैली, वैसी और कहीं नहीं। ३ नं० घुड़सवार पलटन, इन दिनों यहीं थी, जो लार्ड लेक के अधीन दिल्ली, लासवारी और भरतपुर में बड़ी वीरता दिखला चुकी थी तथा अफगानिस्तान, अलीवाल और सोबराव की लड़ाइयों में भी नाम पा चुकी थी। इस दल में बहुत से संभ्रान्त और उच्च श्रेणी के मनुष्य भी थे। ये तलवार और बन्दूक दोनों चलाते थे। एप्रिल महीने के अन्त में सबसे पहले इसी पलटन ने अपने अफसरों का हुक्म मानने से इनकार किया। इन्हें न तो कोई नया हथियार दिया गया और न दूसरी कोई नयी चीज़ इस्तेमाल के लिये दी गयी—उलटे जो टोटा ये लोग पहले दाँत से काटा करते थे, उसे हाथ से ही काट लेने का नियम जारी किया गया था। जिस उद्देश्य से यह नयी रीति प्रचलित की गयी थी, उसे ही समझाने के लिये सेनापति कर्नल स्मार्थ ने सबको परेड के स्थान में आने का हुक्म दिया। यही निश्चय हुआ कि २४ वीं एप्रिल को सबेरे पहले परेड के स्थान में एकत्र होंगे। इसके एक दिन पहले साँझ होने से न होते ख़बर उड़ी थी, कि अश्वारोही सैनिकों ने टोटे को दाँतों से छूना भी अस्वीकार किया है। २३ वीं को ही सेनापति कर्नल

हुक्म भी जारी हुआ। इसी दिन हीरासिंह नामक एक पुराने हवलदार ने अपने दल के कप्तान से कहा कि टोटे के मामले में सबके दिलों में शक पैदा हो गया है ; तिस पर सेनापति साहब का हुक्म जारी होने से लोग और भी गरम हो रहे हैं, इसलिये परेड के समय टोटे का व्यवहार न करने को कहा जाये, तो अच्छा होगा। कप्तान ने रात को दस बजे ही यह बात ऐडजुटेण्ट के पास लिख भेजी ; पर उन्होंने इसके अनुसार काम करने में अपनी कापुरुषता समझी, इसलिये जो आज्ञा जारी हुई थी, वह ज्यों-की-त्यों रही !

नियत दिनको, नियत समय पर, सब लोग परेड-भूमि में आ पहुंचे, परन्तु ६० सैनिकों में से बूढ़े हीरासिँह वगैरह पांच जनों ने ही सेनापति की आज्ञा मानी, बाकी ८५ सैनिकों ने टोटे को हाथ भी न लगाया। कर्नल स्माइथ ने उन्हें लाख समझाया ; पर वे टस से मस न हुए।

कर्नल स्माइथ पर सिपाहियों की श्रद्धा नहीं थी। वे बड़े ही उद्धत-प्रकृति के जीव थे, इसलिये समय की गति देखे बिना ही मनमानी कार्रवाई कर बैठते थे। इस समय भी वे हवा के रुख पर न चले। इसीसे सिपाहियों का असन्तोष और भी बढ़ता चला गया।

इन सब घटनाओं से लार्ड केनिङ्ग स्पष्ट समझ गये, कि सिपाहियों के हृदय में क्रमशः गहरा सन्देह जड़ पकड़ रहा है, जिससे थोड़े ही दिनों के अन्दर कोई भारी अनिष्ट हुआ चाहता है। वे धीर पुरुष थे, तथापि इस मामले में उनकी धीरता जवाब

देने लगी। उन्हें चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति दिखाई देने लगी। उन्होंने देखा, कि केवल सिपाहियों में ही नहीं, सर्व-साधारण में भी उत्तेजना फैली हुई है। मेरठ की ही तरह और भी बहुत से स्थानों के हिन्दू-मुसलमानों में यह विश्वास जड़ पकड़ने लगा, कि ये अँगरेज लोग हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही का धर्म बिगाड़ना चाहते हैं। अब तक तो बात सिपाहियों के टोटे में चर्बी मिलायी जाने की ही थी, अबके यह अफ़वाह उड़ी कि हिन्दुस्तानियोंके खाने-पीने की चीजों में गाय की हड्डीका चूरा मिलाया जा रहा है और कुओं में सुअर की चर्बी डाल दी गयी है। यह अफ़वाह तमाम जगह बिजली की तरह फैलने लगी। भय, आशङ्का और उत्तेजना का राज्य सा फैल गया। लाहौर से कलकत्ते तक के समस्त सिपाहियों में ये नयी-नयी अफवाहें प्रचारित होने लगीं। प्रत्येक देशी रियासत, जिसको अँगरेजों से कुछ नुक़सान पहुंचा था, अराजता का अड्डा हो गयी। सारा देश अफ़वाहों की आँधी में उड़ता हुआ मालूम पड़ने लगा।

इन दिनों कानपुर में आटे का भाव चढ़ा हुआ था; इसलिये व्यापारी लोग मेरठ से आटा ख़रीदकर सरकारी नाव द्वारा कानपुर ले आने लगे। यह चालानी का आटा जब पहले-पहल कानपुर पहुंचा, तब भाव में सस्ता होने के कारण सब लोग यही आटा खरीदने लगे। परन्तु दूसरी बार चालान आनेके पहले ही कानपुर में हल्ला हो गया कि यह आटा अँगरेजों की चक्की में पिसा गया है और उन लोगों ने इसमें गाय की हड्डी का चूरा मिलाकर हम लोगों का धर्मनाश करना विचारा है। फिर क्या

था। बात की बात में मेरठ के आटे की बिक्री बन्द हो गयी। क्या सिपाही, क्या साधारण प्रजा, सबने मानों इस आटे को न छूने की शपथ कर ली। यह खबर भी बड़ी जल्दी अन्य स्थानों में पहुँच गयी। सब लोग सोचने लगे, कि आज यह आटा कानपुर में लाया गया है, तो कल हमारे यहाँ भी लाया जायेगा। फिर तो सब को कृस्तान होना ही पड़ेगा। इस बातने तो पिछली सब बातों से नम्बर मार लिया और लोगों का अँगरेजों के प्रति विद्वेष बढ़ने लगा। जिन्होंने मेरठ का आटा खरीदा था, उन्होंने वह सब का सब फेंक दिया, जिन्होंने भूल से रोटी पका ली थीं, उन्होंने पकी-पकायी रोटियाँ फेंक दीं, जिन्होंने ग्रास मुँह में डाल लिया था, उन्होंने भी समाचार पाते ही उसे मुँह से नीचे गिरा दिया। कानपुर के आटे के व्यापारियोंने ही अपना रोजगार घटते देखकर यह गप्प उड़ायी थी, या जो लोग अँगरेजों को बदनाम करने के लिये उधार खाये बैठे थे, उन्होंने उड़ायी थी, यह तो अबतक मालूम न हो सका; पर गप्प जरूर उड़ी और उसने इन दोनों ही के मतलब सिद्ध कर दिये। लोगों के जी में यह बात पत्थर की लकीर की तरह बैठ गयी।

इधर यह हो ही रहा था, कि एक और विचित्र घटना ने इस आग में घी डाला। आटे की गप्प की तरह आजतक इसका भी पता न लगा, कि यह कहाँ से पैदा हुई और कौन इसका आविष्कार करने वाला था। पच्छिम के लोग रोटी को 'चपाती' कहते हैं। जिस समय का हाल लिखा जा रहा है,

उस समय न मालूम किस मतलब से एक गाँव का आदमी दूसरे गाँव के मुखिये के पास एक 'चपाती' दे आता था। इस तरह हर गाँव में एक-एक चपाती पड़ोसी ग्रामोंसे पहुँचने लगी। पहले तो सरकारी अधिकारियों का इस ओर ध्यान ही न गया; पीछे जब इस पर निगाह पहुँची, तब जाँच करने का हुक्म हुआ; परन्तु कोई असली हाल न मालूम कर सका। किसी ने कहा, कि यह महज़ देहातियों का गँवारपन है—उनका विश्वास है, कि इस तरह एक गाँव की चपाती दूसरे गाँव में भेज देने से वहाँ की रोग-बला दूसरे गाँव में चली जाती है। किसी ने कहा, कि इन चपातियोंके भीतर गुप्तपत्र भेजे जाते हैं, जिनमें लिखा हुआ होता है, कि ये अँगरेज अब हमें अपवित्र आटे की रोटी खिलाकर विधर्मी बनाना चाहते हैं। इस तरह जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आतीं; परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं, कि जिन-जिन स्थानों में यह चपाती पहुँची, वहीं तरह-तरहकी गप्पें उड़ने लगीं और लोगोंमें उत्तेजना दिखाई देने लगी।

इन्हीं उत्तेजना के दिनों में कुछ लोगों का ध्यान नाना साहब की ओर गया, जो कानपुर के पास ही बिठूर नामक स्थान में रहते थे। बेचारे समस्त पद गौरव और सम्मान से वञ्चित होकर पिता की छोड़ी हुई वृत्ति खोकर, बड़े दीन भाव से अपना समय बिता रहे थे। महाराष्ट्र-साम्राज्य के नेता पराक्रमशाली और बाजीराव के उत्तराधिकारी की इस समय बड़ी ही शोचनीय अवस्था थी। १८५६ में जब चारों ओर असन्तोष की

लहरें उठने की सूचना हो रही थी, तभी नाना साहब सैर को निकले। पहले वे कालपी में आये। वहां से मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह से मिलने के लिये दिल्ली गये। दिल्ली से लौटती बार वे १८ वीं एप्रिलको लखनऊ आ पहुंचे। उस समय सर हेनरी लारेन्स सूबे अवध के गवर्नर थे। लखनऊ के नवाब को सारी सम्पत्ति छीनकर अँगरेजों ने जो उन्हें कलकत्ते के पास ले जाकर नजरबन्द कर रखा था, इसी लिये इस सूबे के लोग अँगरेजों से बेतरह जले हुए थे। इधर पहले से अधिक माल-गुजारी वसूल कर, तथा कितने ही ताल्लुकेदारों की जगह-जमीन छीनकर अँगरेजों ने सूबेदार के आदमियों को अपना वैरी बना लिया था। नवाब की अमलदारी में वे बड़े सुख चैन से रहते थे; बृटिश अमलदारी में उनके वे सुख-चैन नष्ट हो गये। उनके बड़े बड़े महल-मकान ढा दिये गये, धर्ममन्दिरों पर भी सरकार का दखल हो गया, जमींदारी भी छीनी जाने लगी और माल-गुजारी वसूल करने का ढंग ही कुछ और हो गया। इन सब कारणोंसे लोगों के मन में यहां तक असन्तोष बढ़ गया, कि कोई-कोई तो अँगरेज अफसरों पर कङ्कड़ फेंकने से भी बाज़ न आये।

जिस दिन नाना साहबने लखनऊ कीयात्रा की, उसी दिन सर हेनरी लारेन्स ने इस सम्बन्ध में गवर्नर-जेनरल को लिखा,—“इस नगर में ६।७ लाख आदमी रहते हैं। मैंने सुना है, कि इन में प्राय: २०,००० निरस्त्र सैन्य हैं। ये सब अन्न के लिये तरस हैं। आज सवेरे विचारकर्त्ता कमिश्नर अमाने साहबको

एकाने कङ्कड़ फेंक कर मारा। प्रधान इञ्जिनियर ऐण्डरसन साहब पर भी ईंट फेंकी गयी है।..........महल मकानों के तोड़े जाने से लोगों में बड़ी नाराजी फैल रही है। यह खबर सुन कर लोग और भी असन्तुष्ट हो रहे हैं, कि अभी और भी बहुत से मकान गिराये जायेंगे। खास कर धर्म मन्दिरोंपर अधिकार कर लेने से लोगों में विशेष असन्तोष फैल गया है।...... ......मालगुजारी वसूल करने का ढंग भी ठीक नहीं। बेचारे ताल्लुकेदारों को बहुत नुक़सान पहुँचाया गया। फैजाबाद-विभाग के किसी-किसी ताल्लुकेदारका आधा और किसी-किसी का सर्वस्व नष्ट हो गया है।"

इसी मर्मभेदी असन्तोष और गम्भीर उत्तेजना के जमाने में नाना साहब ने लखनऊ मे पदार्पण किया। सर हेनरी लारेन्स ने उनकी बड़ी आवभगत की और अन्य कर्मचारियों को भी उनके प्रति सम्मान प्रकट करने की ताकीद कर दी।

बहुत से अँगरेज इतिहास-लेखकों ने लिखा है, कि नाना साहब की यह यात्रा सैर-सपाटा के लिये नहीं थी; बल्कि वे जहां-तहां सब लोगों को अँगरेजी शासन के विरुद्ध उभाड़ते चलते थे। परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उस समय लखनऊ के लोग अपने नवाब के नजरबन्द किये जाने और उनकी नवाबी छिन जाने से बड़े ही उत्तेजित हो रहे थे; परन्तु नाना साहब ने वहाँ आकर कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे उनके लखनऊ आने का सैर के सिवा कोई और मतलब निकाला जा सके।

पर यदि मान भी लें, कि वे ऐसा ही कर रहे थे ; तो भी उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता ; क्योंकि उनके साथ बहुत बड़ी बेइन्साफ़ी की गयी थी। हो सकता है, कि उनके विचार अच्छे न हों, उद्देश्य पवित्र न हों, परन्तु उनके मनमें प्रतिहिंसा का भाव उत्पन्न होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं कही जा सकती। उनके साथ जो अन्याय हुआ था, उसने उनके मन में यदि ईर्ष्या और बदले की आग पैदा कर दी, तो कौन कह सकता है, कि यह मनुष्य-स्वभाव से विरुद्ध बात थी?

उपक्रमणिका में हमने नाना साहब के जिन दूत अज़ीमुल्ला-ख़ां का हाल लिखा है, तथा सितारेके राजदूत जिन रंगबापाजी का ज़िक्र किया है, ये दोनों ही दूत विफल मनोरथ हो, इस समय विलायत से भारत में चले आये थे। लार्ड डलहौसी की दुष्ट राजनीति ने जब चारों ओर असन्तोष की आग सुलगा दी, तब दक्षिणमें रंगबापाजी और उत्तर में अज़ीमुल्लाख़ांने उस आग में फूंक मारनी शुरू की।

कुछ ही दिनों बाद, नाना साहब का नाम अँगरेज़ों के लिये एक भय की वस्तु हो गया। जो कदाचित् बहुत बड़ा मित्र होता, अपनी क्षुद्र स्वार्थपरता के कारण लार्ड डलहौसी ने उसे अँगरेज़ी राज्य का इतना बड़ा शत्रु बना दिया, जिसने इस सल्तनत की नींव ही खोद डालने का प्रयत्न किया। यदि परमात्मा का ही आदेश न होता, कि भारत कुछ दिनों और अँगरेज़ोंके चरणों में झुककर उसकी शिष्यता करे, तो जैसी भयंकर आग इन पीड़ित व्यक्तियों ने प्रतिहिंसा के आवेश में आकर

लगायी थी, उससे उद्धार पाना ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के लिये बड़ा ही कठिन कार्य था। तब शायद यह युद्ध विद्रोह न कहलाकर भारतीय राष्ट्र का स्वातन्त्र्य-युद्ध कहा जाता और इसके लिये हम पर गालियों की बौछार न कर, विश्व के ऐतिहासिक, पुष्पों की वर्षा करते!

तीसरा अध्याय ।

—:o:—

चिनगारियां उड़ने लगीं ।
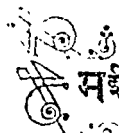
मई का महीना आ पहुंचा । कहीं किसी तरह की गड़बड़ नहीं नज़र आती थी । बारकपुरके सिपाही चुपचाप थे, पञ्जाब के स्यालकोट और अम्बाले के सिपाही नयी बन्दूकों का व्यवहार करना बड़ी ख़ुशी से सीख रहे थे । भारत के गवर्नर-जेनरल के पास चारों ओर से यही सब शान्तिदायक समाचार आ रहे थे । इसीलिये उन्होंने सोचा, कि सिपाहियों-के दिलमें धर्म और जाति के नाश की जो आशङ्का उत्पन्न हुई थी, वह अब भी आ गयी । यही सोच कर लार्ड केनिङ्ग साहब ने शान्ति के समय जिन सब कार्यों की ओर ध्यान देना चाहिये--उन्हीं सब कार्यों में मन लगाया । उन्होंने बम्बई के गवर्नर के साथ फ़ारस की सन्धि और फ़ारस की लड़ाई के ख़र्च के बारे में लिखा पढ़ी शुरू की । पश्चिमोत्तर प्रदेश से गवर्नर के पास शिक्षा विभाग की सहायता और स्त्री-शिक्षा के बारे में, हैदराबाद के रेज़िडेण्ट के पास निज़ाम की रियासत के बारे में और बड़ौदे के रेज़िडेण्ट के पास गायकवाड़ के राजत्व के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी चलने लगी ।

परन्तु एकाएक न जाने किधर से तूफान उठ खड़ा हुआ, सारी शान्ति हवा हो गयी, प्रलय-काल के मेघ गगन मण्डल

में छा गये और यह स्पष्ट मालूम पड़ने लगा, कि अभी-अभी वज्र-पात हुआ ही चाहता है।

मेरठ की ३ री घुड़सवार पलटन के जिन ८५ सिपाहियों ने टोटा हाथ से न छूने की शपथ की थी, उनकी बात कर्नल स्माइथ ने जेनरल हेविट के कान में डाली। उन्होंने हुक्म उदूली का कारण अनुसन्धान करने की आज्ञा दी। अनुसन्धान से विदित हुआ कि सिपाहियों के मन में सरकार की ओर से शङ्का उत्पन्न हो गयी है—वे समझने लगे हैं, कि ये अँगरेज हमारा धर्म नष्ट करना चाहते हैं, इसी लिये टोटे में अपवित्र वस्तु मिलायी गयी है—इसी कारण उन्होंने अपने अफसर का हुक्म नहीं माना। यही बात प्रधान सेनापति को लिख दी गयी और सब अँगरेज बड़ी उत्सुकता के साथ उनके यहाँ से हुक्म आने की राह देखने लगे। उन लोगों का विश्वास था, कि वहाँ से इन सब सिपाहियों को एकदम बर्खास्त कर देने की ही आज्ञा जारी होगी; परन्तु २ री मई तक कोई समाचार न आया। अन्त में ६ ठी मई को ऐडजुटेण्ट जेनरल ने गवर्नमेण्ट के सेक्रेटरी के पास लिख भेजा, प्रधान सेनापति आनसन साहब ने मेरठ के उन ८५ घुड़सवारों का विचार फौजी अदालत के सामने करने का हुक्म दिया है। ६ ठी मई को ही फौजी अदालत बन गयी। १५ विचारक बनाये गये, जिनमें नौ हिन्दू और ६ मुसल्मान अफसर थे। सबके ऊपर एक अँगरेज जज थे। विचार ६ ठी मई से ९ वीं मई तक चलता रहा। विचारानुसार सबको दस-दस बरस की कड़ी कैद की सजा हुई।

इसके बाद जिस ३४ वीं पलटन के मङ्गलपांड़े को फाँसी का हुक्म हुआ था, उसको भी निरस्त्र करने का विचार हुआ; क्योंकि इसके बहुतसे सिपाहियों ने मंगल पांड़े को गोली छोड़ते देख कर भी कुछ नहीं किया था। इसी समय २२ एप्रिल को इस पल्टन के जमादार ईश्वर पांड़े को भी फांसी हुई। इसके बाद सेनापति हियरसे के प्रस्ताव और भारत के प्रधानसेनापति जेनरल आनसन के अनुमोदन पर बड़े लाट ने ३४ वीं पल्टन को भी निरस्त्र करने का हुक्म दे दिया। यह आज्ञा ४ थी मई को जारी हुई। तदनुसार यह पल्टन तोड़ दी गयी और इसके सिपाही घर भेज दिये गये। पहले जो १९ वीं पल्टनके सिपाही बे हथियार करके घर भेजे गये थे, उन्हीं के साथ-साथ ये भी घर पहुंचे और दोनों पल्टनों के सिपाही सूबे अवध में अँगरेजों के प्रति विद्वेष का बीज बोने लगे। बङ्गाल के सिपाहियों में प्रायः सब अवध-प्रान्त के ही रहने वाले थे, अतएव इस दण्ड के बदले इन सिपाहियों ने सारे अवध-प्रान्त में अँगरेजों को बदनाम करने का बीड़ा सा उठा लिया और लोगों के दिलों में फिरङ्गियों के प्रति घोर घृणा उत्पन्न कर दी। इधर जो असन्तोष समस्त भारतवर्ष के सिपाहियों में धीरे-धीरे फैल रहा था, वह पश्चिमोत्तर प्रान्त की ४८ वीं और ७ वीं पल्टनों में भी घर करने लगा। अन्तमो सर हेनरी लारेन्स ने ७ वीं पल्टनके सिपाहियों को दिन-दिन अधिक अवाध्यता प्रकट करते देख, निरस्त्र करने का विचार किया।

३ री मई को रात को उन्होंने सब सिपाहियों को कवायद के

है, अब उसी चतुराई से छिपे-छिपे हमारा धर्मनाश कर रहे हैं। इस पर मैंने उससे कहा, कि यहां के सिपाहियों की हम लोगोंको जरा भी परवा नहीं; हमने विलायत में रूस से लड़ने के लिये पहले से चौगुनी पल्टन इकट्ठी कर ली है। जब जरूरत होगी, विलायतसे पल्टन मँगवा ले सकते हैं; यह सुनकर उस सिपाही ने कहा, कि यह बात हमलोगों को मालूम है, कि आपलोगों के पास धन-जन की कोई कमी नहीं है; पर वहां से यहां सैनिकों को लाना, बड़ा व्ययसाध्य कार्य है; इसीलिये हम लोग हिन्दुओं की पल्टन खड़ी कर पृथ्वी-विजय कर सकते हैं। इस पर मैंने उत्तर दिया, कि यद्यपि सिपाही लोग स्थल-युद्ध में बड़े होशियार हैं; पर उनका भोजन ऐसा बुरा है, कि वे जल-युद्धमें काम नहीं आ सकते। इस पर झटपट उस जमादारने कहा, कि इसीलिये तो आप लोग हमें अपने मनके मुताबिक खाना खिला कर मज़बूत बनाना चाहते हैं! इस बातका मतलब क्या है, यह पूछने पर उस जमादार ने कहा, कि मैंने वही बात कही है, जो इस समय सब लोग कह रहे हैं; मैंने कहा, कि यह सब बातें एकदम गलत हैं। उसने कहा, कि यहां के लोग भेड़ हैं— एक जिस ओर जायगा, सब उसी ओर जायँगे! मैंने उसे तरह तरह की बातें समझा कर उसके हृदय से उन सब बातों को दूर करना चाहा, जो न जाने कैसे दिलमें बैठ गयी थीं। पर इन लोगों के साथ बहुत दिनों से काम करता आया हूं और कभी इनके [illegible] पर अविश्वास न कर सके; परन्तु आज तो इनकी [illegible] [illegible] विश्वासघात की-सी मालूम पड़ीं।

इसी दिन सर हेनरी लारेन्स ने उत्तर-पश्चिम प्रदेश के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर कालविन साहब को उत्तर-भारत के दुर्गों पर दृष्टि रखने के लिये लिखा। सर हेनरी लारेन्स बड़े दूरदर्शी थे। वे आनेवाली विपद् को पहले ही से ताड़ गये थे और इसीलिये बड़े लाट को बराबर असली हाल लिखते जाते थे ; परन्तु बहुत दिनों तक उनके लिखे की ओर किसी ने कुछ ध्यान ही नहीं दिया। जब उनके पत्रों के उत्तर में ७ वीं पलटन के बारे में कोई फैसला लिख कर नहीं आया, तब उन्होंने आप ही बीमारी की दवा करनी विचारी। उन्होंने सारी पलटन को सजा न देकर कुछ षड्यन्त्रकारियों को दण्ड दिया और जिन लोगों ने नेकनीयती और ईमानदारी दिखलायी, उन्हें खिलअत और इनाम भी दिया।

३४ वीं पलटन के सिपाहियों को जो दण्ड दिया गया था, उसकी बात सब सैनिकों को सुना देने का हुक्म सर हेनरी लारेन्स के पास लिख कर आया ; परन्तु उन्होंने सोचा, कि इस से सिपाहियों में और भी असन्तोष बढ़ेगा। उनकी इस दूरदर्शिता ने अयोध्या के सिपाहियों में बंगाल के सिपाहियों वाला असन्तोष नहीं आने दिया ; परन्तु भीतर-ही-भीतर जो आग सुलग रही थी, वह धीरे-धीरे धधक उठने की सूचना देती ही जाती थी।

किस प्रकार मेरठ की ३ री पलटन के घुड़सवारों को कठोर दण्ड दिया गया और वे हथकड़ी-बेड़ी पहना कर जेलखाने में दिये गये, यह हम पहले ही लिख चुके हैं। उस समय

कहीं कोई उत्तेजना नहीं दिखलाई दी; परन्तु पीछे उन लोगों की दुर्दशा ने बड़ी भारी दुर्घटना उपस्थित कर दी। जिस दिन पलासी के मैदान में शत्रुओं की साजिश से अभागे नवाब सिराजुद्दौला का पतन हुआ, जिस दिन लार्ड क्लाइव की चतुराई से बंगाल बृटिश कम्पनी के पैरों के नीचे आ रहा, उसके बाद सौ वर्ष तक ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी और कभी अँगरेजी सल्तनत की नींव ऐसी नहीं हिली थी, अँगरेजों को और कभी ऐसी विपद् का सामना नहीं करना पड़ा था।

मेरठ की ३ री घुड़सवार पलटन के दण्ड प्राप्त करने पर वहां की पलटनों में विक्षेप और प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी।

इधर इतनी बड़ी विपद् सिरपर आयी देखकर भी लार्ड केनिंग बिना घबराये हुए शान्ति-स्थापन की चेष्टा करने लगे। उन्होंने एक ओर तो अधिक संख्या में युरोपियन सैनिक जमा करके, दूसरी ओर घोषणापत्र प्रकाशित कर, तथा अन्य उपायों से सिपाहियों के मन से असन्तोष का अङ्कुर उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। परन्तु उनके किसी प्रयत्न का सुफल न हुआ। असन्तोष की जड़ बहुत गहरे पहुँच गयी थी। साथ ही कलकत्ते में जो अँगरेज राजकर्मचारी थे, वे लार्ड केनिङ्ग की सहायता करने को तैयार नज़र नहीं आते थे, उलटे वे लोग देश-विदेश में तरह-तरह की अफवाहें फैलाकर—परिस्थिति को और भी विकट करते जाते थे। हाँ, बम्बई और मद्रास के गवर्नर उनकी सहायता करने के लिये हर तरह से तैयार थे

और उन लोगों ने काफ़ी सेना उनकी मदद के लिये कलकत्ते भेजी। जिन विचक्षण और सुचतुर राजपुरुषों के ऊपर इन दिनों पञ्जाब और अयोध्या के शासन का भार था, वे भी अपनी कार्य-तत्परता दिखलाने से बाज़ न आये। पञ्जाब के सर जान-लारेन्स और अवध के सर हेनरी लारेन्स ने इस समय अपना कर्त्तव्य-पालन बड़े ही ठिकाने के साथ किया। ये दोनों भाई बड़े ही होशियार, दूरन्देश और अँगरेजी सरकार के दो मज़बूत खम्भे थे। लार्ड केनिङ्ग ने इन्हीं लोगों की सहायता से भारत-राज्य की रक्षा करने का संकल्प किया।

हाँ, तो हम पहले कह चुके हैं, कि तारीख़ ९ वीं मई को ८५ सैनिक दस बरस के लिये क़ैदख़ाने में ठूंस दिये गये थे, जिस से उनके संगी-साथी बेतरह उत्तेजित हो गये थे, उस दिन शनिवार था। रात भर सिपाहियों में सलाहें होती रहीं। सवेरे ही से उत्तेजना और प्रतिहिंसा के चिह्न दिखाई देने लगे। रविवार को प्रातःकाल में किसी साहब का कोई हिन्दुस्तानी नौकर कामपर नहीं आया। उस समय उन लोगों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और यही सोचकर चुप हो रहे, कि कोई ऐसा सार्वजनिक कारण उपस्थित हो गया होगा, जिससे वे लोग न आ सके होंगे, दिन इसी तरह बीत गया। शाम हुई। साहब लोग फिर गिर्जाघर में प्रार्थना करने चले। इसी समय कुछ लोगों ने ख़बर दी, कि हिन्दुस्तानी सिपाही लड़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं।

शाम को पाँच बजते-न-बजते ३ री पलटन के शेष सिपाही,

हथियारों से लैस हो, मेरठ की जेल की ओर चल पड़े। उस समय उनका ध्यान अपने उन ८५ साथियों को छुड़ाने की ही ओर था, जो उनके सामने ही अपमानित और निरस्त्र किये गये थे। वे निर्भयचित्तसे जेलके अन्दर घुस पड़े और अपने सब साथियोंको छुड़ा लाये। उन्होंने जेलर, वार्डर या अन्य किसी मनुष्यको चोट नहीं पहुंचायी।

३ री घुड़सवार पल्टन के रंग बदलते ही पैदल सिपाहियों ने भी पैंतरे बदलने शुरू किये। ११ वीं और २० वीं पल्टनके धर्मनाशकी आशङ्कासे क्रुद्ध हुए बैठे ही थे, कि घुड़सवारों के बिगड़ उठने की खबर पाकर ये भी उठ खड़े हुए। सन्ध्या के समय ११ वीं पल्टनके अध्यक्ष कर्नल फिनिस घोड़ेपर सवार हो, सिपाहियों का हालचाल लेने आये। उन्होंने सोचा, कि जैसी अफवाह उड़ रही है, उससे भय है, कि कहीं हमारी पल्टन भी बिगड़ खड़ी न हो, इसलिये चलकर सिपाहियोंको समझाना बुझाना चाहिये। परन्तु उन्होंने इस पल्टनके पड़ावमें आकर ज्योंही लेक्चर झाड़ना शुरू किया, त्योंही एक सिपाही ने उन पर गोली छोड़ दी; पर वह उन्हें न लगकर उनके घोड़े को लगी। इतनेमें ही एक दूसरी गोली उनकी पीठमें आकर लगी। दमभर में उनके प्राण शरीर से बाहर हो गये। इस तरह २० वीं पल्टन के सिपाहियोंने कर्नल फिनिस की जान ले ली। सिपाही-विद्रोह-यज्ञ का मानों पहला बलिदान हुआ। इसको देखादेखी ११ वीं पल्टन भी बिगड़ खड़ी हुई और हिन्दू-मुसलमान सभी समान एकाग्रताके साथ, जाति-रक्षा और धर्म-

नाश का बदला लेनेके लिये हथियार लेकर उठ खड़े हुए। क्रोध इस दर्जेतक पहुंच गया, कि उन्हें भले-बुरेका एकबारगी ज्ञान न रहा। उन लोगोंने अँगरेज-स्त्रियों और अँगरेज-बालक-बालिकाओंपर भी हथियार चलाना शुरू किया। जेलखानेके क़ैदी सब छुड़ा लिये गये और ये लोग भी सिपाहियोंके साथ मिलकर उपद्रव करने लगे। सिपाहियोंके इस उत्पातसे सारा मेरठ भयानक काण्डोंका लीलाक्षेत्र बन गया। ऐसे द्वेष, प्रति-हिंसा और विजातीय घृणाके ज़मानेमें भी कितने ही हिन्दुस्तानियोंने अँगरेजों के साथ धोखाधड़ी नहीं की; बल्कि उनकी खूब सहायता की। ख़ज़ानेके पहरेदारोंने इस वीरता और साहसके साथ ख़ज़ाने की रक्षा की, कि विद्रोही उससे एक रुपया भी न निकाल सके। अन्तमें उन लोगोंने अपनी जवाब-दारी छुड़ानेके लिये ख़ज़ानेकी रक्षाका भार युरोपियन सिपाहियोंके हाथमें सौंप दिया।

इस समय मेरठ में दो गोरी पल्टनें और एक तोपख़ाना था, जिसके सब सिपाही गोरे ही थे। दुर्भाग्यवश सिपाहियों के बिगड़ खड़े होने की ख़बर पाते ही ये लोग भी उनका सामना करने के लिये तैयार नहीं हो गये। पचास वर्ष पहले जेनरल गिलिसीने केवल एक गोरी पल्टन की मदद से वेलोर के सिपाहियों का विद्रोह दमन किया था। पर आज बहुत से गोरे सिपाहियों के होते हुए भी ये लोग कुछ न कर सके। उन लोगों ने सब के सामने ८५ आदमियों को दण्ड तो दे दिया; पर यह न सोचा, कि इसका कैसा बुरा नतीजा होगा? इसी

होने लगी, त्यों ही वे न जाने अँधेरे में कहां छिप गये। इसर्
सैनिक और सेनापति दोनों ही लज्जित हुए। इसी समय कर्न
विलसन ने कहा, कि हो सकता है, कि वे सब हमारी छावनी क
ओर गये हों। यह सुनते ही अपना दल-बल लेकर उसी ओ
चल पड़े। कुछ दूर ही से उन्होंने देखा, कि उनके मकान त
धायँ-धायँ जल रहे हैं। आग की भयङ्कर लपटें आसमान क
छू रही हैं। यह अवस्था देखते ही वे लोग दौड़े हुए वहाँ पहुँचे
पर वहाँ भी कोई सिपाही नहीं दिखाई दिया। लाचार,
लोग मन मार और हाथ मलकर रातभर मैदानमें पड़े रह गये

इधर आग का ज़ोर रातभर कम न हुआ। पहले तो सिपा
हियों के घर जले; पीछे अफ़सरों के घर जलने लगे। कितन
ही औरतें, बच्चे और जानवर बड़ी मुश्किलों से उस अग्निकाण
से बचाये जा सके; इस कार्यमें अँगरेज़ों की पूरी-पूरी मद
उनके हिन्दुस्तानी नौकर-चाकरों ने की थी। कमिश्नर ग्रिये
साहब और उनकी स्त्री को उनके काले नौकरों ने ही बचाया था
इस समय सरदार बहादुर सैय्यद मीरखाँ नामक एक अफ़ग़ा
सिपाही मेरठ में ही था। काबुल की लड़ाई में जितने अँगरे
क़ैद हुए थे, उनकी इसने खूब मदद की थी। इसीलिये गवर
मेण्ट ने उसकी ६००) की मासिकवृत्ति निश्चित कर दी थी
मेरठ में गोलमाल मचते ही इसने और ३री पल्टन के एक दे
अफ़सर ने कमिश्नर को कहा, कि आप अपनी जान बचाने के लि
तैयार हो जाइये। सुनते ही कमिश्नर साहब अपनी स्त्री और
अन्य शरणागत स्त्रियों के साथ घर के ऊपर वाले खण्ड में

वहाँ से चल कर ये लोग एक बागीचे में जाकर छिप रहे। सारी रात उन्होंने काटी—दूसरे दिन सबेरे ही एक गाड़ी ला कर गुलाबसिंहने उन लोगोंको मेरठ के समर-शिक्षागारमें पहुंचा दिया। मेरठ में कोई किला न होने के कारण और भी बहुत से अँगरेजों ने यहीं शरण ली थी।

मि० ग्रिथेड को भाग्य से जैसे रक्षक मिल गये, वैसे रक्षक मेरठ के सभी अँगरेजों को नहीं नसीब हुए। उधर अँगरेज सैनिक गण उत्तेजित सिपाहियों की गति रोकने के लिये समर क्षेत्र में गये हुए थे, इधर उनकी स्त्रियां और बालबच्चे असहाय अवस्था में पड़े हुए थे। उन्मत्त सिपाहियों ने इन स्त्रियों और बच्चों को बुरी तरह मार डाला। घोर शत्रुता के कारण इन लोगों की बुद्धि ऐसी फिर गयी थी, कि ये अपराधी और निरपराध का विचार किये बिना ही अँगरेज स्त्री-पुरुषों और बच्चोंको मार डालते थे। बदले की आग ने उनके हृदय के सारे करुणा-रस को सुखा कर उसे ठोस पत्थर का बना दिया था। इसीसे वे अबला स्त्रियों और कोमल-सुकुमार बच्चों की कातरता भरी रूलाई सुनकर भी न पसीजते थे। अनबोलते बच्चों को मारते हुए भी उनके हृदय को ठेस नहीं लगती थी। उन्होंने एक क्षण के लिये भी यह नहीं सोचा, कि इस तरह औरत-बच्चों के खून से हथियार तर कर वे अपनी व अपनी वीरता पर धब्बा लगा रहे हैं।

कप्तान क्रेगी बड़े ही होशियार आदमी थे। उन्होंने मीठी-मीठी बातों से अपने दल के सैनिकों को ऐसा लुभा रखा था

ा इस गंभीर उत्तेजना के समयमें भी वे लोग इनका या अन्य
गरेजों का कुछ अनिष्ट करने को तैयार नहीं हुए। कप्तान
गी की पत्नी ने घर में बैठे-बैठे सिर पर आयी हुई विपद से
पने को अपने बुद्धि-बल से बचा लिया। वह जिस घर में थी
सके पास ही एक घर में दूसरी मेम भी थी। जब चारों ओर
रे-मकानों में आग लगने लगी, तब वह अपनी पड़ोसिन की
क्षा करने के लिये अग्रसर हुई। उसने अपने नौकरों को उसे
क निरापद् स्थान में पहुंचा देने का हुक्म दिया ; पर नौकरों
ो आने में देर हो गयी। उन्होंने आकर देखा, कि वे जिसे
चाने आये हैं, उसकी तो लहू से तर लाश जमीन में लोट रही
। तब वे सब घबराये हुए अपनी मालकिनके पास लौट चले।
हाँ आकर उन नौकरोंने आततायियोंसे कहा, कि क्रेगी
ाहब सबके हितैषी और सबके प्यारे हैं, इसलिये आप लोग
नका घर न जलायें। यह सुन उन लोगोंने उस घरमें आग
नहीं लगायी।

इतनेमें कप्तान क्रेगीके भेजे हुए चार घुड़सवार वहाँ आ
पहुंचे, जिन्हें उन्होंने अपने मकान और स्त्रीकी रखवाली करनेके
लिये भेजा था। उन लोगोंने यहाँ आकर मिसेज क्रेगीको
ढाँढ़स बँधाया और उनसे कहा, कि हमारे शरीरमें प्राण रहते
आपका कुछ भी अनिष्ट न होने पावेगा ; यह सुन, क्रेगीकी
पत्नीको बड़ा धैर्य हुआ।

परन्तु रह-रहकर उसे अपने स्वामीके लिये चिन्ता होने
लगती थी। विद्रोही-सिपाहियोंके अनन्त रक्त पिपासा और

कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। धुएँ और आगकी लपटोंके सिवा और कुछ दिखलाई नहीं देता था। इसीलिये उसे अपने स्वामी के लिये बड़ी शोच हो रही थी। इधर कप्तान क्रेगी अपने कर्त्तव्य पालन में ही लगे हुए थे —उन्हें घर आनेका मौका ही हाथ न लगा। जब वे अपने कर्त्तव्यपालनमें सफल हो चुके, तब घर लौटे। रास्तेमें जाते-जाते उनके मनमें यही शङ्का उत्पन्न हो रही थी, कि कहीं उनका घर जल न गया हो और प्रियतमा पत्नीको शत्रुओंने मार न डाला हो। परन्तु घर आकर उन्होंने देखा कि घर और घरनी, दोनों ही सुरक्षित हैं। तब वे अपनी स्त्री और अन्य स्त्रियोंके साथ किसी दूसरे निरापद स्थानमें जानेको तैयार हुए। कहीं आगकी लपटोंके उजियालेमें इन स्त्रियोंकी सफ़ेद पोशाकें देख, बलवाई इधर ही न आ टूटें, इसी भय से उन्होंने सबको काली पोशाक पहनाकर घोड़ोंपर सवार कराया और सबको लिये हुए एक टूटेसे मकानमें जा छिपे। वहीं वे रातभर छिपे रहे। उस समय भी चारों ओर शत्रुओं की हुंकार सुनाई पड़ रही थी। इधर क्रेगी के नौकरों ने रातभर उनके मकानकी रक्षा की। क्रमशः रात बीती, सबेरा हुआ। कप्तान क्रेगी अपने घरसे ज़रूरी चीजें लाने चले। वहाँ आनेपर उन्होंने देखा, कि हमारी सभी चीजें हमारे विश्वासी नौकरोंने जमीनमें गाड़ रखी हैं। इस प्रकार जब अँगरेजोंके प्रति प्रायः समस्त भारतवासियोंके मनमें घोर विद्वेष भरा हुआ था, हर एक अँगरेज अपनी जानोंको ही रो रहे थे, उस समय भी उनके विश्वस्त अनुचरोंने प्रभु-भक्तिकी पराकाष्ठा दिखलायी

थी। अस्तु; वे अपनी आवश्यक वस्तुएं लेकर उन सिपाहियों
के साथ, जिन्होंने उनके प्रति अपना अटल सम्मान और भक्ति
प्रकट की थी, युरोपियन तोपखानेकी ओर चले। यह देख,
उन सिपाहियोंने कहा,—"हमसे जहाँ तक नेकनीयतीके साथ
आपकी भलाई करते बनी, वहाँतक हमने कर दी ; अब हम
युरोपियन सैनिकावास में जानेको तैयार नहीं—आप स्वयं चले
जाइये।"

सैनिकों के अस्वीकार करने का कारण यह था, कि वे
जानते थे, कि युरोपियन सैनिकों के सामने जाते ही हमारी इस
भलाई का बदला इस बुरी तरह से दिया जायेगा, कि छठीका
दूध याद आ जायेगा। उन्हें यह मालूम था, कि अँगरेज़ सिपाही
क्रोध में आनेपर शत्रु मित्र या उपकारी अनुपकारी का विचार
नहीं करते, धर्माधर्म का ख़याल न कर अपने दिल का बुख़ार
निकालने लगते हैं। यह कारण सुनकर कप्तान क्रेगी ने उन्हें
बहुत समझाना-बुझाना शुरू किया ; परन्तु किसी बात का
उनके दिल पर असर न हुआ ; क्योंकि अँगरेज़ों की शासन-
नीति पर यहां के लोगों की श्रद्धा एकबारगी उठ गयी थी और
सच पूछिये, तो यही इस विद्रोह का असली कारण भी था।
अँगरेज़ों ने यहाँ जिस ढङ्ग की कार्रवाइयाँ करनी शुरू की थीं,
उनसे सर्व साधारण के मनमें घोर सन्देह और आशङ्का जड़-
पकड़ गयी थी। बृटिश गवर्नमेण्ट यदि धीरता को खोना
हड़बड़ न कर जाती, उदारता के साथ शासन करती, लोगों के
चिरकालिक स्वत्व, विश्वास और अनुभूति को ऐसे [illegible]

न डालती ; तो सदा से प्रभु-भक्त बने रहनेवाले सिपाही, कभी उसके विरुद्ध न होते। गवर्नमेण्ट की कूट-नीति ने ही उसको सिपाहियों की नज़रों से गिरा दिया।

उसी रात को मेरठ के बाजारों और आसपास के गांवों के बहुत से जोशीले लोग बलवाई सिपाहियों के दल में आ मिले। अँगरेजों की रीति-नीति और शासनप्रणाली को देखकर के भी उनसे जले हुए थे, इसलिये मौका पाकर ये लोग बहती गंगा में हाथ धोने के लिये उतर पड़े। इन लोगों ने बातकी-बात में सारे मेरठ में वह नर-हत्या, गृह-दाह और लूट-खसोट जारी की, कि सब अँगरेज त्राहि-त्राहि कर उठे! जिसका जिधर सींग समाया वह उधर ही भागकर जा छिपा। रातभर उनके घर जलते रहे, सम्बन्धीगण मरते रहे, पर जो प्राण के भय से कहीं शरण लिये हुए थे, वे उस स्थान से बाहर नहीं निकले।

क्रमशः सवेरा हुआ ; रातभर के छिपे हुए लोगों ने अब के सिर निकाला और अपने अपने घर की ओर चले। घर आकर उन्होंने देखा कि उनके घर जल गये हैं, नाते रिश्तेदारों की लाशों के ढेर लगे हुए हैं और कुछ टूटी-फूटी चीजों के लिवा उनकी कोई चीज़ सही-सलामत नहीं है। फिर तो वे उसी मरे हुए सम्बन्धियों की लाशें देख-देखकर आंसू गिराने और हाड़ तोड़ मिहनत करके पैदा की हुई चीजों को नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में देख लम्बी साँस लेने लगे। यह हालत देखकर उनके मन में घोर प्रतिहिंसा जगी; पर इस समय क्रोध या प्रतिहिंसा का फल ही क्या था।

इसी समय एक अँगरेज़, जिनका नाम लेफ्टिनेण्ट मेलर था, अपने एक मित्र को ख़्वाहमख़्वाह बलवाइयों के हाथों मारे जाते देख, बड़े ही क्रोधित हो उठे। किसी ने उनसे आकर कहा, कि यह काम बाज़ार के एक क़साईने किया है। बस, वे झटपट उस क़साई को पकड़ कर छावनी में रख आये। बात की बात में उस पर मामला चला और झटपट उसका फ़ैसला भी हो गया। और कुछ ही मिनटों के अन्दर उस क़साई की निर्जीव देह पास ही के एक आम के पेड़ पर झूलती दिखाई देने लगी।

उस समय मेरठ के अँगरेज़ों के मनमें जैसी प्रतिहिंसा जाग उठी थी, उसे देखकर तो यही मालूम पड़ता था, कि ऐसे-ऐसे बहुत से काण्ड हो जायँगे और कितने ही मुफ्त जानें गवायेंगे। क्योंकि जिस समय सिपाहियों ने उनके घर में आग लगायी या उनके औरत-बच्चों को मारा, उस समय तो वे न जाने कहाँ छिपे हुए थे; पर सवेरा होते ही घर आकर अपने ऊपर किये हुए अत्याचार का बदला

चौथा अध्याय ।
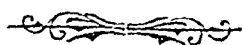
दिल्लीपर धावा ।
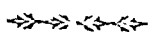
मेरठ के बाद युद्धके लिये उन्मत्त बने हुए सिपाहियों ने दिल्ली पर हमला किया। यों तो दिल्ली की तबाही के दिन आज से ५० वर्ष पहले ही आ गये थे और दिल्ली के नाम-मात्र के बादशाह कम्पनी के इशारे पर ही नाचते रहते थे, तथापि उनके वंश का प्राचीन गौरव अब तक लुप्त नहीं हुआ था। अब तक लोगों के हृदय से अकबर, शाहजहाँ और औरङ्गजेब की कहानियां दूर नहीं हो गयी थीं। इसी लिये वहां के बादशाह को अङ्गरेजों के हाथ की कठपुतली बना हुआ देखकर सर्वसाधारण के मनमें उनके प्रति बड़ी सहानुभूति हो रही थी।

दिल्ली की घटनाओं का वर्णन करने से पहले हम वहाँ का कुछ इतिहास लिख देना बहुत जरूरी समझते हैं। उन्नीसवीं सदी के शुरू में ही लार्ड लेक और लार्ड वेलेसली ने दिल्ली के सम्राट् शाह आलमको मराठों के हाथ से छुड़ाया। उस समय बादशाहकी अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। वे बूढ़े, अन्धे और दीन-भावापन्न हो रहे थे। बूढ़े बादशाह मराठों के हाथ से छूटकर अँगरेजों के चङ्गुल में फँसे। मराठों की सारी आशा पर पानी फिर गया, फ़राँसीसियों ने सदा के लिये भारत में फ़राँसीसी राज्य स्थापित करने की आशा छोड़ दी और अँग-

ज़ों की चारों ओर धाक बैठ गयी। अँगरेज़ों ने ज़ाहिरा तौर से शाह आलम के साथ कोई बुरा बर्त्ताव नहीं किया। भारत के सभी गवर्नर-जेनरल शाह आलम का सम्मान करते थे; किन्तु इस सम्मान के भीतर-ही-भीतर अँगरेज बनियों की कम्पनी अपना मतलब गाँठने की धुन में ही सदा लगी रहती थी। शाह आलम को छुड़ाकर इन्होंने अपना राज्य विस्तार किया और मराठे उनको जो कुछ देना चाहते थे, उस से एक कौड़ी भी अधिक इन लोगों ने अधिक नहीं दी! प्रबल पराक्रमी महान् अकबर की सन्तान शाह आलम को सालाना दस लाख रुपये की वृत्ति लेकर ही सन्तोष करना पड़ा!

मुग़ल बादशाहों में बहुतेरे अच्छे भावुक और कवि हो गये हैं। बूढ़े और अन्धे शाह आलम को भी कुछ कुछ कविता का शौक था। राज्य-सम्पद् को खोकर उन्होंने साहित्य-सम्पद् से ही मन लगाना आरम्भ किया। देखिये, अपनी हालत बयान करते हुए आपने जो कुछ लिखा है, वह कैसा मर्मस्पर्शी है। आप की कविता का भाव यह है:--

शाह की उपाधि अबतक नहीं छिनी थी और लोग उनपर श्र
दिखाने से भी बाज़ नहीं आते थे। इसीसे लार्ड वेलेसल
सोचा, कि कहीं यह बूढ़ा बादशाह अपने बाप-दादोंका बड़
याद कर फिर भी कोई वृहत्-साम्राज्य स्थापित करने की
न करने लगे; फिर तो अँगरेजों को बड़ी मुसीबत का सा
करना पड़ेगा। यही सब सोच-विचार कर उन्होंने उन्हें
से हटाकर मुँगेर भेज देना चाहा; पर पीछे यही सोचकर
विचार त्याग दिया, कि पीछे इसके उत्तराधिकारियों को यह
हटा दिया जायेगा, इस अन्धे को अधिक कष्ट देना ठीक नहीं

सन् १८०६ ई० में शाह आलम की मृत्यु हो गयी। उ
पुत्र अकबरशाह उनकी गद्दीपर बैठे। उनकी प्रतिभा भी वि
तरह कम न रही और बग़ैर उनके दस्तखत के किसी तरह
कार्रवाई कम्पनी नहीं कर सकती थी। सन् १८२७ ई०
यही हाल रहा। उस समय तक यह अवस्था थी, कि
के अँगरेज़ रेजिडेण्ट को जूता पहने हुए बादशाह के सामने
की हिम्मत नहीं होती थी। वे दूर ही जूते खोल, नंगे प
चुपचाप उनके सामने आकर खड़े रहते थे। दीनता
सीमा पार कर जाने पर भी मुग़ल-बादशाह का यह रौब स
छाया रहता था। अँगरेजी कम्पनी उनका सब कुछ छी
भी उनके वंशगौरव और राजकीय सम्मान को अबतक
छीन सकी थी। इस समय तक मुग़ल-सम्राट् के ही नाम
सिक्का चलता था।

इसी तरह समय बीतने लगा—अँगरेजी कम्पनी की

-दिन जमती चली गयी। मराठों और फराँसीसियों को कर अँगरेज "परम स्वतन्त्र न सिरपर कोऊ" हो । जो एक दिन बनिये-सौदागर होकर यहाँ आये थे, वे क्रमशः भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अपना प्रभुत्व-स्थापन करने

अब जब कि उनके घरके शत्रु हार गये, तब उन्होंने यहाँ हथकण्डे दिखाने शुरू किये। सबसे पहले उनकी निगाह र ही पड़ी। मुगल बादशाह अबतक "बादशाह" कह- हैं, लोगों को ख़िलअत देते हैं, नजराने लेते हैं; फर्मान जारी हैं और अपने नामका सिक्का चलाते हैं; यह सब अँगरेजों आँखों में बेतरह खटकने लगा। परन्तु सर्वसाधारणकी वृत्ति देखकर उनको कुछ करने का साहस नहीं हुआ।

सन् १८३७ ई० की २८ वीं सितम्बर को ८२ वर्ष की अवस्था अकबरशाह की मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र अब्दुल मुज़फ़्फ़र- उद्दीन मुहम्मदबहादुरशाह गाज़ी उनकी गद्दीपर बैठे। हासों में प्रायः हर जगह इनका नाम 'बहादुरशाह' ही आ हुआ है। ये बड़े ही धीर, शान्त, विद्या-व्यसनी और बड़े अच्छे कवि थे। कविता में ये अपना उपनाम 'ज़फ़र' रखते थे। इनकी कविताएँ बड़ी ही सर्वजन-प्रिय हैं और की काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय देती हैं। अस्तु; गद्दी बैठते ही कम्पनी से प्रार्थना की, कि अभी जो वृत्ति हमें दी ती है, उससे हमारा खर्च नहीं चलता, इसलिये यह रकम ाई जानी चाहिये। इनके पिता अकबरशाहने भी एक र इसी तरह की प्रार्थना कम्पनीके डाइरेक्टरों से की थी; पर

उन्होंने यही फैसला किया, कि यदि आप अपना रहासा सम्मान और अधिकार भी कम्पनी को दे दें, तो आपको ३ ला रुपया सालाना और भी दिया जा सकता है। पर ३ ला रुपये सालाना वृत्ति के लिये उन्होंने अपना बचा-बचाया मान संभ्रम मिट्टी में नहीं मिलाना चाहा और डाइरेक्टरों को लिखा कि हमारे-आपके बीच जो सन्धि हुई है, उसके अनुसार हमारे परिवार के पालन-पोषण के उपयुक्त वृत्ति आपको अवश्य देनी होगी; किन्तु "कार्यकालेऽति निष्ठुराः" वणिकों ने उनका यह रोना-गाना नहीं सुना। अब के बहादुरशाह ने फिर य मामला कम्पनी के डाइरेक्टरों के सामने पेश किया। इ समय भारतवर्ष के गवर्नर जेनरल लार्ड आकलैण्ड थे। उन्हों प्रस्ताव किया कि यदि बादशाह पूर्व प्रस्ताव पर राजी हों, त उनकी वृत्ति बढ़ा दी जा सकती है। परन्तु उन्होंने अपने पिता की ही भाँति उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और अपन अभी-ष्टसिद्धिके लिये अपने एक ख़ास आदमी को विलायत भेजा ये ही थे बङ्गाल के परमप्रसिद्ध पुरुष राजा राममोहनराय बहादुरशाह ने ही इन्हें "राजा" का खिताब दिया था। राजा ने विलायत पहुँच कर डाइरेक्टरों के सामने बादशाह की उपस्थित करते हुए बड़ी अकाट्य युक्तियाँ पेश कीं; पर ने एक न सुनी। राजा साहब की चेष्टा व्यर्थ गयी।

यह खबर पाकर बहादुरशाह ने जार्ज टामसन नामक अँगरेज सुवक्ता को अपनी सब बातें समझा बुझाकर भेजा; सोचा, कि शायद गोरे चमड़ेसे काम निकल

परन्तु यह होने को नहीं था। जार्ज टामसन भी राजा साहब की भाँति ही विफल हुए। कम्पनी ने अपनी शर्त्त नहीं बदली। हाय! एक दिन जिनके पूर्व-पुरुषों के आगे इस कम्पनी के पूर्व कार्यकर्त्ता दीनभावसे उपस्थित हुए थे, उन्हींका सब कुछ हड़प कर जानेपर भी कम्पनी के दाँत उनके नाममात्र के अधिकार और सम्मान पर इस तरह गड़े हुए थे! इसे हम क्या कहें? अतिलोभ या अकृतज्ञता?

बहादुरशाहने वृद्धावस्थामें "ज़ीनत-महल" नामक एक परम सुन्दरी युवती से विवाह किया था, वह जैसी ही सुन्दरी थी, वैसी ही साहसी, तेजस्विनी और आत्माभिमानिनी भी थी। अँगरेज ऐतिहासिकों ने भी इसके इन गुणों की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ दिन बाद ज़ीनतमहल के एक पुत्र हुआ जो इतिहासमें 'जवान बख्त' के नामसे प्रसिद्ध है। क्रमशः इस पुत्रपर बादशाह की बड़ी ममता हो गयी। यहां तक कि इसके आगे और शाहज़ादों को भूल गये। उन्होंने मन सोच लिया, कि इसे ही अपना वारिस बनाऊँगा। बेगम

सन् १८४६ ई० में बड़े शाहज़ादे दाराबख्त की मृत्यु हो गयी। इस समय बहादुरशाह की उमर ७० बरस से भी अधिक हो गयी थी—उनका भी अन्तकाल निकट ही था। इसी लिये गवर्नर जेनरल साहब भी इसी सोच में थे, कि बादशाह के मरने पर किसे गद्दी दी जानी चाहिये। कहना फ़िज़ूल है, कि इस समय लार्ड डलहौसी ही गवर्नर जेनरल थे। वे दिल से यही चाहते थे, कि दिल्ली के बादशाह का सत्यानाश कर डालूं! शाहजादा फकीरूद्दीन नामक एक तीस बरस के राजकुमार के सिंहासन पाने की सम्भावना थी। ये अँगरेजों को बहुत मानते थे और अँगरेज भी इन्हें दिल से पसन्द करते थे। इसी लिये लार्ड डलहौसी ने इन्हीं को गद्दी दिलानी चाही। पर लार्ड डलहौसी के दाँत दिल्ली के दुर्गपर बेतरह गड़े हुए थे। वे किसी न किसी तरह उसे अँगरेजों के हाथ में आया हुआ देखना चाहते थे। इसके लिये तो वे बहादुरशाह की मृत्युतक भी इन्तजार करने को राजी नहीं थे। इसीलिये उन्होंने सोचा कि बादशाह को लोभ दिखला कर दिल्ली से हटा देना चाहिये। इस अभीष्ट की सिद्धि के लिये उन्होंने विलायत में डाइरेकृरों के पास लिख भेजा, कि दिल्ली से प्रायः ६ कोस दक्षिण की तरफ "कुतुब मीनार" नामक जो प्रसिद्ध स्तम्भ है, वहीं पहले के दिल्ली के राजा लोग रहा करते थे। यहींपर बहादुरशाह के पूर्वपुरुषों की और साथ ही एक मुसलमान फकीर की क़ब्रें हैं; इसीलिये इस स्थानको शाहीखराने के लोग बड़ा पवित्र समझते हैं। बहादुरशाह को अपने परिवार के साथ-साथ यहीं ला रखना चाहिये।

आप का यह प्रस्ताव विलायत से स्वीकृत हो कर आ गया, तो भी वे यहाँ का रङ्ग वेरङ्ग देखकर इसके अनुसार कार्य न कर सके और दूसरे किसी ढङ्ग की तलाश में लगे।

इन्हीं दिनों दिल्ली के तख्त के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। फकीरुद्दीन को गद्दी न मिलने पाये, इसके लिये जीनतमहल-वेगम ने बादशाह के कान बेतरह भरने शुरू किये। अन्त में बेगम ने बादशाह को यह युक्ति बतलायी, कि इस खानदान में किसी का खतना नहीं किया जाता और फकीरुद्दीन का हुआ है, इसलिये उसे गद्दी नहीं दी जा सकती। * बादशाह को भी यह बात जँच गयी और उन्होंने अपनी राय गवर्नर जेनरलको लिख भेजी।

गवर्नर-जेनरल ने तुरत तो कोई उत्तर नहीं दिया; पर अपनी मन्त्रि-सभाके सभासदोंसे इसके बारे में ख़ूब सलाह-मशवरा किया। अन्त में यही तै पाया, कि बादशाह के मर जानेपर फकीरुद्दीन को गद्दीपर बिठाया जाये; क्योंकि वह अँगरेजों का दोस्त है। और चूंकि उसका एक प्रतिद्वन्द्वी तैयार है, इसलिये उसे फुसलाकर दिल्ली के किले से हटाकर कुतुब के पास भेज दिया जा सकेगा। फिर तो उसे कुछ अधिक पेन्शन देनी पड़े, तो कुछ हर्ज नहीं। यही बात विलायत के अधिकारियों के पास लिख भेजी गयी, और उन्होंने भी इसे मंजूर कर लिया।

विलायत से मंजूरी आ जानेपर लार्ड डलहौसी ने दिल्ली के एजेण्ट सर टी० मेटकाफ़ साहब को लिखा, कि आप फकीरुद्दीन को एकान्त में बुलवा कर उससे गवर्नमेण्ट के इरादे के बारे में बातें कीजिये और उसे राजी करने की चेष्टा कीजिये। ऐसा ही हुआ। एक दिन फकीरुद्दीन चुपचाप अकेले में एजेण्ट से आ मिला। एजेण्ट ने उससे गवर्नमेण्टका इरादा बतलाया। वह झट राजी हो गया। उसने कहा, कि अगर मैं "बादशाह" कहा जाऊँ, तो मुझे सब कुछ स्वीकार है—मुझे दिल्ली के किले को छोड़कर कुतुब के पास जाकर रहना भी मँजूर है। यह सुन, एजेण्ट बड़े खुश हुए और उन्होंने एक इक़रारनामा तैयार करा; उसीपर फ़क़ीरुद्दीन से दस्तखत करवा लिये। फकीरुद्दीन ने दस्तख़त करके दे दिये। पर तुरत ही उसके मनमें अपने किये पर पछतावा होने लगा।

बादशाह को इस गुप्त इकरारनामे का पता लग गया।

सारा माजरा सुनकर वे बड़े ही दुखी हुए। तो भी उन्होंने ज़ीनत-महल के लड़के जवानबख्त को गद्दी दिलाने के लिये लिखा पढ़ी करनी बन्द नहीं की।

समय निकलता चला गया; कोई फैसला नहीं हुआ। बादशाह दिन-दिन बूढ़े होते चले जाते थे और हर घड़ी मौत की आमद का इन्तजार किया करते थे; पर उनकी मौत नहीं आयी; १८५६ ई० की १० वीं जुलाई को फकीरुद्दीन का ही अचानक एक दिन देहान्त हो गया! बहुतों को सन्देह होने लगा, कि कहीं उसे विष तो नहीं दे दिया गया; पर इसका कोई सुबूत नहीं पाया गया।

बादशाह को इस दुर्घटना से बड़ा ही दुःख हुआ; क्योंकि वह उनका बड़ा बेटा था। परन्तु ज्यों–ज्यों दिन बीतते गये, त्यों त्यों बादशाह का दुःख कम होता गया और वे ज़ीनत-महल के उकसाने से फिर जवानबख्त के लिये लिखा पढ़ी करने लगे। इसके साथ ही एक और प्रतिद्वन्द्वी उठ खड़ा हुआ। इस समय मिर्जा क़ुरैश ही बादशाह के बेटों में बड़े थे। उन्होंने अँगरेज रेजिडेण्ट के पास एक पत्र लिखा; जिसमें उन्होंने तख्त पर अपना पूरा हक़ दिखलाया था।

इस समय लार्ड डलहौसी की गवर्नरी का ज़माना नहीं, बल्कि लार्ड केनिङ्ग का था। वे अभी हाल ही इस पद पर प्रति-ष्ठित होकर आये थे। आते ही दिल्ली की विरासत का झगड़ा उनके सामने पेश हुआ। वे एक दम नये आदमी थे, इसलिये उन्हें अपने पूर्व अधिकारी और उनके मन्त्रियों की रायें देखनी

पड़ीं। सब पढ़कर उन्होंने लार्ड डलहौसी का ही मत मान लिया और दिल्ली के अँगरेज रेजिडेण्ट मेटकाफ़ साहब को इस प्रकार कार्य करने का हुक्म दिया गया :—

१—यदि बादशाह के पत्र का उत्तर देना ज़रूरी हो, तो उनसे कह देना, कि गवर्नर-जेनरल की सम्मति में जवानबख्त को तख़्त न मिलना चाहिये।

२—फ़क़ीरुद्दीन के साथ जो शर्तें तै हुई थीं, उन शर्त्तों पर मुहम्मदकुरैश को बादशाहत नहीं मिल सकती। जब तक बहादुरशाह जीते हैं, तब तक विरासत के बारे में उनके या और किसी के कुछ लिखने-पढ़ने की ज़रूरत नहीं है।

३—सम्राट् की मृत्यु होने पर गवर्नमेण्ट मिर्ज़ामुहम्मद कुरैश को शाही ख़ानदान का प्रधान व्यक्ति मानेगी। इस सम्बन्ध में फ़क़ीरुद्दीन के साथ की हुई सब शर्तें ज्यों-की-त्यों रहेंगी ; सिर्फ़ मुहम्मद कुरैश को बादशाह का ख़िताब न दिया जायेगा। वे "शाहज़ादा" कहला सकेंगे। पर सरकार किसी तरह की लिखा-पढ़ी करनेको तैयार नहीं—न वृत्ति बढ़ानेको ही राजी है।

४—कितने लोग भविष्यत् में दिल्ली के सिंहासन के उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकते हैं, उनकी एक सूची तैयार करके भेजना। बेटा हो या पोता हो, सबके नाम लिख भेजना लेकिन भूतपूर्व बादशाहों के दूर के नातेदारों के नाम न लिखना।

५—दिल्ली के राजवंश को इस समय जो वृत्ति दी जाती है, उसमें से शाहज़ादे को केवल १५ हज़ार रुपये दिये जायंगे।

लार्ड केनिङ्ग ने इस मामले में न तो अपनी आँखों से देखा,

न अपनी बुद्धि से विचार किया; क्योंकि उनके से उदार और महत् व्यक्तियों में भला इतनी कतर-ब्यौंत कहां से आ सकती थी? उन्होंने यही बातें लिख भेजीं, जो लार्ड डलहौसी लिखने को कह गये थे।

जिस समय लार्ड केनिङ्ग के पत्र का हाल ज़ीनत-महल बेगम को मालूम हुआ, उस समय वह मारे क्रोधके पगली सी हो गयीं। वह इस बातको बर्दाश्त न कर सकी, कि ये बनिये तो हमारा किला दखल करें और हमलोग इधर-उधर भटकते फिरें! मारे क्रोध, दुःख और अभिमान के उसके अंग-अंग में चिनगारी लग गयी। पर बेचारी क्या करती? लाचार, मन मार; चुप हो रही।

क्रमशः ज़ीनत-महल बेगम का लड़का जवानबख़्त, जिसे सिंहासन दिलाने के लिये जी-तोड़ कोशिस कर रहे थे, जवान हुआ। और राजनीतिक दाँव-पेचों को समझने लगा। उसने अब देखा, कि मेरे माँ-बाप तो सिंहासन देने को तैयार हैं; पर ये अँगरेज ही उसमें बाधा डाल रहे हैं, तब तो वह अंगरेज़ों का घोर शत्रु बन गया।

गप्प उड़ती, कि फ़ारिसवाले अटक तक चले आये हैं, तो कभी यह अफवाह सरगरमीके साथ फैल जाती, कि रोम और फ़ारिस मिल गये हैं, रोम के सुलतान और फ्रान्सके बादशाह इनकी मदद करने को तैयार हैं। मुसल्मानों में तो यह बात बरसों से फैली हुई थी, कि अँगरेजों का राज्य सिर्फ १०० वर्षों तक ही रहेगा। इसलिये सब लोग इसी भविष्यद्वाणी पर विश्वास करते हुए अँगरेजों का पतन और प्राचीन राज्यवंश की पुनः प्रतिष्ठा होनेकी आशा करने लगे।

किसी-किसीने तो यहां तक कह डाला, कि वृद्ध बहादुर-शाहने फारिस के बादशाहके साथ साजिश की थी और उन्हींकी मदद से अपना खोया हुआ राज्य उबार लेना चाहा था, किन्तु इस बात का सबूत आज तक नहीं मिला। लेकिन बादशाह षड्-यन्त्र करें या नहीं; उनके अनुचर उनका अपमान और अवश्य-म्भावी पतन देख कर सर्वसाधारण के मनमें अँगरेजों के प्रति घृणा, द्वेष और वैर का भाव उत्पन्न करने लगे। उनके प्रयत्न से दिल्ली के समस्त मुसल्मान अँगरेजों को अपना दुश्मन सम-झने लगे। सन् १८५७ के मार्च महीने में वहाँ की जुमा-मसजिद में एक परचा चिपकाया हुआ पाया गया, जिसमें लिखा हुआ था, कि--फारिस की सेना अँगरेजों के हाथ से भारतका उद्धार करने के लिये चली आ रही है; इसलिये हर एक मुसलमान का कर्त्तव्य है, कि वह इन काफ़िरोंसे लड़ने के लिये तैयार हो जाय। यद्यपि यह पर्चा कुछ ही घण्टों के अन्दर मसजिद की दीवार से उखाड़ लिया गया, तथापि यह खबर चारों ओर फैल गयी।

लोग अँगरेज़ों के विरुद्ध उत्तेजित हो ही रहे थे—अबके ऐसा मालूम पड़ने लगा, कि शीघ्र ही विप्लव मचने वाला है। दिल्ली के सिपाहियों में भी हलचल सी पड़ गयी, लेकिन बूढ़े बादशाह बहादुरशाह को इन सब आन्दोलनों से कोई सरोकार नहीं था। वे उदासीन भाव से अपने बुढ़ापे के दिन बिता रहे थे। इतने में १० वीं मई को मेरठ के सिपाही बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने जैसा अन्धेर मचाया, उसका वर्णन हम पहले अध्याय में कर चुके हैं; साथ ही यह भी पहले ही लिख चुके हैं, कि इधर तो अँगरेज़ लोग गयी रातका बदला लेने के लिये सिपाहियों की खोज में निकले, उधर उनके आने के पहले ही रातोंरात विद्रोहियों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया था।

बड़ी तेज़ी से कूच करते हुए उन्मत्त विद्रोही सिपाही ११ वीं मई के सबेरे ही भारत की प्रसिद्ध और प्राचीन राजधानी दिल्ली के पास यमुना के किनारे आ पहुंचे! दिल्ली का जो हिस्सा यमुना के किनारे पड़ता है,

बहुत ही पास है। पर जब यह दरवाजा वन्द मिला, तव आगन्तुक अश्वारोही सैनिक राजघाट दरवाजे की ओर चले। वहाँ के मुसलमान रखवालों ने झटपट फाटक खोल दिया, जिसके द्वारा मेरठ के उत्तेजित सैनिक नगर के भीतर चले आये।

मेरठ में सिपाहियों ने अँगरेजों की खूब हत्या की है और अब यहां आ रहे हैं, यह बात दिल्ली में रहनेवाले अँगरेजों को नहीं मालूम थी ; क्योंकि विद्रोहियों ने पहले ही मेरठ और दिल्ली के बीच का तार काट दिया था।

११ वीं मई के सबेरे ही दिल्ली के टेलीग्राफ आफिस के कर्मचारी टाड साहब की समझमें आया, कि जरूर दिल्ली और मेरठ का तार-सम्बन्ध काट डाला गया है। यही सोच कर वे उसी समय यमुना के उसी पुल पर पहुंचे, जहां विद्रोही घुड़सवार इकट्ठे थे। उन्हें देखते ही सबके सब उन पर टूट पड़े और तलवार से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। पर इस हत्या की बात भी वहां के राजपुरुषों को ठीक समय पर नहीं मालूम हो सकी।

सारी दिल्ली उथल पुथल होने लगी। सब बाजार बन्द हो गये। १० वीं मई की सन्ध्या को जैसे भयङ्कर काण्ड मेरठ में हुए थे, ११ वीं मई के सवेरे दिल्ली में भी वैसे ही काण्ड होने लगे।

इस समय ३८ वीं, ५४ वीं और ७४ वीं पलटनें थीं। इन तीनों में ३५०० सिपाही थे। इनके सिवा गोलन्दाज़ों की भी एक पलटन थी, जिसमें १६० गोलन्दाज़ थे। इन सब पलटनों में ५२ अँगरेज भिन्न-भिन्न पदों पर कार्य करते थे।

मेरठ के सिपाही दिल्ली में घुसते ही जिस अँगरेजको सामने पाते, उसे ही मार कर ढेर कर देते। उन्होंने बहुत से अँगरेजों के घरों में आग लगा दी और "दीन-दीन" की पुकार मचाते हुए दिल्ली में अँगरेजों का-अनिष्ट-साधन करने लगे। दिल्ली के बहुत से मुसलमान 'दीन-दीन' की पुकार सुन उनके साथ हो लिये और फिरङ्गी लोगों का सत्यानाश करने का संकल्प सिद्ध करने लगे।

इस समय ३८ वीं पलटन राजमहल की रक्षा कर रही थी जब मेरठवाले सिपाही महलों के पास चले आये, तब कप्तान डगलस और कमिश्नर फ्रेजर साहब ने इस पलटन के सिपाहियों को अपने मेल में ले आने का बड़ा प्रयत्न किया; पर ये लोग तो पहले से ही जाति और धर्म का नाश करनेवाले अँगरेजों से जले बैठे थे, इसलिये उनकी बात न मानकर ये लोग भी विद्रोहियों के साथ हो लिये। कमिश्नर और कप्तान की कोई कला न चलने पावी।

इतने में विद्रोही घुड़सवार वहाँ आ पहुंचे। तब कमिश्

और कप्तान साहब, बग्घी पर सवार हो आक्रमण करने वालों को रोकने की चेष्टा करने लगे। उनके हाथ में भी पिस्तौलें थीं। इतने में उस बग्घीपर सवार हिन्दुस्तानी अर्दलियों को देखकर विद्रोही सिपाहियों ने बड़े जोश से ललकार कहा:— "तुम लोग अपने दीनो-ईमान को मानते हो या इन काफ़िर अँगगरेजों को?" यह सुनते ही वे मुसलमान अर्दली बड़े ऊँचे स्वर से 'दीन दीन' की पुकार कर उठे। मुसलमानों का यह युद्ध-रव सुनते ही फ्रेजर और डगलस साहब की तो जान घपले में पड़ गयी और वे झटपट गाड़ी से नीचे उतर कर पुलिस की चौकी की ओर चले। इधर से घुड़सवार उनके सामने आ पहुंचे। फ्रेजर साहब ने एक को ताक कर गोली छोड़ी और दूसरी गोली से एक दूसरे घुड़सवार का घोड़ा ज़मीन पर गिरा दिया। इतने में विद्रोहियों का दल बढ़ते-बढ़ते ऐसा अपार दिखाई देने लगा, कि फ्रेजर साहब को सिवा भागने के और कुछ न सूझा। वे फिर गाड़ी पर सवार हो लाहौरीदरवाजे को ओर चले। इधर कप्तान डगलस राजमहल की खाई पार करनेको

नीचे आकर देखा, कि कप्तान और हचिनसन साहब तो नीचे ही पड़े हैं; जो कोई पहरेदार उन्हें यहां तक ले आये थे, वे उन्हें ऊपर के एक कमरे में ले गये। कमिश्नर साहब नीचे ही रहे और उत्तेजित लोगों को समझाने-बुझाने लगे। इतने में उनपर चारों ओर से तलवारोंके ऐसे विकट वार हुए, कि उनका शरीर जीवन-शून्य होकर सीढ़ी के पास लोट गया!

कमिश्नर साहब का काम तमाम कर ये लोग ऊपर पहुंचे। डगलस, हचिनसन आदि अँगरेज पुरुष और कई एक मेमें वहीं मौजूद थीं, पहले तो उन लोगों ने भीतर से किवाड़ वन्द कर इन्हें रोक रखना चाहा; पर इतने आदमियों के आगे इने-गिने लोगों का जोर कहाँ तक चल सकता है? उन लोगों ने दरवाजा तोड़ कर ही रख दिया और भीतर घुस कर पलक मारते में एक-एक की हत्या कर डाली।

इस तरह दिल्ली के दुर्ग में अँगरेज-स्त्री-पुरुषों के रक्त की नदी वहायी गयी; परन्तु वहादुरशाह का इसमें कुछ भी हाथ न था। वेचारे वहादुरशाह तो यह सब हाल-वेहाल देख, घवरा उठे। उन्हें रह-रह कर अपनी ही जान की फिक्र होने लगी!

देखते-देखते दिल्ली का प्रसाद-प्राङ्गण विद्रोही सिपाहियों से भर गया। चारों ओर से मुसलमानों के दल-के-दल आकर इनसे मिलने लगे। रात भर के थके हुए सिपाही सम्राट् के सुरम्य सभा-मण्डप में विश्राम करने लगे। चारों ओर हथियार-वन्द सिपाही पहरा देने लगे।

इधर दिल्ली में जो अँगरेजों का मुहल्ला था, वहाँ—अर्थात्

दरियागञ्ज में—भयङ्कर काण्ड होने शुरू हुए ; दोपहर दिन चढ़ते-न-चढ़ते प्रधान-प्रधान अँगरेजों को इन बलवाइयों ने मृत्युके घाट उतार दिया। इसी समय दिल्ली के बेङ्क पर हमला हुआ। बेङ्क के कर्मचारी बाधा देते जाकर मारे गये। फिर तो बेङ्क की बे-रोक टोक लूट आरम्भ हुई। इसके बाद उन लोगों ने "दिल्ली-गजट" नामक अखबार के छापाखाने को तहस-नहस करना आरम्भ किया। बातकी बात में वहाँ के सभी ईसाई कम्पोजिटर कत्ल कर डाले गये। सिपाहियों को अँगरेजों से ऐसी चिढ़ हो गयी थी, कि वे जहां कहीं किसी अँगरेज या ईसाई की सूरत देखते, वहीं उसे मार डालते, उसका घर जला देते और उसकी जमा-पूँजी लूट लेते थे।

अब तक ख़ास दिल्ली के सिपाहियों के सिर नहीं फिरे थे। अबके बार इनके भी चित्त में चञ्चलता उत्पन्न हुई, पर तोभी वे चुप रहे। इतने में मेरठ के सिपाहियों के दिल्ली में चले आने की ख़बर सुनकर दिल्ली के समस्त सैनिक दलों के अध्यक्ष ब्रिगेडियर ग्रेव्स ने कर्नल रिपले के अधीन ५४ वीं पलटन को काश्मीरी-दरवाजे की ओर भेजा। जिस समय आक्रमण करने वाले

इधर ५४ वीं पलटन के जाने के बाद ही मेजर पैटरसन शेष दोनों पलटनों और तोपों के साथ-साथ काश्मीरीदरवाजेकी ओर चले। यद्यपि उस समय इन गोलन्दाज सिपाहियों ने ऊपर से किसी प्रकार की उदासीनता नहीं दिखाई, तथापि उनके हृदय में भी बलवाई सिपाहियोंके प्रति सहानुभूति थी, इसमें सन्देह नहीं। उस समय अँगरेजों के प्रति विद्वेष और जाति तथा धर्मको नाश से बचाने की आकांक्षा इस प्रबलता के साथ काम कर रही थी, कि सभी एक प्राण हो रहे थे। ये लोग भी भीतर ही भीतर अपने देशी भाइयों से युद्ध करने को तैयार नहीं थे। खैर, मेजर पैटरसन ५४ वीं पलटनके दोनों दल और तोपें लिये हुए काश्मीरी दरवाजे पर पहुंचे। उस समय तक तो दुश्मन सारे नगर में फैल चुके थे। मेजर ने उन्हें वहाँ नहीं पाया। हाँ, उन्होंने अपने साथियों की लाशें अलबत्ता कटी देखीं। यह देख, मेजर पैटरसन को बड़ा भारी शोक हुआ।

काश्मीरीदरवाजे के भीतरी हिस्से में एक बड़ा सा मकान था। जिसे अँगरेज लोग "मेन गार्ड" कहते थे। उसीमें कप्तान वालेस ३४ वीं पलटन के कुछ सिपाहियों के साथ रहते थे। बलवाईयों को हमला करते देख, कप्तान ने अपने सैनिकों को गोली चलाने का हुक्म दिया; पर इसका कोई फल न हुआ। इसी समय कर्नल पैटरसन अपने साथियों की लाशें लिये हुए यहीं आ पहुंचे। उनके सब साथी भी तोपें वगैरह लिये-दिये यहीं आ रहे। सब लोग मेरठ के बलवाइयों के हमले की प्रतीक्षा करने लगे और यह भी आशा करने लगे, कि मेरठ की गोरी पलटन भी अब आती ही होगी।

यहां आते ही मेजर पेंटरसन ने कप्तान वालेस को ७४ वीं पलटन के पैदल सिपाहियों और दोनों तोपों को ले आने के लिये छावनी में भेज दिया। इधर ७४ वीं पलटन परेड के मैदान में खड़ी थी। गोलन्दाज पलटन के अध्यक्ष कप्तान डि० टीशिथर भी कुछ सिपाहियों और तोपों के साथ यहीं डटे हुए थे। मेजर ऐवट ७४ वीं पलटन के अध्यक्ष थे। उन्हें ग्यारह बजे के करीब ख़बर मिली, कि ५४ वीं पलटन के सब अफसर मारे गये। यह सुनते ही वे अपनी पलटन में आये और जो कोई सामने मिला उसी से बोले, कि अभी काश्मीरीदरवाजेकी तरफ चलना होगा यह सुनते ही सब सिपाही उनके साथ चलने के लिये तैयार हो गये। काश्मीरीदरवाजे के मेनगार्डमें पहुंच कर वे लोग शत्रुओं के आनेकी राह तकने लगे; पर तीन बजे तक कोई बलवाई दिखाई न दिया। इधर विद्रोही लोग नगर में घुस कर कौनसा उपद्रव कर रहे हैं, यह इन लोगों को मालूम भी न होने पाया।

शाम हो चली, सूरज डूबने को पश्चिम में आ बिराजे।

इधर ५४ वीं पलटन के जाने के बाद ही मेजर पैटरसन शेष दोनों पलटनों और तोपों के साथ-साथ काश्मीरीदरवाजेकी ओर चले। यद्यपि उस समय इन गोलन्दाज सिपाहियों ने ऊपर से किसी प्रकार की उदासीनता नहीं दिखाई, तथापि उनके हृदय में भी बलवाई सिपाहियोंके प्रति सहानुभूति थी, इसमें सन्देह नहीं। उस समय अँगरेजों के प्रति विद्वेष और जाति तथा धर्मको नाश से बचाने की आकांक्षा इस प्रबलता के साथ काम कर रही थी, कि सभी एक प्राण हो रहे थे। ये लोग भी भीतर ही भीतर अपने देशी भाइयों से युद्ध करने को तैयार नहीं थे। खैर, मेजर पैटरसन ५४ वीं पलटनके दोनों दल और तोपें लिये हुए काश्मीरी दरवाजे पर पहुंचे। उस समय तक तो दुश्मन सारे नगर में फैल चुके थे। मेजर ने उन्हें वहाँ नहीं पाया। हाँ, उन्होंने अपने साथियों की लाशें अलबत्ता कटी देखीं। यह देख, मेजर पैटरसन को बड़ा भारी शोक हुआ।

काश्मीरीदरवाजे केभीतरी हिस्से में एक बड़ा सा मकान था। जिसे अँगरेज लोग "मेन गार्ड" कहते थे। उसीमें कप्तान वालेस ३४ वीं पलटन के कुछ सिपाहियों के साथ रहते थे। बलवाईयों को हमला करते देख, कप्तान ने अपने सैनिकों को गोली चलाने का हुक्म दिया; पर इसका कोई फल न हुआ। इसी समय कर्नल पैटरसन अपने साथियों की लाशें लिये हुए यहीं आ पहुंचे। उनके सब साथी भी तोपें वगैरह लिये-दिये यहीं आ रहे। सब लोग मेरठ के बलवाइयों के हमले की प्रतीक्षा करने लगे और यह भी आशा करने लगे, कि मेरठ को गोरी पलटन भी अब आती ही होगी।

यहां आते ही मेजर पेंटरसन ने कप्तान वालेस को ७४ वीं पलटन के पैदल सिपाहियों और दोनों तोपों को ले आने के लिये छावनी में भेज दिया। इधर ७४ वीं पलटन परेड के मैदान में खड़ी थी। गोलन्दाज पलटन के अध्यक्ष कप्तान डि० टीशिधर भी कुछ सिपाहियों और तोपों के साथ यहीं डटे हुए थे। मेजर ऐवट ७४ वीं पलटन के अध्यक्ष थे। उन्हें ग्यारह बजे के करीब ख़बर मिली, कि ५४ वीं पलटन के सब अफ़सर मारे गये। यह सुनते ही वे अपनी पलटन में आये और जो कोई सामने मिला उसी से बोले, कि अभी काश्मीरीदरवाजेकी तरफ चलना होगा यह सुनते ही सब सिपाही उनके साथ चलने के लिये तैयार हो गये। काश्मीरीदरवाज़े के मेनगार्डमें पहुंच कर वे लोग शत्रुओं के आनेकी राह तकने लगे; पर तीन बजे तक कोई वलवाई दिखाई न दिया। इधर विद्रोही लोग नगर में घुस कर कौनसा उपद्रव कर रहे हैं, यह इन लोगों को मालूम भी न होने पाया।

नजर फेरते ही अँगरेज सैनिकों ने देखा, कि ऊँची-ऊँची पर्वताकार धूमराशि आकाश में छा रही है—प्रज्वलित वह्निशिखा उस धूमराशिको भेद कर अनन्त आकाश की ओर उठ रही है। यह देखते ही सब लोग समझ गये, कि दिल्ली के अस्त्रागार में आग लग गयी है ; पर आग आप से आप भड़क उठी या किसी आदमी ने लगा दी, यह बात नहीं मालूम हो सकी। इसी समय दो युरोपियन वहाँ आ पहुंचे। ये गोलन्दाज फौज के कर्मचारी थे घोर धुएँ के भीतर से आने के कारण एक का चेहरा तो इतना काला पड़ गया था, कि उसे पहचानना ही कठिन था। उन्होंने आते ही अस्त्रागार की जो भीषण कथा कह सुनायी, उसे सुन कर लोग अचम्भे में आ गये।

दिल्ली का प्रसिद्ध अस्त्रागार नगरके अन्तमार्गमें शाही महल से कुछ दूर पर स्थित था। वहाँ तोप, बन्दूक, गोला, बारूद, सब कुछ रखा रहता था। लेफ्टिनेण्ट ज्यार्ज विलोबी नामक एक अँगरेज इस अस्त्रागार के अध्यक्ष थे। इनके अधीन ८ और युरोपियन काम करते थे। और सब कर्मचारी हिन्दुस्तानी ही थे।

सोमवार तारीख ११वीं मई के सवेरे ही जब विलोबी साहब अस्त्रागार की देखभाल कर रहे थे, इसी समय दिल्ली के अँगरेज रेजिडेण्ट सर टी० मेटकाफ ने उनसे आकर कहा, कि मेरठ के बहुत से बलवाई सिपाही नदी पार कर रहे हैं।

साथ ही उन्होंने उन लोगों का रास्ता रोकने के लिये दो तोपें भी माँगी, जो उन्हें तुरत ही मिल गयीं; पर नदी के पुलपर आकर उन्होंने देखा, कि दुश्मन तो पुल पार कर गये। यह देख

कर वे दूसरे काम को चले गये और विलोबी साहब अस्त्रागार की रक्षा करने लगे। उन्हें डर था, कि कहीं बलवाई लोग यहाँ आकर हथियार-बन्दूक न लूट लें। उन्हें यहां के आदमियों पर भी सन्देह होने लगा; अतएव रह-रहकर उनके जीमें यही बात आने लगी; कि मेरठ से गोरी पलटन आये बिना इस अस्त्रागार की रक्षा करना मेरे लिये सम्भव नहीं। ख़ास, अपने एक दरबानपर, जिसका नाम करीमबख्श था, उन्हें विशेष सन्देह हुआ और इसीलिये उन्होंने अपने एक युरोपियन साथी से कहा, कि इस आदमी पर निगाह रखना और जहाँ इसे अस्त्रागार की ओर पैर बढ़ाते देखना, वहां झट इसपर तमञ्चा छोड़ देना। इस प्रकार सन्देह करना उचित ही था; क्योंकि उस समय ऐसी कुछ लहर आ गयी थी, कि समस्त हिन्दुस्तानी, अँगरेजों के प्रति एक ही प्रकारका भाव रखने लगे थे; सब के जी में यही बात बैठ गयी थी, कि इन लोगों ने जिस प्रकार धोके से यहाँ का राज्य लिया है, उसी प्रकार अब हम लोगों का 'धर्म' लेना चाहते हैं।

यह काम खतम हो जाने पर जिस घर में बारूद रखी थी, वहां से लेकर अस्त्रागार के आँगन वाले वृक्ष तक मिट्टी के नीचे नीचे बारूद बिछा दी गयी। यहाँपर स्कली नामक एक अँगरेज कर्मचारी खड़ा कर दिया गया। थोड़ी दूरपर बकली नामक विलोबी साहब के एक सहयोगी अन्तिम आज्ञा सुनाने के लिये खड़े किये गये। यही बन्दोबस्त सोचा गया, कि जब कोई तरकीब न लगेगी तब ज्यों ही बकली साहब टोपी उतार कर ईशारा करें, त्यों ही मिट्टी के नीचे छिपी हुई बारूद में आग लगा दी जाये। जिससे सारा अस्त्रागार ही उड़ जाये। इस आदेश के पालन का भार स्कली साहब को सौंपा गया।

इतने में बलवाई अस्त्रागार के द्वारपर पहुँचे और बोले—"बाद शाह का हुक्म है—फाटक खोल दो।" पर अँगरेजों ने बात अनसुनी कर दी–उन्होंने फ़ाटक नहीं खोला। इतने में बलवाइयों का शोरो-गुल सुनकर भीतर के सभी देशी कर्मचारी ऊपर छत पर चढ़ गये और बलवाइयों को दीवार पर सीढ़ियां लगाते देख, उन्हीं सीढ़ियों के सहारे नीचे उतर, बलवाइयों के दल में जा मिले।

अब ज़रा भी देर करना मुनासिब न समझ कर अँगरेजों ने भीतर से गोले बरसाने शुरू कर दिये। बलवाइयों ने भी अपने को बचाना आरम्भ कर दिया। वे भी गोली छोड़ने लगे, उनकी गोली खाकर बहुत से अँगरेज तो उसी क्षण मर गये। धीरे धीरे बलवाइयों का जोर बढ़ता ही गया और ये सातों अँगरेज घबरा उठे। अन्तमें कोई उपाय न देख, विलोबी साहब ने बकली ो इशारा किया, जिन्होंने टोपी उतार कर स्कली साहब को

अपने कर्त्तव्य पालनका संकेत किया। स्कली साहबने उसी समय प्राणों की परवा न कर, अपने देश-बन्धुओं की रक्षाके लिये, बारूद में आग लगा दी—आग लगाते ही बारूद स्कली साहब को लिये हुए भक् से उड़ी और सारा अस्त्रागार फट पड़ा! चारों ओर तबाही फैल गयी। बहुतेरे बलवाई मारे गये। विलोबी और उसके पाँच साथी, किसी-किसी तरह, जलते झुलसते हुए बाहर निकल पाये। विलोबी साहब तो अपने एक साथी के साथ साथ मेन गार्ड में चले आये और बाकी के लोग मेरठ की तरफ भाग खड़े हुए।

उस समय विलोबी साहब ने कहा था, कि इस दुर्घटना के कारण प्रायः एक हजार आदमी मौत के शिकार हुए थे। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, कि इस दुर्घटना के कारण दिल्ली के भिन्न-भिन्न मुहल्लों के प्रायः ५०० आदमी मर गये। किसी किसी घर में इतनी गोलियाँ गिरी थीं कि पीछे लड़कों ने सेरों चुनीं तो भी खतम न हुईं। इस तरह अस्त्रागार को नष्ट कर डालने से बलवाइयों का एक बड़ा भारी उद्देश्य विफल हो गया, विलोबी और खास कर स्कली ने इस विषय में जैसी

यह काम ख़तम हो जाने पर जिस घर में बारूद रखी थी, वहां से लेकर अस्त्रागार के आँगन वाले वृक्ष तक मिट्टी के नीचे नीचे बारूद बिछा दी गयी। यहाँपर स्कली नामक एक अँग-रेज कर्मचारी खड़ा कर दिया गया। थोड़ी दूरपर बकली नामक विलोवी साहब के एक सहयोगी अन्तिम आज्ञा सुनाने के लिये खड़े किये गये। यही बन्दोबस्त सोचा गया, कि जब कोई तरकीब न लगेगी तब ज्यों ही बकली साहब टोपी उतार कर ईशारा करें, त्यों ही मिट्टी के नीचे छिपी हुई बारूद में आग लगा दी जाये। जिससे सारा अस्त्रागार ही उड़ जाये। इस आदेश के पालन का भार स्कली साहब को सौंपा गया।

इतने में बलवाई अस्त्रागार के द्वारपर पहुँचे और बोले—"बाद शाह का हुक्म है—फाटक खोल दो।" पर अँगरेजों ने बात अन-सुनी कर दी—उन्होंने फ़ाटक नहीं खोला। इतने में बलवाइयों का शोरो-गुल सुनकर भीतर के सभी देशी कर्मचारी ऊपर छत पर चढ़ गये और बलवाइयों को दीवार पर सीढ़ियां लगाते देख, उन्हीं सीढ़ियों के सहारे नीचे उतर, बलवाइयों के दल में जा मिले।

अब ज़रा भी देर करना मुनासिब न समझ कर अँगरेजों ने भीतर से गोले बरसाने शुरू कर दिये। बलवाइयों ने भी अपने को बचाना आरम्भ कर दिया। वे भी गोली छोड़ने लगे, उनकी गोली खाकर बहुत से अँगरेज तो उसी क्षण मर गये। धीरे धीरे बलवाइयों का जोर बढ़ता ही गया और ये सातों अँगरेज घबरा उठे। अन्तमें कोई उपाय न देख, विलोबी साहब ने बकली इशारा किया, जिन्होंने टोपी उतार कर स्कली साहब को

अपने कर्त्तव्य पालनका संकेत किया। स्कली साहवने उसी समय प्राणों की परवा न कर, अपने देश-बन्धुओं की रक्षाके लिये,वारूद में आग लगा दी—आग लगाते ही वारूद स्कली साहव को लिये हुए भक् से उड़ी और सारा अस्त्रागार फट पड़ा! चारों ओर तवाही फैल गयी। वहुतेरे वलवाई मारे गये। विलोवी और उसके पाँच साथी, किसी-किसी तरह, जलते झुलसते हुए वाहर निकल पाये। विलोवी साहव तो अपने एक साथी के साथ साथ मेन गार्ड में चले आये और वाकी के लोग मेरठ की तरफ भाग खड़े हुए।

उस समय विलोवी साहव ने कहा था, कि इस दुर्घटना के कारण प्रायः एक हजार आदमी मौत के शिकार हुए थे। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, कि इस दुर्घटना के कारण दिल्ली के भिन्न-भिन्न मुहल्लों के प्रायः ५०० आदमी मर गये। किसी किसी घर में इतनी गोलियाँ गिरी थीं कि पीछे लड़कों ने सेरों चुनीं तो भी खतम न हुईं। इस तरह अस्त्रागार को नष्ट कर डालने से वलवाइयों का एक वड़ा भारी उद्देश्य विफल हो गया, विलोवी और खास कर स्कली ने इस विषय में जैसी वीरता दिखायी, उसके लिये इन लोगों की सर्वत्र वड़ी प्रशंसा हुई। परन्तु दुर्भाग्यवश विलोवी साहव मेरठ जाते समय रास्ते में ही मारे गये। हाँ, उनके पाँच साथियों—फ़ारेस्ट, रेनर, वकली, शा और स्टुअर्ट को पीछे विक्टोरियाक्रास से सम्मानित किया गया।

दिल्ली शहर और फौजी छावनी के वीच जो छोटी सी

पहाड़ी है, उसी पर एक गोलघर बना हुआ है, जिसे अँगरेजी इतिहासों में (Flag Staff Tower) अर्थात् पताका-मन्दिर कहा गया है। बहुत से युरोपियनों ने यहीं आश्रय लिया था। ३१ वीं पलटन को यहीं रहने का हुक्म दिया गया था। यहां पर दो तोपें रखी हुई थीं। सैनिक अफसरों के सिवा यहाँ १६ युरोपियन ईसाई और थे। इनके अतिरिक्त बहुतसी अँगरेज औरतें और बालक-बालिकाएँ भी मौजूद थीं। यहाँसे अस्त्रागार के ध्वंस के चिन्ह साफ दिखलाई पड़ते थे। गोलघर के युरोपियनों ने आसमानमें बेतरह धुआँ उड़ते देखा। उस समय दिन के ४ बजे थे। उस समय भी यहाँ के अँगरेज मेरठ की गोरी पलटन के आने की राह देख रहे थे। पर अन्त में उन्हें उम्मीद छोड़ देनी पड़ी। तब वाटसन नामक एक अँगरेज, ब्रिगेडियर ग्रेव्स (GraVes) का पत्र लेकर संन्यासी का वेश बना; मेरठ जाने को तैयार हो गया। यह आदमी डाकृर था और हिन्दुस्तानी भाषा बड़े मजे में बोल लेता था। पर जब बेचारा नदी के किनारे पहुँचा, तब देखता क्या है कि पुल तो टूटा पड़ा है। यह देख कर वह छावनी की तरफ आकर नाव द्वारा नदी पार करने की चेष्टा करने लगा। इसी समय ३ री पलटन के घुड़सवारों की नजर उसपर पड़ी—उन्होंने उसे लक्ष्य कर गोली छोड़ी। पास के गाँव के गूजरों ने आकर उसके कपड़े लत्ते उतार लिये और उसकी बड़ी दुर्दशा की। बेचारे का [illegible]पियापन किसी काम न आया। खूब अच्छी तरह उनकी [illegible] करने के बाद उन लोगों ने उसे छोड़ दिया और बेचारा

नङ्ग-धड़ङ्ग करनाल की तरफ भागा—मेरठ की ओर न जो सका। अगर मेरठ जाता भी तो क्या करता? वहाँवाले क्या यहां आकर अपने भाई-वन्दों की कुछ मदद कर सकते? कदापि नहीं।

क्रमशः रात हुई। दिल्ली भरके सिपाहियोंने सलाह कर ली। अपने सेनापतियों की बात न मान कर उन्हें छोड़ कर चल देना ही ठीक समझा गया। चारों ओर असन्तोष और विद्रोहका दौर-दौरा हो गया। विद्रोहियों ने यही कह-कह कर लोगोंको अपने मत में लाना शुरू किया, कि हमलोग फिर से मुगल-राज्य सारे भारत में फैला देना चाहते हैं, जिसमें जाति और धर्म का भेद किये विना ही, सब किसी को वड़े से वड़ा पद मिल सके। सब लोग इस बात के लिये उत्सुक दिखलाई पड़ते थे, कि इन अँगरेजों की यह भड़कशाही दूर हो और मुगलिया सलतनत फिर से पुराने गौरव को पा जाये। जोश में भर-भर कर लोग दिल्ली के बादशाह की जय-जय मनाने लगे और उत्साह के साथ विद्रोहियों के दल में मिलने लगे, मेरठ की गोरी पलटन को न आते देख, इन लोगों का साहस और भी बढ़ता चला गया। भ्रम से सारी दिल्ली में विद्रोह लहरें मार उठा!

सिपाहियों ने यहां केवल अँगरेजोंके घर ही नहीं जलाये और लूटे; वलिक उनके साथ बड़े पराक्रम दिखलाते हुए सम्मुख समर भी किया। अँगरेजों की संख्या कम होने के कारण, वे लोग सिपाहियों को परास्त न कर सके। इसलिये कितने तो मारे गये और कितने जान बचा कर जिधर सींग समाया, उधर ही

भाग चले। जिन लोगों ने सिपाही-विद्रोह का इतिहास लिखा है, उन्हें यह बात स्वीकार करनी ही पड़ी है, कि यद्यपि इन सिपाहियों के सेनापति या कामाण्डर नहीं थे, तथापि इन लोगों में ऐसी एकता पैदा हो गयी थी, कि उसीके बल पर ये बड़े जोश और मुस्तैदी के साथ अँगरेजोंके साथ लड़ते और उन्हें हराते थे।

इधर मेन गार्ड में जो सब युरोपियन जमा थे उनपर ३८ वीं पलटन के सिपाही, लगातार गोलियां बरसाने लगे। तीन जने अफसर तो मारे गये बाकी लोग भागने की राह ढूढ़ँने लगे। सामने के दरवाजे से तो भागना नहीं हो सकता था; क्योंकि उधर तो सिपाही खड़े होकर गोलियां छोड़ ही रहे थे। तब उन लोगोंने सोचा कि मेनगार्ड के ऊपरी हिस्से में कहीं कहीं तोप बैठाने के लिये जमीन ढालवीं कर दी गयी थी। इसी ढालवीं राह से नीचे खाईमें कूद कर भागने के सिवा और कोई चारा न था। खाई की गहिराई प्रायः ३० फुट थी। अफसरों ने अब देर न कर इसी उपाय को काम में लाना चाहा। ज्यों ही वे लोग भागने का उद्योग करने लगे, त्यों ही मेनगार्ड के घर में बैठी हुई अँगरेज औरतें चिल्ला उठीं। बेचारों से इन्हें छोड़कर भागते न बना। अब के इन लोगों ने कमरबन्द खोल, उसमें रूमाल बांध बारी बारी से कई आदमियों को उसी के सहारे नीचे उतारा; वे लोग फिर ऊपरवालों को नीचे उतरने में सहायता देने लगे। सब औरतें बच्चों सहित खाई में दी गयीं। खाई की दूसरी ओर जङ्गल था। सब ने खाई से उतर कर जङ्गल में या और कहीं जाकर

छिप जाना चाहा। पर उतर आना जैसा सहज था, वैसा इस में से निकल कर वाहर आना सहज नहीं था। किन्तु जब सिरपर विपद् आ जाती है तव आप ही आप शरीर में न जाने कहां से ऐसी फुर्ती, तेजी और हिम्मत आ जाती हैं, कि आदमी सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। बड़ी बड़ी मुश्किलों से सब लोग इसके बाहर निकले और कोई तो पास के जङ्गल में छिप गया, कोई छावनी की तरफ चला और कोई यमुना के किनारे बने हुए मेटकाफ साहब के बँगले की ओर चल पड़ा।

इधर विपद् क्रमशः ऐसी विकट होती गयी, कि और जितने अँगरेज गोल घर में आश्रय ग्रहण किये हुए थे, वे सब घबरा उठे। ब्रिगेडियर ग्रेव्सने जब सुना, कि मेन-गार्ड के अफसर मारे गये और बलवाईयों ने प्रायः सभी प्रधान स्थानों पर कब्जा कर लिया है, तब उन्होंने सबसे कहा, कि आप लोग चाहे जैसे हो, भाग कर प्राण बचाइये। पर अब तो भागनेका समय हाथ से निकल गया था। यदि वे पहले ही ऐसा कह देते, तो अब तक बहुत से लोग भाग गये होते तो भी ये लोग गोलघर के बाहर जाने को तैयार हो गये। गोलघर के नीचे गाड़ी, घोड़े आदि खड़े थे। युरोपियनों ने अपने अपने आत्मीय-स्वजनों को इन्हीं घोड़े-गाड़ियों पर चढ़ा लिया और कोई करनाल तो कोई मेरट की ओर चल पड़े। जिनको गाड़ी या और कोई सवारी नहीं मिल सकी वे पैदल ही चले। इन लोगों ने अपने साथ के सिपाहियों से साथ चलने के लिये कहा। पहले तो वे झट

राजी हो गये और उनके साथ हो लिये; पर पीछे रास्ते से ही छँट गये और बाजार में इधर-उधर छिप गये। जाते-जाते वे यह कहते गये, कि अब आप लोग अपने प्राण बचाने की चेष्टा कीजिये, बलवाई शीघ्र ही आया चाहते हैं। समय देखकर इन सिपाहियों ने अपने अफसरों का साथ भले ही छोड़ दिया; पर उनका कोई अनिष्ट नहीं किया।

ब्रिगेडियर ग्रेव्स ने अन्ततक छावनी की रक्षा करने की ठान ली थी, इसीलिये उन्हों ने मेनगार्ड में मेजर एबट को २ तोपें भेजने के लिये लिखा; किन्तु वे बेचारे न भेज सके। क्यों? सो उन्हींके मुँह से सुन लीजिये। मेजर ऐबट ने स्वयं कहा है, कि:—

"मैं ब्रिगेडियर ग्रेव्सकी बात मान कर तोपें भेजने को ही था, कि इसी समय मुझ से मेजर पैटरसन ने कहा, कि आप चले जायेंगे तो मैं भी यहाँ से चला जाऊँगा।..........एक डिपटी कलक्टर ने मुझ से कम से कम १५ मिनट ठहर जाने के लिये कहा। मैंने इसपर आपत्ति की; कहा कि ऐसा न करने से अफसर की हुक्म-उदूली होगी। ख़ैर, १५ मिनट बाद मैंने तोपें भेजीं तो सही; पर जो लोग उन्हें लिये जा रहे थे, वे तुरत ही उन्हें लौटा लाये। मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि तोपचियों ने काम छोड़ दिया है; इसलिये हम तोपें न ले जा सके। मैंने पूछा,—'तुम लोगों को छावनी में गोली छूटने की आवाज़ सुनाई दी है या नहीं? मेरे अर्दली ने कहा कि २ बार बन्दूक के छोड़े जाने की आवाज सुनी है! यह हो मैंने अपने सब आदमियों को बाक़ायदे लैस होकर

आने का हुक्म दिया। मेरे अरदली ने कहा—'साहब? इस वक्त कायदा बेकायदा रहने दीजिये, जल्दी यहाँ से चलिये।' तब मैंने लोगों को यात्रा करने की आज्ञा दी; क्योंकि मैंने सोचा कि अरदली मुझे छावनी की रक्षा के लिये शीघ्र ही वहां भेजना चाहता है। कुछ ही दूर जाते-न-जाते मुझे मेनगार्ड की ओर से बन्दूक छूटने की आवाज सुनाई दी। मैंने जब लोगों से इसका कारण पूछा, तब किसी-किसी ने कहा कि ३८वीं पलटन के सिपाही अङ्गरेज अफसरों पर गोली छोड़ रहे हैं; मेरे साथ प्रायः १०० आदमी थे। मैंने उन लोगों से कहा, कि तुम लोग अभी मेनगार्ड में पहुँच कर अफसरों की जान बचाओ, इसपर उन लोगों ने कहा कि अबतक तो वे कभी के खतम हो गये होंगे, अब तो वहाँ जाकर सिर्फ जान गंवाना है। आप की जान बची है यही गनीमत है। यह कह, सब के सब मुझे घेर खड़े हो गये और इसके बाद मुझे छावनी में ले आये; परन्तु वहां बहुत ढूँढ़ने पर भी ब्रिगेडियर का कहीं पता न चला!"

अस्तु; ऊपर के विवरण से पाठकों को भली भाँति मालूम हो गया होगा, कि उस समय अँगरेजों की दशा कैसी हो रही थी? उन्हें सूझता ही न था, कि क्या करें और कहां जायें?

जब सब लोगों को गोलघर से निकल भागने का हुक्म हुआ तब कई औरतों ने यह कह कर भागने से इनकार किया, कि जब तक उनके स्वामी नहीं आते, तब तक वे कहीं न जायेंगी। सबेरे से ही बहुतों के स्वामियोंका पता नहीं था, इसीलिये वे जानेको राजी नहीं होती थीं। पर जब रात तक उनका पता न लगा,

तब ३८ वीं पलटन के कप्तान टाइटलर ने सबको भाग जाने के लिये कहा। अब तो दिल्ली में जितने भी सैनिक पुरुष, कुलनारियां और बालक-बालिकाएँ थीं, सबकी सब भागने को तैयार हो गयीं।

इस प्रकार क्या गोलघर और क्या नगर, सभी जगहों के अँगरेज प्राण लेकर भाग चले। भागते समय इनकी बड़ी दुर्दशा हुई। कोई जंगल में जा छिपा, कोई टूटे फूटे मकानों या मन्दिरों में जा छिपा, कोई सङ्कट-पूर्ण रास्ते से चला और किसीको नाव या जहाज पर चढ़ कर भागना पड़ा। कितने लोगोंको कई रोज तक अन्न-जल नसीब नहीं हुआ, कितने ही दिन की धूप और रात के पाले से परेशान हो गये। कितनों ही के साथी छूट गये, तो कितने ही बिना खाये-पिये तड़प-तड़प कर मर गये।

इस प्रकार हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने अँगरेजों की बेतरह दुर्दशा की; परन्तु दूसरी ओर बहुतसे हिन्दुस्तानियों ने ही युरोपियनों की प्राण-रक्षा की, नहीं तो शायद एक भी नाम-लेवा पानी-देवा वहाँ न रह जाता! जिस ज़ीनत-महल बेगमका सर्वनाश करने के लिये यहां से लेकर विलायत तक के राजपुरुष एक मत हो रहे थे, उन्होंने ही ५० युरोपियनों को अपनी शरण में रख लिया था। हां, पीछे बलवाइयों के हाथ क़िले के आ जाने से उन्हें डर के मारे उन शरणागतों को छोड़ भी देना पड़ा था।

इसमें कोई शक नहीं, कि सिपाही गण बड़े उत्तेजित हो रहे थे और अपने धर्म-नाश की आशङ्का से मन-ही-मन अँगरेजों से तर उनका यहां से अस्तित्व ही मिटा देने को तुले हुए थे।

परन्तु उस समय की बहुत सी ऐसी दुर्घटनाओं का विवरण कितने ही लेखकों ने समाचारपत्रों और स्व-रचित पुस्तकों में किया है, जिनके होने का प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता। कितने ही अँगरेजों ने अँगरेज़-महिलाओं पर घोर अत्याचार किये जाने की बात लिख कर यहां और विलायत के अँगरेजों के मनमें आ-तङ्क और घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा की थी। उन्होंने लिखा है; कि "इन दुष्ट और उन्मत्त सिपाहियों ने कितनी ही युवतियों और बालिकाओं पर पाशविक अत्याचार कर अन्त में उन्हें बुरी तरह मार डाला! परन्तु इन सब घटनाओं के लिखे जाने का कारण बाजारू गप्प के सिवा और कुछ भी नहीं है। ऐसी-ऐसी कहानियों के बारे में एक सहृदय अँगरेज इतिहास-लेखक का कहना है,—यह सब घृणित अत्याचारों के वर्णन केवल बाजारू गप्पों पर ही अवलम्बित हैं। ये इसी उद्देश्य से नोन-मिर्च लगा कर लिखे जाते हैं, कि दूसरे सुनते ही जोश में आ जायें। + + + + जैसे अत्याचारों का होना बतलाया जाता है, स्त्रियों पर वैसे अत्याचार करने से ही कोई ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो या वैश्य हो, अवश्य ही वह जाति से बाहर किया जाता है। यह बात हिन्दुओं के चरित्र और स्वभाव के बिलकुल विरुद्ध है। जो सब गुण्डे-बदमाश पराया माल लूटना ही अपना पेशा समझते हैं; वे भी ऐसा पाप करते हुए हिचकते हैं। वे केवल लूट पाट करना-ही जानते हैं, इसके पीछे यदि उन्हें किसी विवाहिता अँगरेज-महिला की अँगूठी छीन लेनी पड़े, तो वे अलबत्ता इसे कर गुज़-रते थे; क्योंकि उनका उद्देश्य उसके विवाह की पवित्रता नष्ट

करना नहीं, वलिक सम्पत्ति हरण करना ही होता था। मुसलमानों की वात और है। कुरान के उपदेशों के सम्बन्ध में हमारी धारणा चाहे जो कुछ हो, परन्तु नाममात्र के ईसाई विजेताओं ने युरोप के युद्धों में नगरों का जैसा ध्वंस किया है, उनके उपद्रवों के जैसे भयानक चित्र इतिहासों में अङ्कित हैं, उनके मुक़ावले में दिल्ली की दुर्घटना और वलवाइयों की निष्ठुरता कुछ भी नहीं है।"

उक्त इतिहास-लेखकने जैसा कुछ लिखा है, वही वात यहां भी देखने में आयी। युरोप के इतिहास में ईसाइयों के जो भी भयङ्कर चित्र अङ्कित हों, पर इस सिपाही-विद्रोहके इतिहास में भी इनके कुछ महाभयङ्कर कृत्यों के चित्र अङ्कित होने योग्य हैं। दिल्ली की ऊपर लिखी दुर्घटना के वाद यहां के युरोपियनों ने रास्ते में ही ७लम्बरदारों (इजारदारों) को फांसी दी और ४गांव जला डाले—क्योंकि इन्हें महज इस वात का सन्देह हो गया था, कि इन लम्बरदारों ने कुछ भागती हुई अँगरेज महिलाओं की हत्या कर डाली है। सेनापति नीलसाहव भी ईसाई ही थे, जिन्हों ने इलाहावाद से यात्रा करते समय इतने आदमी मार डाले कि अन्तमें उनकी पलटन के अफसर को यह कहना पड़ा कि, "वस इस सर्व-विध्वंश से हाथ खींच लीजिये—क्या दुनियां से आप आदमी का नाम ही मिटा देना चाहते हैं?" इस वलवे के समय ईसाई सिपाहियों ने वेहथियार लोगों पर गोली छोड़ कर [illegible]ओं के साथ उनकी जान ले ली, हिन्दुओं के पवित्र देव[illegible] तोड़ डाले और शरण में आये हुए निरपराध वच्चों तक

की जान मार कर अपनी वीरता का परिचय दिया। यथास्थान इन सब घटनाओं का वर्णन पाठकगण इस पुस्तक में पायेंगे। जो लोग दिल्ली से जान लेकर भागे थे, उनमें से एक आदमी एक गाँव में जाकर बोला, कि तुम लोग मुझे यहां छिपा कर कहीं रखो, नहीं तो मैं तुम लोगों को गोली मार दूँगा, शरण माँगने का यह कैसा अच्छा ढंग है! अस्तुः– इन सब सच्ची घटनाओं के वर्त्तमान रहते बाजारू गप्पों के आधार पर लिखी हुई बांतों को कोई कब मान सकता है?

खैर, दिल्ली से अँगरेजों का अड्डा उखड़ गया। बहुतेरे तो मारे गये और कितने ही जान बचा कर इधर-उधर भाग गये। १६ वीं मई के बाद तो वहाँ अँगरेज का एक बच्चा भी न रहा! इधर मेरठ में मार पड़ी थी, कि दिल्ली से एकदम भाग जाना ही पड़ा। जितने दिनों से अँगरेजों के पैर इस जमीन पर पड़े थे, उतने दिनों के अन्दर उन्हें कभी इस तरह की बेभावकी नहीं सहनी पड़ी थी। बड़े-बड़े पदाधिकारियों को नंगे बदन और नंगे पांवों जान लेकर दिल्ली से मुँह फ़ेर लेना पड़ा! मुगल-सम्राट् बहादुरशाह की चारों ओर दुहाई फिर गई। बलवाइयों ने उन्हें ही देशका कर्त्ता, हर्त्ता, और विधाता मान लिया।

कहते हैं, कि इन दिनों दिल्ली के दरियागञ्ज बाजार में, जहां अँगरेजों की बस्ती थी, वहीं बलवाइयों का प्रधान अड्डा था। शहर का सब से बड़ा और प्रधान रास्ता—चाँदनी चौक—पाँच दिनों तक बन्द रहा। अन्तमें सम्राट् स्वयं नगर से बाहर हुए और लोगों से दूकान खोलने के लिये अनुरोध करने लगे। तब

लोगों ने दूकानें खोलीं। पहले तो बादशाह ने सिंहासन पर बैठना नहीं चाहा था; पर जब सिपाहियों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि कलकत्ते से लेकर पेशावर तक के सब अँगरेज इसी तरह मार डाले गये हैं, तब वे सिंहासन पर बैठे; क्योंकि वे जानते थे कि इस जोश के जमानेमें सिपाहियोंके विरुद्ध एक बात भी बोलना अपनी जान के लिये आफत बुलाना है। सिपाहियों ने उन्हें सिंहासन पर बिठा, समस्त भारतवर्षका स्वाधीन सम्राट् मान लिया। इसके बाद तो वे बादशाह को अपने इशारे पर नचाने लगे। कहते हैं, कि एक दिन बादशाह ने अपने शहर के महाजनों को बुला कर कहा, कि अगर तुम लोग सिपाहियों की बात न मानोगे, तो मारे जाओगे। फिर क्या था? महाजनों ने सब सिपाहियोंको २० दिन तक दाल-रोटी देनी स्वीकार कर ली। परन्तु सिपाहियों ने इससे राजी न होकर यह प्रस्ताव पेश किया, कि वे लोग हर एक घुड़सवार को एक रुपया और हरएक पैदल सिपाही को चार आना रोज दिया करें। लाचार उन्हें यह प्रस्ताव मान ही लेना पड़ा। यद्यपि लेफ्टिनेण्ट विलोबी ने अस्त्रागार को बारूद से उड़ा दिया था, तथापि वे उसका सारा सामान नष्ट न कर सके। बहुत कुछ गोले, गोलियां और बारूद वहां मिलीं, जिन्हें सिपाहियों ने खुले आम बाजारमें बेच डाला।

सिपाहियों को बहादुरशाह के नामपर काम करते देख, बहुतेरे अँगरेजों की उस समय यही धारणा हुई कि यह सारा षड़- ... न्हीं का रचा हुआ है; पर बेचारे बूढ़े बादशाह को यह ... ई ही लगाया गया। आज तक उनके विरुद्ध अभि-

योग प्रमाणित भी न हो सका और बड़े बड़े ऐतिहासिकों ने उनको एकबारगी निर्दोष माना है। साथ ही ३८ वीं पलटन के सिपाहियों पर जो दोषारोपण किया जाता है, वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि इस पलटन के किसी अफसर पर आँच नहीं आयी।

जो हो, अधिकाँश अँगरेजों ने बहादुरशाह को ही षड्यन्त्र का नेता बताया है, और यह भी प्रतिपन्न किया है, कि ३१ वीं मई को सारे हिन्दुस्तान में एक ही बार एक समय अँगरेजों पर धावा बोल देने की तैयारी महीनों पहले से हो रही थी। परन्तु भिन्न-भिन्न लेखकों की लिखी हुई पुस्तकों को पढ़ने और विचार करने से तो यही मालूम पड़ता है कि यदि कोई ऐसा व्यापक-षड्यन्त्र होता, तो अँगरेजों को अपनी जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती और सिपाहियों ने भी जहां तहां बेढंगे तौर से युद्ध न कर योग्य सेनापतियों के अधीन ठिकाने से युद्ध किया होता। भिन्न भिन्न स्थानों के लोग भिन्न भिन्न कारणों से अँगरेजों के शत्रु बन गये थे। यदि सब की एक सांट-गांठ होती तो वे इधर उधर बिखरे हुए न रहते और एक बहुत बड़ी फौज तैयार कर एक ही जगह लड़ते और अपने बल की परीक्षा करते। उस समय सम्भव था कि वे सफल भी हो जाते; पर यहां तो वैसी कोई बात नहीं थी और न ऐसा कोई नेता था, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक के लोगों को अपने इशारेपर चला सके।

पांचवा अध्याय।

—:-:※:-:—

लार्ड केनिङ्ग की चेष्टा।

दिल्ली की इस दुर्दशा का समाचार पाते ही लार्ड केनिङ्ग इस विपत्ति की वाढ़ को रोकने के लिये मुस्तैद हुए। उन्होंने उन सव स्थानों की रक्षा का वन्दोवस्त करना चाहा, जो विद्रोहियों के अड्डे हो रहे थे। इसी अभिप्राय से उन्होंने वोर्ड-आफ़-कन्ट्रोल के सभापति महोदय के पास निम्न लिखित आशय का एक पत्र लिखा था :—

"वङ्गाल के वारकपुर से लेकर पश्चिमोत्तर प्रदेश के आगरा तक पूरा पूरा खतरा है। इन साढ़े सातसौ मिलों के दर्म्यान सिर्फ़ दानापुर में ही गोरी पलटन है। वनारस में सिर्फ़ सिखों की फौज है; इलाहावाद का भी यही हाल है। इधर इन सभी जगहों के देशी सिपाही अंगरेजों से फरण्ट हो रहे हैं। यदि इन्हें मालूम हो जायगा, कि दिल्लीपर सिपाहियों ने कव्जा कर लिया है तो ये जहां तहां सरकारी किलों और खजानोंपर छापा मारने के लिये मुस्तैद हो जायेंगे। इसी लिये मैं इस वात पर विशेष ज़ोर दे रहा हूं, कि गोरी पलटनें एक जगह इकट्ठा हो जायें और दिल्ली से वलवाई निकाल डाले जायें।"

इसी आशय से उन्होंने गोरीफौजों को जमा करना शुरू कर ...तु वे जिस धैर्य और शान्ति के साथ कार्य कर रहे थे

उससे कलकत्ते के अंगरेजों को सन्तोष नहीं होता था। वे उनकी इस धीरता को अयोग्य और कायरता समझ रहे थे। इसीलिये कलकत्ते भर के अँगरेज अपनी जान को खतरे में ही समझने लगे थे। इसी तरह के अकारण-भय और मिथ्या-अशङ्का के मारे बहुत से अँगरेज तो रात-दिन जहाजों में ही पड़े रहने लगे कितने ही किले में जा छिपे, कोई इधर उधर सुन-सान और अँधेरी जगहों में छिपे रहते, कोई इङ्गलैण्ड चले जाने के लिये जहाज में "सीट-रिजर्व" कराने लगे और कोई कोई जो बड़े बाँके बहादुर थे, वे सदा बन्दूकें और पिस्तौल पैनाये रहने लगे। परन्तु लार्ड केनिङ्ग जानते थे कि कलकत्ते वालों का यह डर व्यर्थ है, इसलिये वे दूर के उन्हीं स्थानों की रक्षा का ध्यान विशेषतया रखते थे, जहां के लोगों पर वास्तव में बड़ी विपद् थी।

मई का महीना खतम होते-न-होते कलकत्ते के युरोपियन बहुत घबरा उठे। वे लार्ड केनिंग की दिली बात न समझ कर व्यर्थ ही उनकी निन्दा करने लगे। साथ ही कलकत्ते की "बङ्गाल चेम्बर आफ कामर्स" आदि प्रधान प्रधान सभाओं की ओर से उनके पास प्रार्थनापत्र भी पहुंचने लगे। फ्रांसीसी और अमेरिकन आदि अन्य विदेशी भी इस विषय में अँगरेजों का साथ देने लगे। इन आवेदनोंमें अपनी खास स्वेच्छासेवक-सेना संगठित करने को अनुमति मांगी जाती थी, परन्तु लार्ड केनिंग ने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। इसीलिये उन्होंने इन आवेदनों का यही उत्तर दे दिया, कि आप लोग विशेष कांस्टे-

बल भले ही हो जायें, पर स्वेच्छासेवक-सैन्य का संगठन करना तो अनावश्यक है। इस जवाब से सभी अँगरेज बड़े लाट पर कुढ़ गये। परन्तु लार्ड केनिङ्ग की यह कार्रवाई भी सब के भले ही के लिये थी।

इधर यहां के हिन्दुस्तानियों में भी तरह तरह की अफवाहें उड़ रही थीं। जाति और धर्म के नाशका भय तो इन्हें पहले से डराये ही हुए था—अबकी बार बलवे के कारण जानोमाल के भी खतरे में पड़ जाने की उन्हें आशङ्का होने लगी। उनके इस भय को दूर करने के लिये लार्ड केनिङ्ग ने २० वीं मई को एक सूचना निकाली। जिसमें लिखा था,—"बाजार में इस बात की अफवाह बड़े जोरों से उड़ रही है, कि मैंने हिन्दुओं की जान मारने के लिये उन सब तालाबों में जिन में वे स्नान करते हैं, गोमांस डाल देने का हुक्म जारी किया है और लोगों को महारानी के जन्मोत्सव के दिन जिसमें बाध्य होकर अपवित्र वस्तुएँ खानी पड़ें, इस लिये तमाम वणिकों की दूकानें बन्द रखने की आज्ञा दे रखी है। बुद्धिमानों ने मुझे इन सब अफवाहों का खुले-आम खण्डन कर देने की आवश्यकता सुझायी है। अबतक ऐसा नहीं किया गया, इसीलिये इन लोगों को हथियार वगैरह पैना रखना पड़ा है। इन सब झूठी अफवाहों का असर रोकने के लिये मुझसे जहांतक बन पड़ रहा है, वहां तक युक्ति-सङ्गत उपायों से काम ले रहा हूं। मुझे आशा है कि धीरता और दृढ़ता के साथ चलने से सब के हृदय शान्त हो जावेंगे।"

लार्ड केनिङ्ग, इसी प्रकार धीरता के साथ सब

वातों का विचार कर अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे थे और अपने ही भाई वन्दों की चिल्लाहट मचाने पर भी विचलित न होकर शान्ति के साथ शान्तिस्थापन की चेष्टा कर रहे थे।

२५ वीं मई को महारानी का जन्म-दिवस पूर्ववत् धूमधाम के साथ मनाया गया। लार्ड केनिङ्ग ने इस दिन ऐसी कोई हरकत नहीं होने दी, जिससे लोगों की राजभक्ति विचलित हो, उन से कहा गया अपने शरीर-रक्षक देशी सिपाहियों के स्थान में वे गोरे सिपाहियों को रखें, पर उन्होंने इसे न माना। यह भी कहा गया कि महारानी के लिये तोपों की सलामी न दागी जाय; पर उन्होंने यह प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया। इस उपलक्ष्य में नये टोटे व्यवहार करने से सिपाही लोग इन-कार करेंगे और झूठमूठ का फिसाद उठ खड़ा होगा। इसी लिये उन्होंने एक पल्टन को पुराने टोटे ले आने के लिये वारकपुर भेज दिया। रात को गवर्नमेण्ट हाउस में जो नाच होनेवाला था, उसमें कितने लोगों ने इसी डर के मारे जाना नहीं चाहा कि कहीं वहुत से युरोपियन स्त्री-पुरुषों का जमाव देख दुश्मन उसी मकानपर हमला न कर दें। इसी समय मुसलमानों का 'ईद' नामक त्योहार भी आ पड़ा था। इसलिये अँगरेजों को डर था कि इस दिन केवल कलकत्ते के ही नहीं वल्कि और और जगहों के मुसलमान भी गवर्नमेण्ट को तंग करने की चेष्टा करेंगे ; किन्तु कलकत्ते में कोई गड़वड़ नहीं हुई।

इधर लार्ड केनिङ्ग दिल्ली के उद्धार और पश्चिमोत्तर के अन्य नगरों की रक्षा के विषय में अपने मंत्रियों से सलाह कर

रहे थे; परंतु इस समय ये दोनों कार्य एक साथ होने असम्भव थे। गोरी फौज की तादाद बहुत ही थोड़ी थी, इसलिये कौंसिल के भिन्न-भिन्न सदस्यों के भिन्न-भिन्न मत थे। इसीसे कुछ लोगोंने कुछ दिनों के लिये दिल्ली के उद्धार की बात ताक पर रखकर और २ स्थानों की रक्षा करने पर ही अधिक जोर दिया, किन्तु सुचतुर 'सरजान'-लौं ने खोये हुए नगरों को ही फिर अधिकार में लाने की सलाह दी। यह बात गवर्नर जेनरल को भी पसन्द आ गयी। उन्होंने ठीक सोच लिया कि पहले दिल्ली को ही हाथ में कर लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा न करना बड़ी भारी राजनीतिक भूल समझी जायेगी। कारण, दिल्ली पर बूढ़े बहादुरशाह की ही हुकूमत बाला हो जानेसे विद्रोहियों को सारे देश में बलवा करा देने और अँगरेजों का रहना दुश्वार कर देने का बड़ा भारी मौका मिल जायेगा। दिल्ली हाथ में आ जाने से दुश्मनों के दिल दहल जायेंगे—उनकी हिम्मत छूट जायगी और बलवे का नामोनिशान मिट जायेगा।

फिर क्या था? बड़े लाट साहब दिल्ली के उद्धार की चेष्टा करनेके लिये रोज ही प्रधान सेनापतिके पास पत्र भेजने लगे। वे इस समय घटनास्थलसे हजारों मीलकी दूरी पर थे, इसलिये ठीक-ठीक सारी व्यवस्था करना उनके लिये सम्भव नहीं थी; परन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट और पञ्जाब के कमिश्नर पर उनका बड़ा भारी विश्वास था। इसी से इन्हीं दोनों व्यक्तियों के बल भरोसे पर उन्होंने अपना काम निकालना चाहा।

समय कलकत्ते में और उसके आस-पास केवल दो पल-

टनें गोरे सिपाहियों की थीं। इनमें ५३ वीं पलटन को फटकार
के किले में रहती थी और ८४ वीं चुंचुड़े में। वन्हो ही चराया
का भार इन्हीं दोनों पर था। कलकत्ते से प्रायः यह
दूर दानापुर के सिवा आस पास के और किसी स्थान में गोरी
पल्टन नहीं थी। लार्ड केनिङ्ग ने पहले पूर्वोक्त दोनों पलटनों से ही
काम लेना चाहा। कई कारणों से राजधानी में गोरी फौज
रखना बहुत ही जरूरी था। कलकत्तेके किले में एक बड़ा भारी
अस्त्रागार था, जिसमें हर तरह के हथियार रहते थे; उससे कुछ
ही दूर काशीपुर में तोप और बन्दूक का कारखाना था; इच्छा-
पुर में बारूद बनती थी और दमदम में तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों
की शिक्षा देने के लिये एक अस्त्र-शिक्षाशाला थी, जिसमें नाना
प्रकार के अस्त्र शस्त्र सदा मौजूद रहते थे। चौरङ्गी से थोड़ी ही
दूर पर अलीपुर में कैदखाना था, जिसमें बहुत से बदमाश कैद
रहते थे। इन सब के सिवा गवर्नमेण्ट के कपड़े के गुदाम थे,
तरह-तरह की फौजी पोशाकें रहती थीं। टकसाल, खजाने और
वेङ्क में रुपयों का ढेर भरा था। अतएव शत्रु अगर हानि ही
पहुंचाना चाहे, तो कलकत्ते और उसके आस पास के स्थानों में
बहुत कुछ उपद्रव कर सकते हैं, इसलिये यहां तो हरदम गोरी
पलटन रहनी ही चाहिये थी। यही सोच कर उन्होंने कलकत्ते
में गोरे सिपाहियों को टिका रखा और अन्य स्थानों के विषय में
विचार करते हुए स्थानीय अधिकारियों के पास आवश्यक
सूचना भेजते रहे। सारे मई महीने भर उनके पास जगह जगह
से यही खबर मिलती रही, कि जहां पहले उपद्रव हो चुके हैं,

रहे थे ; परंतु इ‌ गोलमाल नहीं है। बनारस, इलाहाबाद, कानपुर थे। गोरी र आगरे से शान्ति के ही सन्देशे आते रहे। इधर कौंसिल के नरल साहब भी चुप नहीं थे—वे भीतर ही भीतर अपनी कार्रवाई भी करते रहे। उन्होंने देशी सिपाहियों और साधरण प्रजा पर रोब जमाने के लिये विलायत से थोड़ीसी फौज मँगवाली। इस फौजका सेनापति बड़ा ही दिलेर और होशियार था। इस फौज के आने से, भय से व्याकुल अँगरेजों के जी में जी आया।

कर्नल नील मदरास की युरोपियन फौज के सिपहसालार होकर कार्यक्षेत्र में अग्रसर हुए। ये २३ वीं मई को अपनी फौज की एक टुकड़ी के साथ कलकत्ते से रवाना हुए। क्रमशः उनकी बची बचायी फौज जहाजसे उतर कर उत्तर पश्चिम प्रदेश की ओर चल पड़ी। इस समय केवल कलकत्ते से रानीगंज तक ही रेल जारी हुई थी। गवर्नमेण्ट ने सिपाहियों की सुविधा के लिये बैलगाड़ियों और घोड़े गाड़ियों का प्रबन्ध कर दिया था। इसके सिवा स्टीमर द्वारा भी फौजें रवाना हुई थीं। कर्नल नील अपनी फौज के साथ हबड़े के स्टेशन पर पहुंचे। कई कारणों से उनके बहुत से सिपाही गाड़ी छूटने के समय के पहले स्टेशन पर न पहुंच सके ; इसलिये स्टेशनमास्टर ने बिगड़ कर कहा, कि पलटन के लिये कितनी देर तक गाड़ी रुकी रहेगी ? अब तो गाड़ी जरूर ही खुल जायगी। इस पर सेनापति ने आपत्ति उपस्थित की और बहुत तरह से स्टेशन-‌र को समझाना शुरू किया। पर वह क्यों मानने लगे?

१४२
लकत्ते
ती रक्षा
०० मील

शन के ही एक अधिकारी ने कर्नल को फटकार र कहा,—"आप फौज के सिपाहियों को ही चराया े के कामों में क्यों टांग अड़ाते हैं?" यह सुन, ो वड़ा गुस्सा चढ़ आया और उन्होंने रेलवे वालों को नीच, श्वासघातक और अँगरेजी सरकार का शत्रु वत-लाते हुए अपनी पलटन के सिपाहियों को हुक्म दिया, कि गाड़ी का रास्ता रोक दो—जव तक हमारे सव सिपाही नहीं आ जाते, तव तक हरगिज गाड़ी न जाने पायेगी।

तदनुसार गाड़ी रोक दी और नियमित समय से दस-पन्द्रह मिनट वाद जव सव सिपाही उस पर सवार हो गये, तभी खुली। कर्नल की इस दृढ़ताकी वात जिसने सुनी, उसीने उनकी तारीफ की और सव किसी को भरोसा हो गया, कि इस सेनापति के द्वारा वहुत कुछ काम वनेगा।

मई का महीना पूरा होते-न-होते पश्चिमोत्तर प्रान्तमें भयङ्कर विद्रोहाग्नि सुलग उठी। जिसे देखो; वही अँगरेजों का जड़-मूल से सत्यानाश करनेको उतारू दिखाई देता। मेरठ में अँग-रेजों की पूरी दुर्गति हो चुकी थी, दिल्ली से उनका वोरिया-वधना उठ ही गया था और मुगल वादशाह का रोव एकवार फिर सर्वत्र छा गया था; अवके और-और स्थानोंमें भी अँगरेजों की जड़ हिलती हुई मालूम पड़ने लगी।

तव लाचार होकर गवर्नमेण्ट ने अपराधियों को दवाने के लिये दमन पर कमर कसी। ३० वीं मई को गवर्नर-जेनरल की मन्त्रिसभा में इस आशय का एक क़ानून पेश हुआ, कि जहाँ

कहीं के सिपाही बलवा करेंगे, वहाँ के सर्व साधारण के जानो-माल की रक्षा का भार, शासन-विभाग की किसी श्रेणी, किसी वयस और किसी तरह के अख्तियार वाले कर्मचारी के हाथ में दे दिया जायेगा। इसी आईन के अनुसार गवर्नमेण्टने सर्वसाधारण में इस बात की घोषणा की, कि जो कोई मनुष्य महारानी या गवर्नमेण्ट के विरुद्ध युद्ध करेगा या युद्ध के लिये चेष्टा करेगा अथवा किसी तरह की साजिश में शामिल होगा, उसे फाँसी, कालेपानी या क़ैद की सजा दी जायेगी। जिस किसी विभाग में किसी तरह का दङ्गा-फ़िसाद होगा, वहीं यह क़ानून लागू होगा। जिन लोगों पर सरकार के साथ शत्रुता करने, नर-हत्या करने अथवा चोरी-डकैती अथवा अन्यान्य गुरु-तर अपराध करनेका अभियोग उपस्थित होगा, उनका विचार गवर्नमेण्ट कमीशन द्वारा करायेगी। ऐसी शक्ति पाये हुए एक या अनेक कमिश्नरों को सभी स्थानों में विचार करने का अधिकार होगा। वकील या असेसर के न रहने पर भी ये लोग उक्त प्रकार के अपराधियों को फाँसी, कालेपानी या क़ैद की सज़ा दे सकेंगे। इनका ही हुक्म सब पर वाला होगा—इस पर किसी ऊँची अदालत में अपील नहीं की जा सकेगी।

गवर्नर-जेनरल के सम्मति दे देने पर यह क़ानून ८ वीं जून को पास हो गया। इसी के बल पर हरएक अँगरेज़ को बेहद अख्तियारात दे दिये गये; किन्तु हां, विचार विभाग के कर्म-चारियों को अलबत्ते असाधारण अधिकार प्राप्त हुए। मन्त्रि-। के साथ परामर्श करके गवर्नर जेनरल ने यही निश्चय

किया, कि पुराने या किसी दर्जे के कर्मचारी, बङ्गाल प्रेसीडेन्सी की किसी छावनी में पाँच युरोपियन और देशी सज्जनों को लेकर फौजी अदालत कायम कर सकते हैं; जिसमें इन सब अपराधियों के मामलों पर विचार करके फैसले सुनाये जायेंगे।
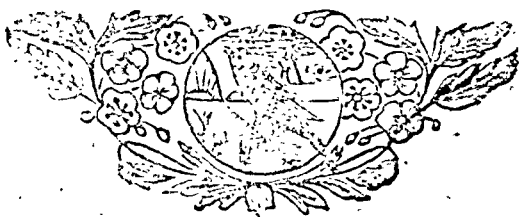
पलटन करेगी और गोविन्दगढ़ की रक्षा का भार ८१ वीं पलटन पर रहेगा। जालन्धर की ८ वीं पलटन फिल्लौर के किले की रक्षा करेगी और वहां की तोपें सब बराबर चढ़ी रहेंगी। नवसारी की गुर्खा पलटन और ९ वीं घुड़सवार पलटन तोपखाने के साथ साथ अम्बाले रवाना कर दी जायेगी।"

इसके बाद प्रधान सेनापति साहब ता० १४ वीं मई को अम्बाले के लिये रवाना हो गये और दूसरे दिन सवेरे ही वहां पहुंच गये। यहां आते ही आप के पास तरह-तरह की भयङ्कर खबरें पहुँचने लगीं। वे घबरा उठे। उन्हें आशंका होने लगी कि उन्हें इस भयङ्कर उपद्रव को दबाने में कहीं से किसी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त होगी। पञ्जाब के समस्त सैनिक उन्हें बलवाई ही प्रतीत होते थे और उनके साथ काम करनेवाले बड़े-बड़े सरकारी अफसर भी उनकी हरकतों से असन्तुष्ट थे, अतएव सम्भव था, कि वे भी उनकी मदद के लिये तैयार न हों। पञ्जाब के सैनिकों का तो उन्हें जरा भी भरोसा नहीं था। एक तो उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं थी दूसरे यहां आने से सालभरके भीतर ही उन्हें इतनी बड़ी भयङ्कर स्थिति का सामना करना पड़ा। इसलिये वे घबरा उठे। इसी समय पञ्जाब के प्रधान-कमिश्नर सर जानलारेन्स ने (जो पीछे लार्ड लारेन्स कहलाये) उन्हें अम्बाले के सिपाहियों के हथियार छीन लेनेकी सलाह दी। पर उन्हें यह राय नहीं पसन्द आयी; क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं अम्बाले के फौजी अफसर इस कार्रवाई का विरोध न [illegible] कारण, इन अफसरों ने सिपाहियों से इस बात की

प्रतिज्ञा की थी कि वे उनके हथियार न छीनने देंगे। अब तो प्रधान सेनापति बड़े फेर में पड़े। उनसे इन सिपाहियों को साथ लेकर दिल्ली की यात्रा करते भी न बनी और इन्हें हथियारबन्द की हालत में छोड़ जाते भी न बना। लाचार, पञ्जाब के फौजी-अफसरों की बात मान कर उन्होंने अम्बाले के देशी सिपाहियों के हथियार नहीं छिनवाये और उन्हें उनकी भलमनसाहत और ईमानदारी पर छोड़ दिया। पर सिपाहियोंने प्रधान सेनापति की इस नरमी का भी लिहाज नहीं किया और कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने सरकार के दिये हुए हथियारों को सरकार के अँगरेज कर्मचारियों के विरुद्ध उठा ही लिया। अब तो प्रधान सेनापति मि० आनसन को अपनी गलती साफ मालूम पड़ने लगी और वे बड़े चकराये। इसी समय सिर्फ दो अँगरेज राजकर्मचारी उनकी मदद करने के लिये आगे बढ़े। इनमें एक तो अम्बाले के डिपटी कमिश्नर मि० फारसैट थे और दूसरे सतलज के तीरवर्ती प्रदेशों के कमिश्नर मि० बार्नसर्नेस। ये लोग बड़ी फुर्ती और मुस्तैदी के साथ सिपाहियों के झगड़े को दबाने के लिये तैयार हो गये। दिल्ली की गड़बड़ का समाचार पाते ही फारसैट साहब ने मि० बार्नेस को आत्मरक्षा का पूरा पूरा बन्दोबस्त करने के लिये पत्र लिखा था। उस समय बार्नेस साहब कसौली नामक स्थान में थे। उन्होंने सब से पहले अम्बाले की रक्षा के लिये सिक्ख पुलिस—की एक पलटन तैयार की। इसके बाद सतलजके तीरवर्ती प्रदेशोंकी रक्षाका बन्दोबस्त करना शुरू कर दिया। सतलज से यमुना तक फैले हुए लम्बे-चौड़े

प्रदेश में बहुत से सिक्ख सरदारों को जमींदारी थी। वे सब के सब अँगरेजों की मदद करने के लिये तैयार हो गये। सिपाही-विद्रोह के इतिहास में यह बात स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई है, कि जहां कहीं सरकार की दूषणीय नीति के कारण सिपाहियों में उत्तेजना फैली और वे उसका बदला लेने के लिये हथियार लेकर उठ खड़े हुए, वहीं के लोगों ने उनका विरोध किया और अँगरेजों की मदद की। जिस समय इन विद्रोहियों ने अँगरेजी सरकार को पूरी तरह परेशान कर डाला था, उस समय इनके देशी भाइयों ने ही सरकार को मदद पहुंचायी। जब विद्रोही-सिपाही पूरे पागल बन गये थे और इसी पागलपन के कारण अँगरेजों के स्त्री-बच्चों के खून से भी अपनी तलवार को रँगते हुए नहीं शर्माते थे, तब यहीं के लोगों ने अपनी जान आफत में डालकर उनकी रक्षा की थी। इस समय क्या भारत के राजे-रजवाड़े तथा जमींदारों ने, क्या वीर पुरुषों ने, क्या शिक्षितों ने, क्या अशिक्षितोंने—सभी ने अँगरेजों की तन-मन-धन से सहायता की थी। धनी-दरिद्र सभी इस विद्रोह-दमन में अँगरेजों का साथ देने के लिये तैयार हो गये थे। सिपाहियों ने जिस समय अङ्गरेजी सलतनत को नेस्तो-नाबूद करने का बीड़ा उठा लिया था और मेरठ में बहुतों को मार कर दिल्ली को अपने पैरों के नीचे कर लिया था, उस समय हिन्दुस्तानियों की ही दया और परोपकारिता के कारण उन अङ्गरेजों ने इस महाविपद्से छुटकारा पाया था। इस बातसे कोई भी इतिहास-लेखक इनकार नहीं कर सका और न कर सकता है।

जार्ज वार्नेस जिस समय अपने शासनाधीन प्रदेशों की रक्षा करने के लिये तैयार हुए, उस समय उन्होंने पटियाला और झिन्द के राजाओं से सहायता मांगी। पटियालाके राजा ने उनके हुक्म की झटपट तामील की और एक पलटन थानेश्वर को रवाना कर दी। यह पलटन करनाल के रास्ते में अम्बाले से आनेवाले सिपाहियों की राह रोके पड़ी रही। इधर झिन्द के राजा साहब ने तो दिल्ली का समाचार पाते ही आप से आप पूछा था कि इस समय हमारे लिये क्या आज्ञा होती है? इतनेमें ही वार्नेस साहब का पैगाम आ पहुंचा। फिर क्या था? वे झट करनाल की रक्षा के लिये तैयार हो गये। इधर करनाल के नवाब साहब भी निश्चिन्त नहीं थे। वे भी अङ्गरेजों की भलाई के लिये रुपया पैसा, फौज सिपाही सब कुछ देने के लिये तैयार हो गये। इसी तरह अङ्गरेजों को जगह-जगह से मुँह-माँगी और विना माँगी सहायता प्राप्त होने लगी।

१३ वीं मई को वार्नेस साहब अम्बाले में आये; वहां दिल्ली और मेरठ की घटनाओं के कारण लोगों में जो उत्तेजना फैली हुई थी, वह इनके आने से दब गयी। उन्होंने यमुना के पुल पहरे का प्रबन्ध किया और स्थानीय राजे-रजवाड़ों की से को भेज कर उस विभाग की शान्ति रक्षाका भी पूरा-पूरा बस्त कर दिया। इसके बाद वार्नेस और उनके सहयोगी सेट साहब प्रधान सेनापति की सेना के लिये सवारियों रसद वगैरह का वन्दोबस्त करने लगे, इस समय क्या कोठीवाल, क्या आढ़तिये, क्या ठेकेदार, क्या कुली-मजदूर—सभी सरकारी

काम करने से जी चुरा रहे थे ; क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास हो गया था, कि अब इस देश से कम्पनी की हुकूमत उठने में देर नहीं है ; पर बार्नेस और फारसेट साहबों के सुप्रबन्ध से प्रधान सेनापति की सेना के लिये सब ज़रूरी सामान शीघ्र ही इकट्ठे कर दिये गये।

इतने में ख़बर आयी, कि ख़सूरी की गुर्खा-पल्टन भी बाग़ी हो गयी है और वह प्रधान सेनापति के सब आवश्यक सामानों को लूट कर शिमले पर चढ़ाई करने की धुन में है। यह ख़बर पाते ही शिमले और उसके आसपास के अँगरेज़ों में घोर आतङ्क फैल गया। उन्होंने यह जानने की तो कोशिश नहीं की, कि गुर्खों में क्यों असन्तोष फैला है, उलटे यह समझ कर, कि ये लोग भी मेरठ वालों की ही तरह अँगरेज़ों के स्त्री-बच्चों की जान ले लेंगे, वे लोग जिधर सींग समाया, उधर ही भागने लगे। असल बात यह थी, कि गुर्खों की तनख़्वाह बाक़ी पड़ गयी थी, इधर उन्हें फिल्लौर जाने का हुक्म दे दिया गया, इसीलिये उन्होंने जाने से इनकार कर दिया ; क्योंकि यदि वे चढ़ाई पर चले जाते, तो ...र इनके बालबच्चों के पालन-पोषण की कौन व्यवस्था करता? ...ी नौकर चपरासियों की हिफ़ाज़त में उनकी स्त्री-बच्चों को ...ा जो बात सरकार की ओरसे कही गयी, उससे भी उनके बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। इसी क्रोध के कारण उन्होंने सेनापति मेजर बैगट की बात को नहीं माना और जाने से साफ़ इनकार कर दिया। फिर क्या था चारों ओर यह ख़बर ...ी, कि ये लोग भी बाग़ी हो गये। सच पूछिये, तो

उस समय अँगरेजों की मति मारीसी गयी थी, इसीलिये वे केवल चारों ओर भीषणता की मूर्त्ति ही देख रहे थे और किसी बात की तह तक पहुंचने की कोशिस नहीं करते थे। इसी से जब शिमले में यह खबर पहुंची, कि गुर्खे शिमले पर चढ़ाई करने जा रहे हैं और 'जुतोग' नामक स्थानमें कितनेही अँगरेज मारे भी गये हैं, तब तो शिमले में बड़ा भारी हड़कम्प पैदा हो गया। सब लोग जान ले-लेकर भागने लगे। शिमले के गिर्जाघर के ऊँचे शिखर पर चढ़ कर लोग दूरबीन से गुर्खों के आनेकी राह देखने लगे। बालक वृद्ध, युवक, युवती—सभी लोग अपने-अपने प्राण बचाने के लिए बेंक में आ जमा हुए। बैङ्क के पास दो तोपें रख दी गयीं। इस तरह वहां प्रायः ४०० मनुष्य लुके-छिपे हुए थे। इस समय शिमले में गोरी पलटन नहीं थी। इसलिये अँगरेजों के हृदय दूने भय से काँप रहे थे। पर अन्त को यह आशङ्का झूठी ही निकली। गुर्खों के असन्तोष के दूर होते ही वे फिर नमकहलाली के साथ नौकरी बजाने लगे। जो डरके मारे बेङ्क में जा छिपे थे, वे झेंपते-शर्माते हुए अपने-अपने घर चले आये।

इधर कलकत्ते से लार्ड केनिङ्ग और पञ्जाबके सरजान लारेन्स प्रधान सेनापति को शीघ्र ही दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिये बार-बार उकसाने लगे। इन लोगों के जी में यह बातें बैठ गई थीं, कि अगर अधिक दिन तक दिल्ली पर सिपाहियों और मुगल-सम्राट् का कब्जा बना रह गया, तो लोगों के जी से अँगरेजोंकी धाक निकल जायेगी और सब लोग यही समझ जायेंगे, कि अंग-

रेजों की सत्ता सदा के लिये मिट गयी। इसका नतीजा यही होगा, कि लोग सिपाहियों की ओर भी पीठ ठोकने लगेंगे। अन्त में भारत के गवर्नर जेनरल की आज्ञा लेकर २५ वीं मई को प्रधान सेनापति ने दिल्ली की यात्रा कर ही दी।

रास्ते में पटियाला, झिन्द, नाभा और करनाल के अधिपतियों की दी हुई सेनाएँ पहरे पर तैनात थीं। इनके रहने से अँगरेजों को संवाद पाने और भेजनेमें बड़ी सुविधा होती थी। इन रियासतों की यह सहायता उस समय अँगरेजोंके लिये संजीवनी बूटी ही सिद्ध हुई थी!

जो हो, प्रधान सेनापति बड़े ही बुरे मुहूर्तमें अम्वाले से दिल्ली की ओर रवाना हुए थे। करनाल पहुंचते-न-पहुंचते ही उनकी हैजे से आकस्मिक मृत्यु हो गयी। इस बार जेनरल सर हेनरी बोनार्ड पर ही उनके कर्त्तव्यका भार सौंपा गया। और वे झटपट दिल्ली की ओर चल पड़े। रास्ते में इनके अधीन सैनिकों ने रास्ते के आस पास वाले गावों के रहने वालों पर बड़े-बड़े अत्याचार किये और कितने ही निरपराध मनुष्योंकी हत्या भी कर डाली; क्योंकि उस समय उनके हृदय में प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही थी और वे सभी हिन्दुस्तानियों को अँगरेजों का प्रबल शत्रु समझ रहे थे। बहुतेरे सहृदय अँगरेज लेखकों ने भी इनके इन कार्यों की घोर निन्दा की है।

१० वीं मई को मेरठ में जो काण्ड हुआ था, उसका हाल पहले ही लिख आये हैं। सिपाहियों के उपद्रव से जा

वचाने के लिये सरकारी कर्मचारियों ने वहां के बचे बचाये युरोपियनों को मेरठ के फौजी स्कूल में जमा कर, कलेक्टरी के खजानेसे रुपया-पैसा भी वहां मँगवा कर रख लिया था। कारण उस समय मेरठ में अँगरेजों के जानोमालकी खैर नहीं थी। बहुतेरे अँगरेज मारे भी गये थे। कितने ही रास्ते में लुट गये, कितने ही कुट-पिट गये, सरकारी डाक लूटली गयी, कितनों के घर जला दिये गये। इन सबका बदला अँगरेजों ने निरपराध लोगों पर फौजी कानून जारी करके वसूल कर लिया। यदि सिपाहियों के विद्रोह के कारण अँगरेजों की जान खतरे में थी, तो इस फौजी कानून के कारण सर्वसाधारण भारतीयों के प्राण भी विपत्ति से शून्य नहीं थे। वे चाहे जिस हिन्दुस्तानी को केवल सन्देह में पकड़ कर फांसी पर लटका दिया करते थे। इस कानून ने चारों ओर त्राहि-त्राहि की पुकार मचवा दी। कितने भारतीय इस प्रकार अँगरेजों की प्रतिहिंसा के नाम बने, इसका कोई ठिकाना नहीं। रुड़की

मेरठ से ६० मील दूर गङ्गाके किनारे पर रुड़की नामक [illegible] बसा हुआ है। यहां एक बहुत बड़ा इञ्जिनियरिङ्ग कालेज है इसका सम्बन्ध सामरिक विभाग से भी था। उस साल मई महीने के आरम्भ में यहां पूरी शान्ति थी ; पर जिस समय मेरठ की दुर्घटना का समाचार यहां पहुंचा, उस समय वह शान्ति नष्ट हो गयी। मेरठ के सेनापति की आज्ञानुसार यहां के सामरिक इञ्जिनियरिङ्ग विभाग के अध्यक्ष मि० फ्रेजर ने यहाँ से ७१२ सैनिक इञ्जिनियरों को मेरठ भेजने की व्यवस्था की। इतने में

हुक्म आया, कि रुड़की की रक्षा के लिये कुछ थोड़े से सिपाही वहीं रहने दिये जायँ और बाकी मेरठ भेज दिये जायें। तदनुसार केवल ५०० मनुष्यों को साथ लेकर मि० फ्रेजर मेरठ की ओर चल पड़े।

इसके बाद ही दिल्लीमें युरोपियनों की हत्या होने का समाचार रुड़की में आ पहुंचा। इञ्जिनियरिङ्ग-कालेज के अध्यक्ष मि० बेयर्डस्मिथ अपने कल-कारखानों की रक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध करने लगे। उन्होंने रुड़की में रहने वाली सभी अँगरेज-महिलाओं और बालक-बालिकाओं को वहां बुलवा लिया। बेयर्ड साहब अपने अधीनस्थ इञ्जिनियरों में से किसी-किसी पर बेतरह सन्देह करते थे, तोभी चुपचाप पड़े रहे और उन्हें किसी तरहका उपद्रव करने का अवसर न मिले, इसकी सदैव चेष्टा करते रहे।

इधर फ्रेजर साहब की अधीनता में जो लोग मेरठ की ओर जा रहे थे, उन्होंने पहले तो किसी तरह का विरोध-भाव अप्रकट किया; पर मेरठ पहुंचने पर ये भी बदल गये। सेना-[illegible] ने सुरक्षित समझ कर गोला-बारूद एक सुदृढ़ गृह में रखने की व्यवस्था की। इस कार्रवाई से सिपाहियों के मन में बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा, कि यह काम हमारे ऊपर अविश्वास करके किया जाता है। इसीलिये उनमें से एकने फ्रेजर साहब के गोली मार दी और बहुतेरे इधर-उधर भाग गये। केवल ५० आदमी गिरफ्तार हुए, जिन्हें क्रोध से पागल बने हुए अँगरेज सिपाहियों ने बड़ी ही निर्दयता के साथ मार डाला!

२७ वीं मई को ब्रिगेडियर जेनरल मि० विलसन के अधीन

एक पलटन मेरठ से आकर सर हेनरी बर्नार्ड की सेना की सहायता के लिये आ पहुंची। जिस समय विलसन की यह सेना 'हिन्दन' नदी रेना के कि गाजीउद्दीन नामक नगर में थी, उसी समय दिल्ली के विजयी सिपाहियों ने उसे हराकर सर हेनरी-बोर्नार्ड से न मिलने देने की चेष्टा की। दोनों दलों का सामना हुआ—घोर युद्ध होने लगा। सिपाहियों ने वीरता और आत्म-बलिदान के अद्भुत आदर्श दिखलाये और अँगरेजों को बहुत हानि भी पहुंचायी ; पर अन्त में उन्हें हार कर भागना पड़ा। इस युद्ध में सिपाहियों ने जो वीरता, साहसिकता और तेजस्विता दिखलायी, वह यदि युरोप के किसी देशमें दिखलायी गयी होती, तो इतिहास में चिरस्मरणीय होती ; पर इस अभागे देश में किसी अच्छी चीज का मोल नहीं है। इसीलिये अपनी और अपने देशकी स्वतन्त्रता के लिये जान होमवाले सच्चे वीरोंकी तरह युद्ध करने वाले इन सिपाही-वीरों का किसी इतिहास में नाम तक नहीं पाया जाता। हां, कोई-कोई इतिहास-लेखक इन वीरों को अच्छे शब्दों में याद करते हुए सङ्कोच नहीं करते। (The story of Indian mutiny) नामक ग्रन्थमें लेखक मिस्टर हेनरी-गिलबर्ट अपनी पुस्तक में इस युद्ध के सम्बन्ध में लिखते हुए कहते हैं,—

"The battle was sternly fought by the mutineers, who displayed the greatest courage, worked their guns with precision, and, being attacked in force, fought bravely beside the cannon, asking for no quarter."

अर्थात्—"बलवाइयों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और ऊँचे दर्जे का साहस दिखलाते हुए बड़ी बुद्धिमानी से अपनी तोपोंका सञ्चालन किया। जिस समय उन पर बड़े जोर का आक्रमण होता, उस समय भी वे छिपने के लिये—जान बचाने के लिये—आतुर न होते और अपनी तोप के पास खड़े-खड़े सच्चे वीरों की भांति युद्ध करते रहते थे।"

सच पूछिये, तो जातीय-जीवन स्वाधीनता के भावों से अनुप्राणित होकर वीर पुरुष किस प्रकार अपने साहस का प्रकृष्ट परिचय प्रदान करते तथा हँसते-हँसते मौत को गले लगा लेते हैं, यह बात इन सिपाहियों के साहस, वीरत्व और तत्परता को देख कर विदित हो जाती है।

अस्तु ; पहली लड़ाई में हार कर सिपाही दिल्ली चले आये और फिर अँगरेज़ों से लोहा बजाने की तैयारी करने लगे। इन्होंने फिर बड़ी तैयारी के साथ हिन्दन के तीर पर आकर शत्रुओं पर गोले बरसाने शुरू किये। दो घण्टों तक दोनों ओर से गोले छूटते रहे। धूप के मारे अँगरेज सैनिकों का बुरा हाल हो गया। परन्तु इतने पर भी साहसी अँगरेज़ों ने पीछे पैर नहीं दिया और बराबर आगे बढ़ते चले गये। यह देख, सिपाही लोग फिर क्रमशः दिल्ली लौट आये।

दिल्ली के उद्धार के लिये अम्बाले से जो सेना चली आ रही थी, उसकी सहायता के लिये केवल मेरठ से ही कुमुक नहीं आ रही थी—५०० गुर्खे बुलन्दशहर से भी आ रहे थे। पहले [illegible] ने उन्हें भी अपना शत्रु ही समझा था ; पर पीछे

जब वे पास आ गये और उन्हें असल हाल मालूम हुआ, तब बड़े ही खुश हुए।

५ वीं जून को बर्नार्ड साहब की फ़ौज दिल्ली से पाँच मील दूर अलीपुर नामक स्थान में आ पहुँची। वहां ठहर कर वह मेरठ की कुमुक की राह देखने लगी। छठी जून को विलसन साहब की सेना भी यमुना पार कर चली आयी और बड़ी-बड़ी तोपें दिल्ली में उतर पड़ीं।

७ वीं जून को मेरठ की सेना ने अलीपुर की यात्रा की और दूसरे दिन एक बजे दिल्ली की ओर अग्रसर होते हुए नज़र आये। जासूसों ने आकर ख़बर दी, कि दिल्ली के बलवाई-सिपाही पूरी तैयारी के साथ नगर की राह रोके खड़े हैं। यह सुन, अँगरेज और भी उत्साह के साथ अग्रसर होने लगे।

उस समय सिपाहियोंका अड्डा दिल्ली से ६ मील दूर 'बादली-की सराय' नामक स्थान में था। वहाँ पर बहुत से पुराने खण्डहर और बागीचे थे, जिनके चारों ओर चहारदीवारी खिंची हुई थी। मुगलों के राज के जमाने में यहाँ दरबार के कितने ही वज़ीर और उमरा रहा करते थे। सेनापति बर्नार्ड उसी स्थान को लक्ष्य मानकर अग्रसर होने लगे। ८वीं जून को सवेरे से ही सिपाहियों के गोले उनपर बरसने लगे। अँगरेजी सेनाओं ने अपनेको चार दलोंमें विभक्त कर चारों तरफसे सिपाहियों को घेर लिया। परन्तु इस प्रकार चारों ओर से घिर जाने पर भी उन स्वाधीनता के यज्ञ के होताओं ने अपना साहस और वीरत्व हाथ से नहीं जाने दिया। अँगरेजों ने जब अपना

अद्भुत वीरत्व और पराक्रम दिखलाना आरम्भ किया, तब भी ये स्वाधीनता के पुजारी पीछे न हटे। जिस व्रत को हृदय में धारण कर वे इस युद्ध-यज्ञ में अपने प्राणों को आहुति देने के लिये अग्रसर हुए थे, उस व्रत को वे प्राणों के रहते हुए न छोड़ सके। उन्होंने अपनी जाति के वीरत्व का परिचय देते हुए, युद्धाग्नि में ही मर मिटने का संकल्प कर लिया। गोले आ आ कर उनका संहार करने लगे, अंगरेजों की सङ्गीनें उनके कलेजों में चुभने लगीं; पर वे वीरता के पुतले अपनी तोपों को छोड़ कर न हटे।

अन्तमें उनका दल तितर-बितर होने लगा और भाग चला। इस युद्ध में गुर्खों ने अङ्गरेजों की बड़ी मदद की। शायद वे न होते, तो अङ्गरेजों को इतनी जल्दी विजय मिलनी मुश्किल थी। गुर्खों के अतिरिक्त मेरठ की देशी सेना झिन्द के राजा की सेना तथा जांफिशांखां नामक एक अफगान सरदार की घुड़सवार सेना ने भी इस लड़ाई में अङ्गरेजों को अच्छी सहायता पहुँचायी।—सच पूछिये, तो आरम्भ से ही सब लड़ाइयों में अँगरेज हिन्दुस्तानी सेनाके ही बलपर विजयी होते चले आये हैं। सबसे पहले लार्ड क्लाइव ने जब अभागे सिराजुद्दौला को मिट्टी में मिलाया था, तब उन्होंने भी हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ही लेकर अपना काम बनाया था। अबकी बार जब अङ्गरेजी सरकार के वेतन-भोगी सिपाही विद्रोही हो गये, तब भी उन्हें हिन्दुस्तानियों की ही मदद से उनका दमन करना पड़ा। यदि इस लोग इस सङ्कट के समय अपने स्वजातियों, स्वधर्म्मियों

और स्वदेश-वासियोंके विरुद्ध हथियार न उठाते, तो अँगरेजों के लिये इस विपद् से छुटकारा पाना मुश्किल था!

वर्नार्ड साहब विजयी हुए। उन्होंने दिल्ली के पास ही पड़ाव डाल दिया; पर सिपाही उनके आगे सिर झुकाने नहीं आये। वे मौके की राह देखते हुए चुपचाप पड़े रहे।

टनकी छावनी, बड़े-बड़े बाग-बगीचे आदि यहीं पर है। उस समय यहांकी छावनीमें केवल ३ दल देशी पैदल सैनिक और कितने ही अँगरेज तोपची थे। सब मिलाकर कोई २,००० पैदल सैनिक और ३० अँगरेज तोपची थे। इस सारी सेनाके अध्यक्ष जार्ज पानसनवी थे। उस समय हेनरी टुकर बनारस डिवीजन के कमिश्नर, फ्रेडरिक गबिन्स जज तथा लिएड साहब मजिस्ट्रेट थे। इन लोगोंने मेरठ और दिल्लीकी घटनाओंका समाचार सुन, अपने यहां शान्ति बनाये रखनेके लिये बड़ी चेष्टा की; पर इनकी कोई कला काम न आयी—जो हाल मेरठ और दिल्लीका हुआ, वही यहांका भी देखनेमें आया।

जून महीनेके आरम्भमें ही सिपाहियोंके कितने ही सूने मकानों में आग लग गयी। इसके बाद काशी से ६० मील दूर आजमगढ़ नामक स्थान से खबर आयी, कि यहांकी १७ नं० पलटन के सिपाही बलवाई हो गये हैं। इस सेनाके अध्यक्ष मेजर बरोस नामक एक फौजी अफ़सर थे। वे बेचारे बड़े सीधे सादे आदमी थे, इसलिये सिपाहियों को काबूमें न कर सके। टोटेवाली बात से तो उत्तेजना फैली ही हुई थी, अबके भयानक अर्थलोभ भी उनके सिर पर सवार हो गया। १७ नं० पलटन के कुछ पैदल सिपाहियों और १३ नं० पलटन के चन्द घुड़सवारों के साथ ५,००,०००) पांच लाख रुपये गोरखपुर से आ रहे थे। इनके अधिनायक लेफ्टिनेन्ट पालिशर थे। इन रुपयों के साथ आजमगढ़ के दो लाख और रुपये मिलाकर, सारी रकम बनारस पहुंचा देने की बात थी। एकबारगी सात लाख रुपयों का

लोभ सिपाही न सम्हाल सके, वे आजमगढ़ से रुपये ले जाने में आनाकानी करने लगे। पीछे ३ री जून को वे लोग सातों लाख रुपये लिये हुए आजमगढ़ से चल पड़े। पर स्थानीय अफसरों के मन में सन्देह बना ही रहा। एक दिन अफ़सर लोग अपने अपने डेरों में बैठे हुए भोजन कर रहे थे, इसी समय परेड के मैदान से बन्दूक की आवाज सुनाई दी। बस, सबके कान खड़े हो गये। लोग समझ गये, कि यहां के सिपाही भी बलवाई हो गये। युरोपियनों में घोर आतङ्क छा गया। मेमें और गैर पलटनियें अँगरेज दौड़े हुए कचहरी की तरफ चले गये। जिला-मजिस्ट्रेट और उनके सहयोगियों ने कचहरी की पूरी-पूरी रक्षा कर रखी थी। अँगरेज लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ यहीं आ पहुंचे। इधर सिपाहियों ने अपने क्वार्टर-मास्टर और क्वार्टर-मास्टर सर्जन की हत्या कर डाली। हाँ, और किसी अफसर को उन्होंने हाथ नहीं लगाया। इसके बाद वे उपर्युक्त सात लाख रुपयों को लूट लेने के लिये दौड़े। सेनापति पालीशर उस धन की रक्षा न कर सके—सारी जमा विद्रोहियों के हाथ लग गयी। इतने पर भी विद्रोहियों ने अपने अफसरों की कुछ क्षति नहीं की, बल्कि उन्हें सही-सलामत गाजीपुर तक पहुंचा दिया। जो लोग उन्हें मारनेमें भी सङ्कोच नहीं करते, उनको भी उन्होंने उस सङ्कट में पतित देख कर दया से प्रेरित हो छोड़ दिया! इसके बाद वे सब रुपये लिये हुए आजमगढ़ लौट आये। यहां आकर उन्होंने देखा, कि यहां तो कोई युरोपियन नहीं है—क्या कचहरी, छावनी, सभी जगहें अँगरेजों से सूनी पड़ी हैं। यह देख,

वे विजय से उन्मत्त बने, खूब शोर गुल मचाते हुए, फ़ैज़ाबादकी ओर चल पड़े।

आजमगढ़की इस घटनाका हाल काशीवालों ने भी सुना। वनारस के हाकिमों ने शहर की रक्षा का प्रवन्ध करना आरम्भ किया। इधर उनकी सहायता के लिये सेनापति नीलसाहव अपने सिपाहियों के साथ चले आ रहे थे। वे रानीगंज तक रेल से आये, इसके वाद घोड़ों की डाकगाड़ी पर सवार हो, काशी तक चले आये। नील साहव और उनके मदरासी सिपाहियों के अतिरिक्त दानापुर से कुछ पैदल सिपाही भी आये। इस प्रकार जव सहायता करने के लिये कितने ही सैनिक और सैनिक अफसर आ पहुंचे, तव हाकिमों ने सोचा, कि कल सवेरे सिपाहियों को परेड के मैदान में ले जाकर वहीं उनसे हथियार रख देने के लिये कहा जाय! पर वहुतोंको इतनी देर भी खलती थी, इसलिये उन लोगों की राय हुई, कि अगर सैनिकों के हथियार उतरवाने ही हैं, तो अभी उतरवा लिये जांये। पानसनवी साहव वहां के सव से वड़े फौजी अफसर थे। इसलिये यह आज्ञा यदि कोई दे सकता था, तो वही दे सकते थे। इतने में सिक्ख सिपाहियों के अफसर गार्डन साहव ने उन्हें खवर दी; कि शहर के वदमाशों के साथ, सिपाहियों की छिपे-छिपे खूव वातें हो रहीं हैं। यह सुन कर वे लोग जज और कमिश्नर से इस वारे में सलाह लेने लगे। थोड़ी ही देर वाद वहाँ कर्नल नील साहव भी आ पहुंचे। अन्त में यही वात तै पायी, कि आजही शामको ५ वजे सव सिपाहियों को परेडके मैदानमें आनेका हुक्म दिया जाये।

इसके बाद पानसनवी साहब गार्डन साहब के साथ अपने डेरे पर आये। वहां उनकी ३७वीं पलटन के अध्यक्ष मेजर बारेट के साथ मुलाकात हुई। मेजर बारेट सिपाहियोंके बड़े अनुरागी थे। उनका सिपाहियों की प्रभुभक्ति पर अटल विश्वास था। उन्होंने उनके हथियार छिनवा लेने के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। पर पानसनवी साहब ने उनकी एक न सुनी। लाचार, उन्होंने ५ बजे सबको परेड के मैदान में हाज़िर होनेका हुक्म दिया। कुछ ही देर बाद प्रधान सेनापति का घोड़ा आ-पहुंचा। पानसनवी और गार्डन दोनों ही जने घोड़ों पर सवार हो परेड़ के मैदान की ओर चल पड़े। पानसनवी साहब इधर बहुत दिनों से बीमार थे—अबतक उनकी कमजोरी दूर नहीं हुई थी। इसी बीच यह मामला आ पड़ा, इसलिये उनका मन भी ठिकाने नहीं था? ऐसी ही हालत में उन्होंने परेड के मैदान में आकर देखा, कि कर्नल नील अपनी गोरी पलटन के साथ मौजूद हैं—तोपें भी तैयार रखी हैं। अन्तमें पानसनवी साहब को पहले से सोचा हुआ हुक्म सुनाना पड़ा। उस समय बनारस की छावनी में २,००० हिन्दुस्तानी सिपाही थे—युरोपियनों की संख्या २५० से अधिक नहीं थी। इन दो हजार सिपा-हियों के मनमें उस समय घोर उत्तेजना उथल पुथल मचाये हुए थी। ऐसे २,००० उत्तेजित सिपाहियों पर निरस्त्रीकरणका आदेश प्रचारित करना, कम साहस का काम नहीं था। उस समय मैदान में ४१४ सिपाही थे। उन लोगों ने हुक्म पाते ही अपने हथियार नीचे डाल दिये। सामने चढ़ी हु

तोपें रखी थी, संगीनधारी गोरे थोड़ी थोड़ी दूर पर खड़े, उनके जीवन के शोचनीय परिणाम की सूचना दे रहे थे। एक-एक करके सब लोग अपने-अपने हथियार उतारने लगे। परन्तु एकाएक उनका भाव बदल गया। जिस समय गोरे सैनिक उनके परित्याग किये हुए हथियारों को उठाने के लिये पास आये, उस समय उनसे चुपचाप न रहा गया। उन्होंने सोचा, कि सम्भव है, हमारे हथियार छीन लेनेके बाद हम पर तोपों से गोले छोड़ने शुरू कर दिये जायें। यही सोच कर उन्होंने परित्याग किये हुए हथियार फिर हाथ में ले लिये और अपने अफसरों पर ही हमला किया। इधर-उधर से अँगरेजों पर गोलियां भी छोड़ी गयीं। थोड़ी ही देर में सब सिपाहियों ने अपनी-अपनी बन्दूकें भर लीं और अँगरेजों से लड़ने को तैयार हो गये। अगरेज भौंचक से हो रहे। सात आठ अँगरेज सिपाही, घायल हो गिर पड़े। अफसर लोग तोपों के सहारे हमला रोकने की चेष्टा करने लगे। मेजर बारेट पहले से ही हथियार छीनने के विरोधी थे। अब यह हाल देख, उनका तो होश ही गायब हो गया। वे चुपचाप हक्का-बक्का से होकर खड़े रहे। सिपाहियों ने अपने अनुरागी मेजर बारेट का कुछ भी अनिष्ट नहीं किया। उन्होंने उन्हें एक निरापद स्थानमें पहुंचा कर उनके जीवन की रक्षा की। विद्रोही होने पर भी वे हिताहित की पहचान करना नहीं भूले थे और पुरानी श्रद्धा उनके हृदय से दूर नहीं हो गयी थी।

सिपाहियों को इस प्रकार उत्तेजित और युद्ध के लिये तैयार होते देख; अँगरेज सिपाहियों ने तोपों से गोले बरसाने शुरू किये।

तोपोंके सामने खड़े होने की भला किसकी सामर्थ्य थी? इसलिये सिपाही लोग अपने-अपने घरों की तरफ दौड़ पड़े। वहीं से वे दीवारों की ओट में खड़े होकर गोरे सैनिकों पर गोलियाँ छोड़ने लगे। परन्तु इससे गोरे सैनिकों ने तोपें छोड़नीं बन्द नहीं कीं। गोलों ने कई सिपाहियों को मार गिराया। तब तो बहुतेरे सिपाही नगर में जा छिपे और कितने ही भाग कर आस पास के गांवों में जा रहे और बदला लेनेकी ताक में वहीं पड़े-पड़े दिन बिताने चले गये।

इधर इसी समय देशी घुड़सवार-पल्टनका एक दल और एक दल सिक्खोंका परेडके मैदानमें आ पहुंचा। इन लोगों के मनमें भी पूर्वोक्त सिपाहियों की तरह शङ्का और सन्देह भरा था। इसलिये यहां आते ही एक घुडसवारने अपने सेनानायक को गोली मार दी और दूसरेने तलवार निकालकर उस बेचारेके दो टुकड़े कर देने चाहे। बेचारे सिक्ख चुपचाप यह सारा तमाशा देखते रहे। पहले उनका इरादा अँगरेजी सरकारके विरुद्ध हथियार उठानेका नहीं था; पर जब उन्होंने देखा, कि गोरोंको हमारे ऊपर भी सन्देह हो रहा है, तब तो एक सिक्खने एक गोरे अफसरपर गोली चला ही दी। पर इसी समय एक दूसरा सिक्ख उस अफसरकी जान बचानेके लिये आगे बढ़ आया; पर उसकी इस उदारताका कुछ भी विचार न कर, सभी देशी सिपाहियोंको एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे समझकर, अँगरेजोंने उनके विरुद्ध हथियार उठा लिये। फिर क्या था? सभी देशी सैनिकोंने अँगरेजोंपर गोली छोड़नी शुरू कर दी। इस समय

तोपें अरक्षित दशामें पड़ी हुई थीं; क्योंकि गोलन्दाज गोरे ३७ नं० पल्टनके सिपाहियोंका पीछा करते हुए उनके डेरे तक चले गये थे, यदि उस समय सभी देशी सिपाही मिल जाते और उन तोपोंको हाथमें करके ठीक-ठिकानेसे युद्ध करते तो बनारसको तो वे निश्चय ही अँगरेजोंसे छीन लेते, पर नहीं, सिपाहियोंमें न तो कोई शृङ्खला थी, न काम करनेका कोई सिलसिला। उनका कोई ऐसा युद्धवीर सेनापति भी नहीं था, जो उन्हें कायदेसे लड़नेके लिये कहता। इसीलिये जब वे आपसमें ही शेखी बघारनेमें लगे हुए थे, तभी एक अँगरेजने आकर उन तोपोंपर कब्जा कर लिया और गोले बरसाने शुरू कर दिये, जिससे सिक्खों और सिपाहियोंको वहांसे भाग जाना पड़ा।

क्रमशः सूर्यास्त हो गया और जेनरल पानसनबीने नील साहबपर अपने कर्त्तव्यका भार दे, वहाँ से खिसक जाना ही अच्छा समझा। कर्नल नील बनारसके प्रधान सेनानायक हो गये और शत्रुओंसे गिन-गिनकर बदला लेने लगे। जो सिपाही भागे बारकोंमें लौट आये थे, वे या तो मार डाले गये या निकाल बाहर कर दिये गये और जो निर्जन कुटीरोंमें जा छिपे थे। वे कुटीर सहित भस्म कर दिये गये।

परन्तु इतनेपर भी बनारसके अधिकारियोंकी चिन्ता दूर न हुई। उन्हें भय होने लगा, कि कहीं रातको ये सिपाही शहरके बदमाशोंकी सहायतासे और भी उपद्रव न करने लगें। इसी डरसे लोग जहां-तहां भागने और छिपने लगे। ईसाई पादड़ी लोग तो भागकर चुनार चलनेकी तैयारी करने लगे और सिविल

कर्मचारी कलक्टरी-कचहरीमें जा छिपे। इस समय खजानेकी रक्षाका भार कुछ सिक्ख-सिपाहियोंपर ही था। अधिकारियों ने सोचा कि कहीं ये लोग भी अपने भाइयोंके मारे जानेके कारण सरकारके शत्रु न हो जायें, पर एक शान्त-प्रकृति सिक्ख-सरदारने जिसका नाम सूरतसिंह था, यह आशंका दूर कर उनको शान्त कर दिया।

दूसरे सिक्ख-युद्धके बाद जब लार्ड डलहौसीके हुक्मसे पञ्जाब-केसरी महाराज रणजीतसिंहका विस्तृत राज्य अँगरेजी राज्यमें मिला लिया गया, तब सरदार सूरतसिंह भी पञ्जाबसे काशीमें लाये गये थे और तबसे यहीं कैद थे; पर कैदी होते हुए भी वे हृदयके काले नहीं थे। वे अँगरेजोंकी मददके लिये इस बुढ़ापेमें भी कन्धेपर बन्दूक लिये हुए कचहरीके खजानेके पास चले आये और उत्तेजित सिक्खोंको समझा-बुझाकर शान्त करने लगे; इससे अँगरेजोंको वहांसे रुपया-पैसा और लाहौर के किलेसे लूटकर लाया हुआ रत्न-भाण्डार दूसरे स्थानमें ले जानेका मौका मिल गया। यदि वह सिक्ख-सरदार इस मौके पर सहायता न करता और अपने कैद करनेवालोंसे सूद समेत बदला वसूल करनेको तैयार हो जाता तो न केवल उसीका बदला वसूल होता; बल्कि सारी सिक्ख जातिपर किये हुए अपमानका बदला वसूल हो जाता। इसके सिवा बहुत से हिन्दुओंने भी अँगरेजोंकी बड़ी सहायता की। इसके लिये कितने ही अँगरेज अधिकारियोंने भी आश्चर्य प्रकट किया; पर इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। हिन्दु विपदमें पड़े हुए अपने

शत्रु की भी रक्षा करनेसे विमुख नहीं होते। अँगरेजों ने हिन्दुओं को नहीं पहचाना, इसीलिये अमृत भी उनके लिये विष बन गया, नहीं तो भले तौरसे पेश आनेपर कोई हिन्दू कभी किसी अँगरेज पर हाथ नहीं उठा सकता था।

जो हो, जैसा कि यहांके गोरे अधिकारियोंने सोच रखा था, वैसा नहीं हुआ, अर्थात् बलवाइयोंने उन्हें मारा भी नहीं और सारे नगरमें लूट-पाट भी नहीं मची—उलटे वे लोग सोलह आने सुरक्षित रह गये। इससे उनकी आशंका और चिन्ता तो मिटी, पर क्रोध और प्रतिहिंसाके भाव दिलसे दूर नहीं हुए। बहुतसे सिपाही जहाँ-तहाँ जाकर छिपे हुए हैं, यही सोचकर वे सारे बनारस-विभागके रहनेवालों का सत्यानाश करनेको तैयार हो गये। ९ वीं जूनको सारे डिवीजनमें फौजी-कानूनकी घोषणा की गयी। गाँव-गाँवमें लोगोंपर बेतोंकी मार पड़ने लगी और हर जगह फाँसीका बाजार गरम हो गया। छोटे-बड़े भले-बुरे सभी एक भावसे पिसने और कुत्ते, स्यार या जहरीले सर्पकी तरह बेरहमीसे मारे डाले जाने लगे। जिन हिन्दुस्तानियोंकी बदौलत वे लोग बुरी मौत नहीं मरने पाये, उन्हींके निरपराध भाई-बन्धुओंको इस प्रकार कुत्तेकी मौत मरते देख, वे लोग खिलखिलाकर हँसते हुए भी न शर्माये!

कुछ बालकों ने खेलके बहाने सिपाहियों की तरह झंडा उड़ाते हुए ढोल बजाया और जुलूस निकाला। इसी अपराध पर उन्हें फांसी की सजा दी गयी। बेचारे जज को भी उन बालकों पर तरस आ गया और उन्होंने सेनापति से उन्हें क्षमा

कर देने का अनुरोध किया; पर वे माननेवाले जीव नहीं थे। बालकों की सजा बहाल रही। बनारस से ३० मील दूर किसी गांव में कुछ सिपाही छिपे हुए थे। २२ वीं जून को अधिकारियों को यह बात मालूम हुई। बस २७ वीं जून को २४० गोरे और कुछ थोड़े से सिक्ख उनके विरुद्ध भेजे गये। इनके आते ही सिपाही लोग इधर उधर भागने लगे। कितने ही मारे गये, कितने ही घायल हुए;कितने ही फांसीपर लटका दिये गये। गोरे सिपाहियों में एक नौजवान गोरा भी था, जिसके हृदय के समस्त कोमल भाव औरों की तरह नष्ट नहीं हो गये थे। उसने एक पत्र में, जो विलायत के प्रसिद्ध समाचार पत्र "टाइम्स में" प्रकाशित हुआ था, इस अग्निकाण्ड का बड़ा ही हृदय-स्पर्शी वर्णन किया था; उसके कुछ अवतरण हम यहां प्रकाशित करते हैं, जिन्हें पढ़ने से पाठकों को उस राक्षसलीला का बहुत कुछ आभास मिल जायेगा। उक्त नवयुवक लिखता है :—

"हम लोगों ने ८ दिन और ९ रातें चल कर ४२१ मील का सफ़र तै किया और २५ वीं जून को बनारस पहुंच गये। २७ वीं जून को सन्ध्या को हमारे दल के २४० सैनिक (जिनमें एक मैं भी था), ११० सिक्ख सिपाही और २० घुड़सवार बनारस से रवाना हुए; घुड़सवारों के सिवा हम लोग बैल गाड़ियों पर थे। दूसरे दिन तीसरे पहर ३ बजे हमलोग उन देहातोंके पास पहुंच गये, जिनमें बलवाइयों ने आश्रय ग्रहण किया था। मैं उस दल में था; उसके एक गांव में घुसते ही गांववाले गांव छोड़ कर भाग गये। हम लोगों ने सारे गांव को आग लगा

कर भस्मीभूत कर दिया। जिस समय हम लोग यहां से लौट कर चले, उसी समय एक आदमी ने हमारे सामने आकर कहा,—'यहाँ से दो मील दूर पर एक गांव में बहुतसे लोग लड़ाई के लिये तैयार बैठे हुए हैं।' हम लोग यह समाचार पाते ही उधर को रवाना हो गये। जिस समय हम लोग उनसे ६०० हाथ दूर पर हीं थे, उसी समय वे लोग हमको देख कर दौड़े और भाग चले। हमने गोलियाँ छोड़नी आरम्भ कीं और ८ आदमियों को मार गिराया। इसके बाद हम लोग गांव की ओर बढ़े। इसी समय एक आदमी ने जल्दी-जल्दी हमारे पास आकर हमारे अफसरको सलाम किया। हम लोगोंने उसे सिपाही समझ कर गिरफ्तार कर लिया। इसके सिवा हमने और भी २० आदमियों को पकड़ लिया। उन्हें लिये हुए हम लोग अपनी बैल गाड़ियों के पास चले आये, जो सड़क के किनारे खड़ी थीं। इसी समय एक बूढ़ा हमारे पास आया और बोला, कि हम लोगों ने जो गांव जलाया है, उसका हर्जाना हमें देना पड़ेगा। हमारे साथ एक मैजिस्ट्रेट साहब भी थे। उन्होंने उस बूढ़े पर बलवाइयोंको छिपा रखने का जुर्म लगाया और ५ मिनट में उसके मामलेका फैसला सुना दिया। पूर्वोक्त सिपाही और बूढ़े को फांसी का हुक्म सुनाया गया! पास ही एक पेड़में लटकाकर उन्हें फांसी दे दी गई। रात भर उनकी लाशें हमारे सामने के पेड़ पर लटकती रहीं। सवेरे उठ कर हम लोग मैदान की राह कई मील आगे बढ़ गये। इसी समय बड़े ज़ोर से वर्षा होने लगी। बस हम लोग वहीं रुक गये और एक गांव में आग लगा दी।

इसके बाद हम फिर आगे बढ़े। हमारे दल के सभी लोग अपना काम बड़े मजे से कर रहे थे। उन्होंने ८० आदमियों को गिरफ्तार किया, जिनमें छः आदमियों को तो उसी दिन फांसी दे दी गयी। ६० आदमियों पर बेतें पड़ीं। इसके बाद मजिस्ट्रेट साहबने घोषणा की, कि जो कोई बलबाइयों के सरदार को गिरफ्तार करा देगा, उसे २,०००) इनाम दिये जायगे। उस दिन रात को हम लोग रास्ते में ही सो रहे। जिन छः जनों को फांसी दी गयी थी, उनकी लाशें हमारे सामने ही पेड़ों से झूल रही थीं। दूसरे दिन तीसरेपहर हम लोगों के कूचकी तैयारी हुई। आज भी बड़े जोर का पानी आया और हम भीगते हुए आगे बढ़ने लगे। इसी तरह भीगते भागते हम लोगों ने रातको एक गांव में पहुच कर उसमें भी आग लगा दी। सवेरा होने पर सूर्योदय हुआ और हमने धूप में अपने गीले कपड़े सुखा डाले, पर थोड़ी ही दूर-जाते-न-जाते हमारे कपड़े फिर पसीने से तर हो गये। अबकी बार हम लोग एक बड़े गांवमें पहुंचे। हमने वहां के दोसौ आदमियों को गिरफ्तार कर उस गांवमें भी आग लगा दी। चारों ओर आग धधकने लगी। एक बूढ़ा, जो चलने फिरने से भी लाचार था, भागने की चेष्टा कर रहा था, पर उससे बाहर नहीं आया जाता था। हमने उसे बाहर आनेको कहा। जब वह स्वयं न आ सका, तब मैंने उसके साथ ही खाट खींच कर बाहर कर दी। इसके बाद हम लोग एक गलीके मोड़ पर आये। वहां एक घर की दीवार पर एक चार वर्ष का छोटा सा बच्चा आग की लपटों से झुलसा हुआ निकल भागने की चेष्टा कर रहा

था। उस घरमें चारों ओर आग धधक रही थी। मैंने पास आ कर देखा; कि उस घरमें उसके अतिरिक्त आठसे लेकर दो बरस तककी उम्र तक के ६ और लड़के हैं। साथ ही एक बूढ़ा पुरुष और एक बुढ़िया स्त्री भी है। एक २० वर्षकी युवती गोदमें एक बच्चेको लिये हुए रो रही थी। वह बच्चा सिर्फ ५ ही ६ घण्टे पहले पैदा हुआ था। बेचारी बच्चा पैदा करनेके बादही इस विपद् में पड़ गयी। मैंने उस तुरतके पैदा हुए बच्चेको गोदमें ले लिया और उस स्त्री से अपने पीछे-पीछे आने को कहा। उसने उस बच्चे को मेरी गोद में नहीं रहने दिया—मुझसे मांग कर फिर अपनी गोद में ले लिया। मैंने सब छोटे-बड़े बच्चों और बूढ़े-बूढ़ीको अपने पीछे आने का इशारा किया। बड़ी बड़ी मुश्किलों से मैं उन लोगों को साफ़ बचा लाया। मैं उन्हें पास ही के एक खेत में बैठा कर दूसरी तरफ चला गया। वहाँ पहुंच कर देखा, कि बुढ़िया चौपायों की तरह हाथ-पैरों के बल पर रेंगती हुई आग से बच कर निकल जाना चाहती है, पर उस से चला नहीं जाता। मैंने उसे भी बाहर निकालना चाहा; पर वह मेरी सहायता लेने को तैयार नहीं हुई। मैंने उसे जबर्दस्ती खींच कर बाहर निकाला। वहाँ से मैं एक और तरफ गया, वहाँ भी मैंने एक स्त्री को देखा, जो लगभग २२ वर्ष की थी। वह एक मरते हुए रोगी के पास बैठी हुई उसे शर्बत पिला रही थी। चारों ओर आग की लपटें फैल रही थीं। मृत्युशय्या पर पड़े हुए व्यक्ति के पास ही चार और औरतें दिखाई पड़ीं। मैं धीरे धीरे उनके पास पहुंचा और उनसे कहा, कि इस रोगी और

स्त्री की सहायता करो। पर वे सब अपनी ही जान बचाने की फिक्र में थीं। यह देख मैंने अपनी संगीन बाहर निकाली और उनको धमकाते हुए कहा, कि यदि तुम लोग मेरी बात न मानोगी तो मैं इसी दम तुम्हें मार डालूंगा। अब तो वे सब राजी हो गयीं और मेरी-सहायता से उस रोगी और युवती को बाहर निकाल लायीं। मैं उन्हें छोड़ कर फिर आगे बढ़ा। आग उस समय आसमानसे छूती हुई मालूम पड़ रही थी। मैंने गांव के एक और हिस्से में पहुंच कर १४० स्त्रियों और ६० छोटे-छोटे बच्चों को देखा। सब घबरा कर रो रहे थे। मैंने इसी परिवारको जिसमेंसे एक बुढ़ियाकी जान बचायी थी, वह मेरे पास आकर सब के छुटकारे के लिये मुझे धन्यवाद देने लगी। मैंने अपने पास से बिस्कुट निकाल कर उन्हें खानेको दिये; पर उन्होंने उनको नहीं लिया, शायद मेरे बिस्कुट खाने से उनकी जाति चली जाती। इसी समय सबको जमा करनेके लिये बिगुल बजी। मैं लौट चला, स्त्रियोंने मुझे दिल खोलकर आशीर्वाद दिये।..........

हम लोगोंने यहां १० आदमियोंको फाँसी तथा ६० आदमियोंको बेंत मारनेकी सजा दी। उसी रातको हम लोगोंने एक और गाँव जला दिया। हमारे हाथ जो लोग कैद होते, वे जिस दृढ़ता और शान्तिके साथ मौतको गले लगानेके लिये तैयार हो जाते थे, उसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता था। एक बार एक आदमी फांसीकी रस्सी टूट जानेसे नीचे गिर पड़ा। वह तुरत ही धोती झाड़कर उठ खड़ा हुआ और चारों ओर चुप चाप देखने लगा। उसे दुबारा फांसी दी गयी। जब सब

ोग फांसीपर लटकाये जा चुके, तब शेष कैदियोंको वहां
ाकर उनके भाई-बन्धुओंकी दुर्दशाका दृश्य दिखला दिया
ाया।..........ता० २६ वीं जुलाईको हमें २००० लड़ाकोंका
सामना करनेके लिये जाना पड़ा। हमारे दलमें १८० सिपाही-
शत्रु तीन दलोंमें विभक्त हो हमारी राह रोके खड़े थे। पर
जब हम लोग प्रबल वेगसे अग्रसर होने लगे, तब वे सब भाग
चले। उन लोगोंने जिस गांवमें जाकर शरण ली, उसमें चारों ओर
से आग लगा कर हम लोगोंने उसे पूरी तरह से घेर लिया। वे
लोग जब आगसे अपनी जान बचानेके लिये बाहर आते, तभी हम
लोग उन्हें अपनी गोलियोंका शिकार बना लेते। उनमेंसे १८ आदमी
हमारे हाथों बन्दी बना लिये गये। इनके मामलेका इकट्ठे ही
फैसला कर दिया गया।..........हम लोगोंने सबको गोली
मारकर वहीं ढेर कर दिया। इस तरह इस स्थानमें
५०० आदमी हमारे हाथों मारे गये।"

की तरह निरपराध व्यक्तियोंके भी प्राण ले लिये गये। कठोरता और निर्दयता की हद्द कर दी गयी!

पर इस कठोरतासे भी विद्रोह न दबा। जो आग पैदा हो गयी थी, वह लाठी पीटनेसे थोड़ी ही बुझ सकती थी? सिपाहियोंका असन्तोष धीरे-धीरे बढ़ता ही गया और देखते-ही-देखते जौनपुर और इलाहाबादमें बड़ी भयंकर घटनाएँ होने लगीं।
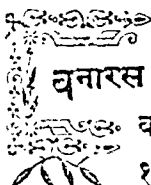
आठवां अध्याय।

—:-:※:-:—

जौनपुर और इलाहाबाद।

बनारस से तीन मील पश्चिमोत्तर की ओर जौनपुर शहर बसा है। इसके पास ही गोमती नदी बह रही है। १७७५ ई० में यह नगर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के अधिकारमें आया था। यहांपर पत्थर का बड़ा भारी मजबूत किला है। उसमें कैदी रखे जाते थे। पूरबकी तरफ पलटनकी छावनी थी। जिस समयका हाल लिखा जा रहा है, उस समय इस छावनीमें लुधियानेके १६६ सिक्ख सिपाही रहते थे। 'मरा' नामका एक अँगरेज अफसर उनका अध्यक्ष था।

४ थी जूनको बनारसकी तरह यहांके सिक्ख सैनिक भी अँगरेजों के कोप-भाजन बन गये। उस समय यदि सेनापति धैर्य, विवेक और बुद्धिमानीसे काम लेते, तो सिक्खोंमें वैसी उत्तेजना नहीं फैलती। पर उस समय तो विचार-बुद्धि अँगरेजोंसे विदा ही हो गयी थी। इसीलिये उन्हें कर्त्तव्य नहीं सूझता था और उनके हाथों ऐसी ही कार्रवाइयां हो जाती थीं, जिनसे असन्तोष घटनेकी जगह और बढ़ता जाता था।

४ थी जूनको जौनपुर में यह अफवाह फैल गयी कि आजमगढ़के सिपाही सरकारके दुश्मन हो गये हैं। उसके बाद ही यहां बनारसकी घटनाओंका भी संवाद आ पहुंचा। पर इन

थे। वे वहाँ भी कुशल न देख, भागने की चेष्टा करने लगे। कोई पैदल, कोई घोड़े पर, कोई गाड़ी पर भाग चला। मरा साहब रास्ते में ही पड़े-पड़े मर गये। उनकी स्त्री भी थोड़ी दूर जाकर मर गयी। भगोड़े अँगरेज गोमती पार कर 'कराकट' नामक स्थान में चले आये। रास्ते में किसी ने उनका कुछ अनिष्ट नहीं किया। उनके हिन्दुस्तानी नौकरों ने भी उन्हें बड़ी सहायता दी। कराकट में लाला हींगनलाल नामके एक बड़े ही इज्जतदार और बूढ़े रईस रहते थे। इन्होंने घर में सभी अँगरेजों और उनके स्त्री-बच्चों को टिकने की जगह दी। साथ ही उन्होंने इनके आराम और भोजन का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया। उनके नौकर-चाकर हथियार बांधे इन लोगों की रक्षा पर नियुक्त रहे। बलवाइयों ने तीन बार कराकट में आकर लूट-पाट की; पर लाला हींगनलाल के घर पर किसीने हमला नहीं किया। वे लोग जानते थे कि लाला हींगनलाल बड़े ही धर्मात्मा मनुष्य हैं, इसी से उन लोगों ने इनका घर छोड़ दिया। इसके बाद बनारस के कमिश्नर ने बहुत से गोरे सैनिकों को भेज कर इनके घर से सब अँगरेजों को बुलवा लिया।

सरकार ने पीछे हींगनलाल को इस उपकार का बदला भी दिया। वे डिप्टीमजिस्ट्रेट बना दिये गये और जन्म भर सौ रुपये वेतन पाते रहे। उनके मरने के बाद उनके पुत्र को भी पेंशन मिलती रही।

विद्रोह बनारस और जौनपुर तक ही परिमित न रहा। वह आगे बढ़ता हुआ इलाहाबाद तक पहुंचा। यहांके किलेमें उस समय

लड़ाई के सामान बेतरह भरे हुए थे। खजाने में भी प्रायः ३० लाख रुपये जमा थे। इस गोलमाल के जमाने में यहां कोई गोरी पलटन नहीं थी, उन दिनों यहां के किले में और किले से ४ मील दूर छावनी में ६ नं० देशी पैदल-सेना, कुछ देशी गोलन्दाज और एक दल सिक्ख-सैनिकों का था।

छावनी में जो ६ नं० की देशी पैदल-सेना थी, उसमें अवध और बिहार के सिपाही भरे हुए थे। अँगरेजों ने अनेक युद्धों में इस सेना के सिपाहियों की सहायता ली थी। ये बड़े ही प्रभुभक्त थे। इसीलिये खजाने पर इन्हीं का पहरा मुकर्रर किया गया। एक वार दो आदमियों ने इन्हें सरकार के विरुद्ध उभाड़ने की चेष्टा की थी। इन लोगों ने उन दोनों को अधिकारियों के हवाले कर दिया। इसलिये सरकार को इन लोगों की राजभक्ति का पूरा भरोसा था। पर होनहार को कौन टाल सकता है? समय के फेर से ये लोग भी अँगरेजों के दुश्मन हो गये और इनकी राजभक्ति काफूर की तरह उड़ गयी। फिर तो इन्होंने कितने ही अँगरेजों को मार डाला; खजाना लूट लिया और सारे शहर में गोलमाल मचा दिया। पीछे ये लोग तितर-बितर होकर जहां तहां भाग गये।

इस पलटनके सिवा और भी एक पलटन थी, जिसमें पञ्जाब से वीर सिक्ख भरे हुए थे। एक समय इन सिक्खोंने अँगरेजों के अपनी स्वाधीनता की रक्षा के निमित्त घोर युद्ध किया था; पर आज ये लोग अँगरेजों के तरफदार और उनके नमकख्वार ...थे!

११ वीं मई को मेरठ में जो दुर्घटना हुई, उस का संवाद तार द्वारा यहां भी आया और हर गली-कूचों में फैल गया। इसी तरह क्रमशः दिल्ली की घटनाओं के वृत्तान्त भी लोगों ने सुन लिये ; पर तब तक यहां के अँगरेज चैन की वंशी बजाते हुए मौज में पड़े थे। इसी तरह मई का महीना बीत गया। जून के आरम्भ में ही जैसी खबरें आने लगीं, उनसे अँगरेज घबरा उठे। चौथी जून से तो तार आने-जाने भी बन्द हो गये। इसी दिन कई दूतों ने आकर यहां के अँगरेजों को खबर दी, कि बनारस के सिपाहियों ने अपने सेनापति को मार डाला है और इधर को ही चले आ रहे हैं। अब तो ये लोग घबराये। सारे नगर के अँगरेज भाग कर किले में चले आये।

बनारससे इलाहाबाद आनेवालोंको दारागञ्ज नामक मोहल्ले के सामने नाव पर सवार होकर गंगाको पार करना पड़ता है। इलाहाबाद के मजिस्ट्रेट के अनुरोध से ६ नं० पल्टन के कितने ही सैनिक दो तोपें लिये हुए इस पार पहरे पर तैनात कर दिये गये। इस समय अवध के बहुत से घुड़सवार सिपाही पास ही मौजूद थे। अब तक तो ये लोग बड़े राजभक्त बने हुए थे, पर जब इन्होंने काशीमें अपने भाइयोंके निहत्थे किये जाने और मारे जानेका हाल सुना, तब इनके भी दिमाग फिर गये। इन्होंने विचार किया कि नील साहबने जैसी कार्रवाई बनारस के सिपाहियोंके साथ की है, वैसी ही हमारे साथ भी करेंगे। इसीलिये ६ ठी जूनकी शामको ये लोग भी अँगरेजों पर हथियार उठानेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने यह भी सोचा, कि अब

हमारे बनारसी भाई यहां हमारी मददके भरोसे पर चले आ-रहे हैं, तब हमारा चुप रह जाना ठीक नहीं।

अकस्मात् ६ ठी जूनकी रातको बिगुल बज उठी। युरोपियनोंके दिल दहल उठे; कि यह क्या माजरा है? सेनापति साहब घर आकर झटपट घोड़ेपर सवार हो छावनीकी ओर चले। और और अङ्गरेज सैनिक पुरुष भी बिगुलकी आवाज सुनते ही दौड़े हुए छावनीकी ओर चल पड़े। जो सिपाही गङ्गा के किनारे बनारस से आनेवाले सिपाहियों की राह रोकनेके लिये मुकर्रर थे, पहले उन्होंने हथियार उठाया। उनके पास दो तोपें थीं। उन्हें उन लोगोंने अफसरोंका हुक्म होनेपर भी हाथ से नहीं जाने दिया था। उन्होंने पहले तो उन्हीं अँगरेजों पर हमला किया जो उन तोपोंकी रखवाली कर रहे थे। उस समय अवधके सिपाहियोंने इच्छा न रहते हुए भी उन अङ्गरेजोंकी प्रार्थना सुन उनकी सहायता की। उन्होंने किलेमें खबर भिजवायी। इतनेमें सिपाहियोंके भयङ्कर कोलाहल और बन्दूककी दाँय-दाँयकी आवाज छावनीसे आने लगी। अब तो अवधके तीन सिपाहियोंको छोड़कर और सभी बागी हो गये। उस समय खूब चाँदनी छिटकी हुई थी। उत्तेजित सिपाही उसी रातमें अङ्गरेजोंके खूनके प्यासे हो उठे। तोपकी रक्षा करनेवाले अङ्गरेजोंने तोपें छोड़कर भाग जानेमें ही अपनी कुशल समझी। जिन अवधिया सिपाहियोंने उनका पक्ष लिया था उनका सरदार मारा गया। फिर क्या था? विजयी सिपाही तोपें लिये हुए अपने साथियोंकी सहायता करनेके निमित्त छावनीकी ओर

चल पड़े। जिस समय वे लोग मैदानमें उतर आये, उस समय उनके साथियोंके दिल दुगुने उत्साहसे भर गये।

उस समय कर्नल सिमसन सिपाहियोंके बीचमें खड़े थे। उन्होंने आनेवालोंसे तोपें ले आनेका कारण पूछा। इन लोगों ने उनपर गोली छोड़कर इस प्रश्नका यथोचित उत्तर दे दिया। गोली उनके लगी नहीं, पर वे समझ गये कि इस समय कुछ भी कहना सुनना बेकार है। इसलिये घोड़ेपर सवार हो एक तरफ चल दिये। सिपाहियोंकी इच्छा उन्हें मार डालनेकी नहीं थी। उन्होंने उनसे किलेमें चले जानेके लिये कहा। वे एक अफसर को साथ लिये हुए खजानेकी रक्षा करने चले गये। पर उस ओर जानेका रास्ता ही नहीं था। वे जिधर जाते, उधर ही गोलियां छूटती दिखायी देतीं। उनकी जानोंके लाले पड़ गये। एक गोली उनके टोपके पाससे चली गयी। लाचार वे किलेकी ओर चल पड़े। उधर भी गोलियोंकी बौछार कम नहीं थी। उनके घोड़ेके शरीरमें कितनी ही गोलियां आ लगीं, तो भी उस वीर घोड़ेने उन्हें किलेके फाटकपर पहुंचा ही दिया। सवारको नीचे उतार कर ही घोड़ेने प्राण-त्याग कर दिया।

सेनापतिके किलेमें चले जानेपर भी सिपाहियोंका जोर कम न हुआ। वे जहां कहीं किसी अङ्गरेजको देखते, वहीं उसपर हमला कर देते थे। कितने ही अङ्गरेज इसी तरह मारे गये। ८ अङ्गरेज बालक यहां समर-विभागमें काम सीख रहे थे। इनमेंसे ७ सिपाहियोंके हाथ मारे गये। आठवां घायल होकर पासके एक गढ़ेमें जा छिपा। उसकी अवस्था १६ वर्षसे अधिक

नहीं थी। वह बेचारा ४ दिनों तक उसी गढ़ेमें पड़ा रहा। कोई उसकी रक्षा करने नहीं आया। पांचवें दिन सिपाहियोंने उसे देखा और वहांसे हटानेके लिये तैयार हुए। बालक कई दिनोंकी भूख-प्यास से तड़प रहा था; उसके घावोंमें भी बड़ा दर्द हो रहा था। अन्तमें वह इलाहाबाद दुर्ग में पहुंचाया गया और वहीं १६ वीं जूनको मर गया।

किलेमें ६ नं० पलटनके कितने ही सिपाही और कुछ थोड़े से सिक्ख सैनिक मौजूद थे। उन लोगोंने जब किलेके बाहर बन्दूकोंकी लगातार आवाजें होती सुनीं, तब सोचा कि शायद बनारसके सिपाही यहां भी आ गये और हमारे साथी उनसे मिल गये हैं। परन्तु जब सेनापति सिमसन घोड़ेके शरीर से निकले खून से रंगे हुए कपड़े लिये किले में आ पहुंचे, तब वे हताश हो गये। उन्होंने सोचा कि शायद बनारसवाले यहां नहीं आये। इतनेमें सेनापतिने इन सबको निरस्त्र कर डालनेका हुक्म दिया। हथियार छीननेका भार सिक्ख पलटनके सरदार पर ही छोड़ दिया गया। इस सरदारने पञ्जावकी लड़ाइयोंमें बड़ी वीरता दिखलायी थी। वे अङ्गरेजोंके बड़े लाड़ले थे। उन्होंने इच्छा न होते हुए भी यह काम करना स्वीकार कर लिया। इस समय सिपाही लोग दुर्गके द्वारकी रक्षा कर रहे थे। जिस समय छावनी से लगातार बन्दूक छूटनेकी आवाज आने लगी, उस समय ये लोग बन्दूकें भरे हुए शत्रुओं को हटानेके लिये तैयार हो गये। यदि सिक्ख सैनिक भी इन मिल जाते और विद्रोहियों की सहायता करनेके लिये तैयार

हो जाते तो अङ्गरेजोंकी आफत आ जाती। फिर तो किलेपर बलवाइयोंका वह हमला होता, जो इनके रोके न रुकता और और यहां जो खजाना ढो ढोकर लाया गया था वह भी लुट जाता। सम्भव था इलाहाबाद ही अङ्गरेजोंके हाथसे निकल जाता। परन्तु पञ्जावियोंने अन्य सिपाहियोंका साथ नहीं दिया। उन्होंने दुर्गकी रक्षाके लिये कमर कस ली। सामने ही चुनारसे लायी हुई तोपें खड़ी कर दी गयीं। पास ही बहुतसे स्वेच्छा-सैनिक अङ्गरेज अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित हो उनकी सहायता करनेके लिये आ खड़े हुए। गोलन्दाज अङ्गरेज सिपाही जलते पलीते लिये हुए तोपोंके पास आ डटे। यह सब हाल देख दुर्गके हिन्दुस्तानी सिपाही भी भीगी बिल्ली बन गये, और चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद उनके सरदारने उनके सब हथियार छीन लिये और उन्हें किलेसे निकाल बाहर कर दिया। वे लोग चुपचाप उदास मुँह बनाये किलेसे बाहर हो गये और अपने देशवासियोंके दल में आ मिले।

कहा जा चुका है कि इलाहाबादके किलेमें बहुतेरी युद्ध-सामग्री भरी हुई थी। यदि किला अङ्गरेजोंके हाथ से निकल जाता तो यह सारी सामग्री सिपाहियोंके हाथ लग जाती। इसीलिये एक गोलान्दाजने दिल्ली की तरह यहांके बारूदखानेमें भी आग लगानेका विचार कर लिया था; पर जब उसने देखा कि सिपाही चुपचाप हथियार रखकर चले गये तब उसने वह विचार त्याग दिया।

इधर शहरके अन्दर भी जहां तहां लूट-मार जारी होने

लगी। तरह तरहके उत्पात होने शुरू हुए। कैदखाना तोड़ डाला गया और कैदी भगा दिये गये। जेलसे छूटते ही वे लोग भी लूट-पाटमें शामिल हो गये। विशेषतः सबका लक्ष्य युरोपियनोंपर ही था। वे जहां कहीं किसी अँगरेजको देख पाते; वहीं उसपर हथियार चला देते थे। ईसाइयोंके घर लूटे और जलाये जाने लगे। ईसाइयोंकी दूकानें जलाकर खाक कर दी गयीं। रेलवेका कारखाना नष्ट कर दिया गया—तारके तार काट दिये गये। दुर्गके वाहर जो युरोपियन थे, उनमें कोई अछूता न बचा ; क्योंकि उत्तेजित लोगोंने सब गोरे चमड़ेवालों को लूटने और मार डालनेकी कसमसी खा ली थी। वे अपनी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये जी-जानसे अड़ गये थे। कल जो लोग कम्पनीके नौकर थे, आज वे ही अँगरेजोंको जड़ से उखाड़ फेंकनेको मुस्तैद थे। कहते हैं कि बहुतसे पेन्शनयाफ्ता सिपाही भी इस लूट-पाटमें शामिल हो गये थे। इस प्रकार बूढ़े-नौजवान सभी इस उपद्रवमें शामिल हो गये और इलाहाबाद से कुछ दिनोंके लिये राजसत्ता दूर सी हो गयी। कोतवाली पर मुसलमानोंका अर्द्धचन्द्रमा वाला झण्डा फहराने लगा।

उपद्रियोंका उद्देश्य खज़ानेको लूट लेना था ; पर ६ ठी जून तक किसी ने उसको हाथ नहीं लगाया था ; क्योंकि वे लोग सोच रहे थे, कि अभी खजाना न लूटा जाये और मुग़ल-सम्राट् के लिये रहने दिया जाये ; पर ७ वीं जूनके सवेरे ही ६ न० पलटनके सिपाही खजानेके पास आ दरवाजा तोड़ भीतर घुस गये और जो जो जितना उठा ले जा सका, उठा ले गया। बाकी

जो कुछ बचा वह बदमाशोंके हाथ लगा। कहते हैं कि, उस समय इलाहाबादके खजानेमें ३० लाख रुपये थे—एक सिपाही तीन-तीन, चार-चार थैलियां रुपयोंकी उठा ले गया था। प्रत्येक थैलीमें हजार रुपये थे। सिपाही लोग तो रुपये ले लेकर अपने अपने घर चले गये, पर यहां अङ्गरेजोंकी प्रधानता नष्ट हुई देख, बदमाश लोग लोगोंपर बेखटके अत्याचार करने लगे।

लूट शहरसे गांवोंमें जा पहुंची। जमींदार और किसान दोनों ही कम्पनीका राज्य नष्ट करनेकी धुनमें लग गये। मुस-लमानोंने तो ठीक समझ लिया कि अब अँगरेज यहांसे चले गये और मनमानी लूटपाट करने लग गये।

देनेवाले हैं। फिर क्या था? बातकी बातमें सारा शहर खाली हो गया।

कुछ थोड़ेसे सैनिक शहरकी रक्षाके लिये रखकर उन्होंने दरियाबाद, सैदाबाद और रसूलपुर नामक स्थानोंका उपद्रव शान्त करनेके लिये एक-एक दल सैनिकों का भेजा। नगर उजाड़ ही हो गया था, इसलिये शासन-विभागके जो कर्मचारी जहाँ-तहाँ लुके-छिपे थे, वे अब बाहर निकल आये और सब काम फिर पूर्ववत् होने लगे।

इस प्रकार ईश्वरकी दया और उपद्रियोंमें सङ्गठनके अभाव ने इलाहाबादमें अङ्गरेजोंकी प्रधानता बनी रहने दी। इस समय यदि इलाहाबाद अँगरेजों के हाथ से निकल जाता, तो शायद ही फिर अँगरेज इस देश में टिके रहते। फिर तो उनके लिये कहीं का भी उपद्रव शान्त करना कठिन हो जाता।

जो हो, सिर पर आयी हुई विपद जब टल गयी, तब अँग-रेजों के दिल में बदले की आग बड़े जोरों से धधक उठी। दो सप्ताह पहले जिस प्रकार विद्रोहियों ने जिस्र अँगरेज को पाया, उसी को मार गिराया, उसी प्रकार बेचारे निरपराध और सीधे सादे आदमियों पर आफत ढायी जाने लगी।

पश्चिमोत्तर-प्रदेश की इस अचिन्तनीय भयङ्कर स्थिति के कारण कलकत्ते की मन्त्रि-सभा ने विद्रोहियों को दण्ड देने के लिये बड़ा कड़ा कानून पास किया था। उसीके बल पर अधि-कारी यहां के सर्वसाधारण की जानें लेने को उतारू हो गये। उन्होंने सभी काले आदमियों को अपना शत्रु समझ लिया था

और बैलगाड़ियों का अभाव था। फिर कैसे क्या हो? वे इसी सोच विचार में थे, कि इन्हीं दिनों उनकी सेनामें हैजे का प्रकोप फैला। एक ही दिन २० आदमी मर गये—हैजे के रोगियों से सारा अस्पताल भर गया। लाचार इस महीने के अन्त तक उन्हें यहीं रुका रहना पड़ा। ३० वीं जून को तीसरे पहर ४०० गोरे, ३०० सिक्ख, १०० घुड़सवार और २ तोपें कानपुर भेजने का प्रबन्ध किया गया। इस सैन्यदल के अधिनायक हुए मेजर रेनडे। सेनापति नीलने जो उन्हें हुक्मनामा लिख कर दिया था, उसमें लिखा था,—"रास्ते में जहां कहीं उपद्रवी टिके हों, वहीं उन पर हमला कर देना होगा; किन्तु और लोगों का कुछ अनिष्ट न हो, ऐसा विचार रखना होगा। निरापद लोगोंको घर लौट आने में सहायता देना, जिसमें वे अँगरेजी अमलदारीके तरफदार बने रहें। जिन गांवों में विद्रोही छिपे पड़े हों, उन्हें जला देने का भय दिखाना चाहिये। जरूरी समझो, तो उन गांवों को बरबाद कर देना। जो सिपाही अपनी पूरी सफाई न दिखा सकें, उन्हें फांसी पर लटका देना। फतेहपुर के लोग सरकार से बागी हो गये हैं, इसलिये इस नगर पर जरूर हमला करना और वहाँ के पठानों का मुहल्ला नेस्तोनाबूद कर डालना। वहां का डिपुटी-कलक्टर मिले, तो उसे फांसी पर लटका देना और उसका सिर काटकर किसी मुसलमान के दरवाजे पर रख देना।" पाठक ही विचार करें, ये कैसी भयानक आज्ञाएँ थीं!

अस्तु; इसी समय मद्रासके प्रधान सेनापति सर पैट्रिक ग्रेंट मृत प्रधान सेनापति आनसनके पदपर नियुक्त हुए और

उनकी जगह पर बम्बईसे कर्नल हावेलक मदरास चले आये। वहांसे ये दोनों वीर कलकत्ते आये और गवर्नर-जेनरल लार्ड-केनिंग ने ग्राण्ट साहबको प्रधानसेनापति बना कर्नल हावेलक को इलाहाबाद रवाना कर दिया। ये ३०वीं जून को सदल-बल इलाहाबाद आ पहुंचे। नील साहबने यहांसे लखनऊ और कानपुर की रक्षाके लिये सैनिक भेजनेकी खबर इन्हें कह सुना-यी। सुनकर इन्होंने भी सन्तोष प्रकट किया। इसके बाद एक और सेनापति के अधीन जहाज द्वारा सैन्य भी भेजा गया।

पर प्रतिहिंसा-परायण सैनिक, सेनापतिकी दी हुई स्वाधीनता का अनुचित लाभ लेने लगे। वे रास्तेमें मिलनेवाले गांवोंपर जी खोलकर अत्याचार करने लगे—इसलिये उन्हें जितनी जल्दी कानपुर पहुंचना चाहिये था, उतनी जल्दी नहीं पहुंचे। वे बिना जांच-पड़ताल किये लोगोंको फाँसी देने और गांवों को जला-जलाकर खाक करने लगे। जगह २ रास्ते में वृक्षों से लटकते हुए निर्जीव मनुष्य दिखाई देने लगे। दो दिनमें ४२आदमी इस तरह फांसीपर लटकाये गये! वे जहां कहीं विश्राम करनेके लिये ठहरते, वहींके दो-चार गांव जला देते थे। इसी समय ३री जुलाईको लखनऊ से सर हेनरीलारेन्सका भेजा हुआ एक दूत सेनापतिके पास आकर बोला :—अब कानपुरकी रक्षा होनेकी कोई आशा नहीं है! नगर शत्रुओंके हाथ चला गया है, सेना-पति आत्म-समर्पण कर चुके है और उनके साथ-ही-साथ वहां के सभी गोरे मारे जा चुके है।"

तुरत ही यह खबर इलाहाबाद भी पहुंच गयी; पर नील

नवाँ अध्याय।
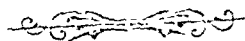
कानपुर काण्ड।
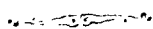
इस विद्रोहके इतिहासमें सबसे अधिक विचित्र, कौतूहल-वर्द्धक और मर्मस्पर्शी घटनाएँ कानपुर की ही हैं; इसीलिये हम इस अध्यायमें उन घटनाओंपर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं।

अपनी पत्नी बना लिया था, इसलिये इन बातोंके अच्छे जानकार होनेका दावा करते थे।

मईके आरम्भमें तो कानपुर बड़ा ही शान्त रहा, पर १४ वीं मईसे यहांके बाजारोंमें भी मेरठ तथा दिल्लीकी घटनाओंकी नोन-मिर्च लगी रिपोर्टें फैलने लगीं। सिपाहियोंमें भी हलचल पैदा होने लगी। यहां भी खबर उड़ी कि अँगरेज हमारी जाति और धर्मका नाश करनेके लिये खानेकी चीजोंमें मिलावट कर रहे हैं और हमारे लिये गाय और सुअरकी चर्बी लगा हुआ टोटा तैयार हुआ है। धीरे धीरे सिपाहियोंको अँगरेजोंपर सन्देह होने लगा और वे उन्हें अपने शत्रु समझने लगे। इसी समय शहरके यारोंने और भी कितनी ही तरहकी मनगढ़न्त खबरें इधर उधर फैलानी शुरू कीं। जिनमें एक यह भी थी, कि अँगरेजोंने यहांके सब हिन्दू-मुसलमान–सिपाहियोंको वेमौत मार डालनेके विचारसे परेडके मैदानमें बारूद जमा कर रखी है।

इसी तरहकी अफवाहें उड़-उड़कर सिपाहियोंको चञ्चल करने लगीं। वे अपने सेनापतिका पद-पदपर अपमान करने को तैयार हो गये। सेनापति ह्वीलरको जब यह बात मालूम हुई तब वे बड़े हैरान हुए। मेरठ और दिल्लीकी खबरें सुन सुनकर सिपाहियोंकी चञ्चलता और भी बढ़ने लगी। यह देख सभी अँगरेज भयसे थर्रा उठे। उनका दिनको खाना और रातको सोना हराम होने लगा। बेजड़-बुनियादकी बातें सुन कर भी वे यहांतक डर जाते कि शहर छोड़कर भाग जानेकी बात सोचने लगते थे। रातको जहां कहीं कुछ खटका हुआ

कि इनके दिलोंमें यही खटका पैदा हो जाता, कि कहीं सिपा-
हियोंका दल तो नहीं चला आ रहा है।

कानपुरका अस्त्रागार गंगाके किनारे था और ऊँची ऊँची
मजबूत चहारदिवारियोंसे घिरा हुआ था। कानपुरके वृद्ध
सेनापतिने सोचा कि सब अँगरेजोंको वहीं पहुंचा दिया जाये,
तो अच्छा हो। अस्त्रागारमें तोप, बन्दूक और बारूदकी कमी
नहीं थी। वहाँ सैनिकोंके रहनेके बहुतसे घर भी बने हुए थे,
इसलिये वहीं रहना उन्हें सबसे अधिक सुरक्षित जान पड़ा।
खजाना और जेलखाना भी वहांसे दूर नहीं थे। पास ही अस-
पताल भी था। पर सेनापतिको यह विचार बादको पसन्द
नहीं आया। उन्होंने सोचा, कि यहांसे छावनी छः मील दूर
है, इसलिये इस जगह सबके चले आनेसे बेचारे गोरे सिपाही
बहुत दूर पड़ जायेंगे। इसीलिये उन्होंने एक विस्तृत समतल-
क्षेत्रमें चारों ओरसे चार फुट ऊँची दीवारें खिंचवाकर वहीं
सबको लाकर रखनेका विचार किया और इसी इरादेसे वहां
रसद जमा करनी भी शुरू की। पर २५ दिनोंसे अधिककी रसद
न जमा हो सकी। उन्होंने और भी सोचा कि सम्भव है यहां
के सिपाही हमपर हमला न कर ठेठ दिल्लीकी ओर चले जायें—
तबतक हमारे पास कलकत्तेसे काफी मदद पहुंच जायेगी।
इन्हीं सब बातोंको सोच-विचारकर उन्होंने यहीं सब अँगरेजोंको
बुलवा भेजा और सर हेनरी लारेन्सके नाम एक पत्र लखनऊ
भेजकर उनसे कुछ फौज मांगी।

इस समय अवधके इलाकेमें भी सिपाहियोंके रंग बदल

शङ्का और भी प्रवल हो उठी। फिर क्या था देखते-देखते सब लोग अपने अपने घोड़ेपर सवार हो वारकोंसे वाहर निकल आये। पर जव फौज और तोपोंने उनका कुछ अनिष्ट नहीं किया और अपनी अपनी राह चली गयीं, तब इनका सन्देह दूर हो गया और ये लोग आपसमें वातें करने लगे। वातचीतका सारांश यही था कि इन अँगरेजोंकी नीयत खराव हो गयी है, ये हमारी जाति और धर्म्म नष्ट करनेको तुले हुए हैं। हमारे ऊपर तिलभर भी विश्वास नहीं करते, तभी तो सिलहखाने और खजाने पर गोरे सैनिकोंका पहरा वैठाया गया है। इत्यादि, इत्यादि।

जिस समय सिपाहियों में इस तरह की वातें हो रही थीं; उस समय रसद विभाग का एक अँगरेज कर्मचारी भी वहीं था। वह उन लोगों के सन्देह को दूर करने तथा अँगरेज-सरकार की नेकनीयती सावित करने की वड़ी देर तक चेष्टा करता रहा, पर किसीने उसकी वात न मानी। सव लोग तरह तरहकी वातें कह कर अँगरेजों को वदगुमान और वदनीयत सावित करने लगे। हाल ही में एक दिन अँगरेज सैनिक अफसर ने नशे की हालतमें एक सन्तरीको लक्ष्य कर गोली चलादी थी। सौभाग्य से गोली उसके नहीं लगी, नहीं तो वेचारा मुफ्तमें मारा जाता। दूसरे दिन उस सिपाहीने जव उक्त अफसर पर मामला दायर किया तव जज साहव ने उसे पागल वतला कर साफ छोड़ दिया। सिपाहियोंने इस घटना का उल्लेख करते हुए उस कर्मचारी से कहा,—"देखो, यह कितना वड़ा अन्याय है! अगर कसी हिन्दुस्तानी ने इस तरह किसी अँगरेज पर गोली चलायी

होती तो वह जरूर ही फांसी पर लटका दिया जाता।" इस पर बड़ा विवाद होने लगा। चारों ओरसे वहुतसे सिपाही आकर इकट्ठे हो गये। अब तो उस अकेले अँगरेजका कलेजा कांप गया। एक हवलदारने वीचमें पड़कर झगड़ा निपटा दिया और वह अँगरेज धड़कते हुए हृदयके साथ अपने निवास-स्थान पर चला गया।

इसी तरह सिपाहियों और अँगरेजों में मनोमालिन्य बढ़ता चला गया। अँगरेज लोग अपनी रक्षा के लिये जितनी ही सावधानी करने लगे, उतनी ही सिपाहियों की आशङ्का भी बढ़ने लगी। साथ ही वे यह भी समझने लगे, कि अँगरेज बेतरह डर गये हैं। इसीसे उन्होंने सोचा, कि इन डरे हुए अँगरेजोंको हरा देना कोई बड़ी वात नहीं—हम लोग व्यर्थ ही इतने दिनों से इन्हें दृढ़ और साहसी समझे बैठे थे। कहनेका मतलब यह; कि इस समय अँगरेज तो सिपाही-मात्रको अतातायी समझते थे और सिपाही सब अँगरेजों को डरपोक, विश्वासघातक और गुप्त-शत्रु समझ रहे थे।

इसी तरह सारा मई-मास कट गया, कहीं कुछ गड़बड़ न हुई। यह देख, वृद्ध सेनापति ह्वीलर ने सर हेनरीलारेन्स की सहायता के लिये २ सेनापतियों के अधीन ५० सैनिकोंको लख-नऊ भेज दिया। सिपाहियोंने सोचा,—"इनका इतना बल और घट गया, यह भी अच्छा ही हुआ!"
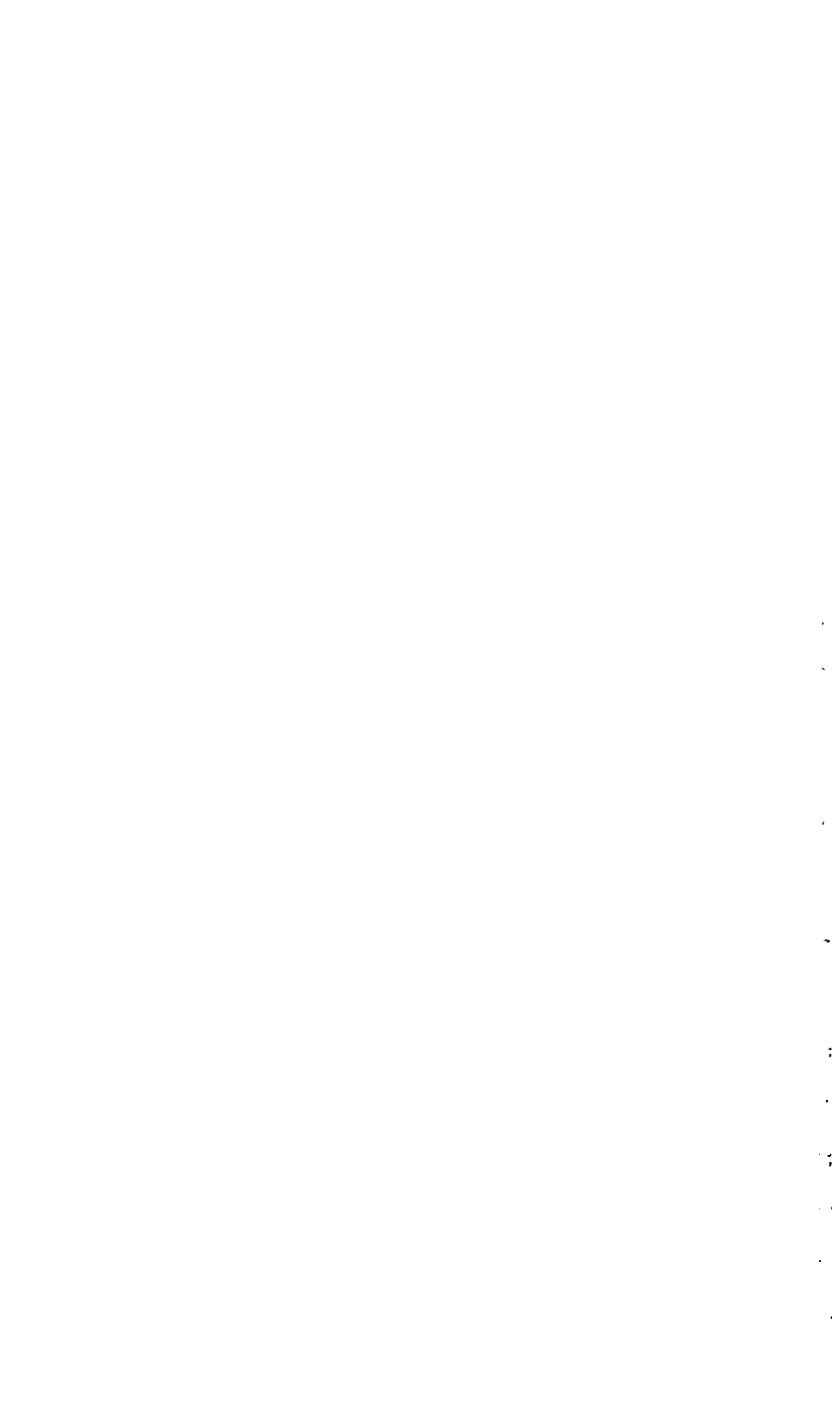
देने लगी। वाजा[illegible]र उन्होंने उसेही अपना वकील बनाकर विला-
नवावगंज में [illegible] था; पर वहाँ उसकी बात किसीने नहीं सुनी और
कहते हैं, कि [illegible]हब का काम तो खटाई में फूलता रह गया और अजी-
की कोई [illegible] गोरी बीबियों की मण्डली में मौज करने लगा। वह
[illegible]द दर्जे का खूबसूरत और मिठबोला था, इसलिये मेमें उसे
बहुत चाहती थीं। विलायत से लौट कर वह रूम की राजधानी
कुस्तुनतुनिया में आया, उस समय क्रीमिया-युद्ध के कारण युरोप
में बड़ी खलबली मची हुई थी। उसी युद्ध का हालचाल मालूम
करने के लिये वह रूम की राजधानी में चला आया। वहाँ जा
कर उसने देखा, कि अँगरेज लोग रूसियों के गोलों के आगे बेत-
रह हार रहे हैं। यह देख कर उसका जला-भुना हृदय बहुत
कुछ ठंडा हुआ; क्योंकि वह अँगरेजों का कट्टर शत्रु हो गया
था और उनकी हार उसकी खुशी की बाईसथी। इतिहास के
पाठकों को मालूम है, कि सन् १८५४—५५ में यह युद्ध इङ्गलैण्ड
फ्रांस, रूम और सार्डिनिया ने एक साथ मिल कर रूस के साथ
ठाना था। अँगरेजों को हारते देख, अजीमुल्लाह ने सोचा, कि
मैं अपने देशमें लौटने पर इन्हें और भी छकानेका उपाय करूँगा।
उसके बाद जब अपने देशमें आया, तब भीतर-ही-भीतर अँगरेजों
के साथ शत्रुता रखता हुआ, ऊपर से उनसे दोस्ती भी रखने
लगा।

विलायतसे लौट आने पर जब उसने अपने उद्देश्यमें विफल
होने का समाचार नानासाहब को सुनाया, तब वे बड़े ही दुखी
। उन्हे अँगरेजों पर बड़ा क्रोध हुआ। अजीमुल्लाह ने क्रीमिया-

युद्धमें अँगरेजोंकी हार का हाल सुना कर नानासाहब को मौका पाकर अँगरेजों की इस बेईमानी का बदला वसूल करने के लिये खूब ही उभाड़ा। नाना साहब भी अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

इधर उनके बिठूर वाले राजभवन में और भी कितने ही अँगरेजों के शत्रु निवास करते थे। उनके भाई बालराव और बाबा भट्ट, और भतीजा रावसाहब और लड़कपन के साथी तांतियाँटोपी भी उनको अँगरेजों के विरुद्ध उभाड़नेसे बाज नहीं आये। खास कर ताँतियाटोपी तो लड़कपनके साथी होने के कारण नानासाहब के प्रधानमन्त्री ही हो रहें थे, इसी लिये यद्यपि नाना साहब इसी आशा से अङ्गरेजोंसे मिले जुले रहते थे कि एक-न-एक दिन ये लोग मेरा नष्ट अधिकार दिलवाही देंगे, तथापि उनका दिल अँगरेजोंसे हिलमिल नहीं गया था। रात दिन साथ रहने वालोंने उन्हे अँगरेजों का विश्वासी मित्र नहीं बने रहने दिया। अँगरेजोंसे नानासाहब इतने मिले-जुले रहते थे, कि कानपुरके कलक्टर ने सरकारी खजाना तक उनकी संरक्षकता में सौंप दिया था; पर वे अधिक काल तक इस विश्वास की रक्षा न कर सके—अजीमुल्लाह और ताँतियाटोपी आदि ने उन्हें भी बागी बना ही दिया।

कोई-कोई अँगरेज इतिहास-लेखक तो क्षण भर के लिये भी यह बात मानने को तैयार नहीं, कि नानासाहब का चित्त कभी अँगरेजोंके प्रति शुद्ध था। इसका कारण यही है, कि लार्ड डलहौसी की क्षुद्र नीति ने उनकी बड़ी हानि की थी, इसलिये उनके दिमागमें यह बात आती ही नहीं, कि कभी कोई उतारा

उनके बूढ़े सूबेदार भवानीसिंह ने उन्हें लाख समझाया-बुझाया; पर उन्होंने उसकी बात न मानी और बिगड़कर कहा,—"या तो तुम भी हम लोगों के साथ हो जाओ, अथवा मरने के लिये तैयार हो जाओ।" बूढ़ा अपनी धुन का पक्का था। उसने बागियों की बात का प्रतिवाद किया और अपने दल के झंडे और छावनी के अन्दर वाले खजाने की रक्षा करने के लिये तैयार हुआ। यह देख, जोशमें आकर कितने ही आदमियों ने उस पर तलवार चलादी, जिससे वह घायल हो, अधमरा होकर गिर पड़ा। उसको यों गिरते देख, सिपाही रुपये-पैसे और अस्त्र-शस्त्र लिये हुए चल पड़े। उन्होंने ५ नं० पैदल-सेना में आकर वहां के लोगों को उभाड़ा और उन्हें साथ लेकर नवाबगंज की ओर चल पड़े। यहीं पर ख़जाना, जेलख़ाना और सिलहखाना आदि थे। यहीं से दिल्ली को भी रास्ता गया हुआ है। इस लिये बागी सिपाही सीधे नवाबगंज की ही तरफ चले। रास्ते में जो घर मिले, उनमें आग लगाकर उन्होंने माल असवाब लूट लिये। चारों ओर सर्वनाश की लीला जारी हो गयी। हाँ, अफसरों और अन्यान्य अँगरेजों की हत्या का उन्होंने उस समय तक विचार नहीं किया था।

जब ये दोनों दल नवाबगञ्ज पहुंचे, तब नाना साहबके अनुचरगण उनकी सहायता करनेके लिये आगे बढ़े। इस समय ५३ नम्बर पलटनके कुछ सिपाही खजानेके पहरेपर नियुक्त थे, पर इनकी संख्या बागियोंसे कम थी, इसलिये ये देरतक खजाने की रक्षा न कर सके—खजाना लुट ही गया। इसके बाद

कैदखानेका फाटक तोड़कर कैदियोंको छुटकारा दे दिया गया और सरकारी कचहरियोंके कुल कागज-पत्र जलाकर खाक कर दिये गये। अस्त्रागारकी कुल तोपें और बारूद आदि सामान बलवाइयोंके हाथ आ गये। सब लूटका धन गाड़ियों और हाथियों पर लादा गया और बलवाई बड़ी खुशीके साथ दिल्ली चलनेकी तैयारी करने लगे। इधर उनके दूतगण शेष सैनिक दलोंमें जाकर उन लोगोंको भी भड़काने लगे। कुछ तो इनके बहकानेसे और कुछ बूढ़े सेनापति ह्वीलरके बुद्धि-दोषसे विद्रोहियोंसे जा मिले। सेनापतिने अपने अत्यन्त हितैषी सैनिकोंको भी अविश्वासी समझकर छावनीसे निकलवा दिया और उनपर तोप छोड़नेका हुक्म जारी कर दिया। इसी लिये ये लोग भी विद्रोही हो गये। जिस समय उनमेंसे बहुत-से लोग अपने खाने-पीनेका प्रबन्ध कर रहे थे, उसी समय उन्हें गोला छूटनेकी आवाज सुनाई दी। एक बार, दो बार, तीन बार आवाज सुनते ही वे घबरा उठे। वे जानते थे, कि हम तो सच्चे सेवक हैं—ह

उन्हें अँगरेजोंका दुश्मन बना ही रखा था ; पर कुछ दिन बीत जानेसे और साहबोंसे मिलने-जुलनेसे उनकी वह शत्रुता सोयी हुई थी। अजीमुल्लाहखांके दिखाये हुए सब्जबागने उस शत्रुता की सूखती हुई लताको फिरसे पानी सींचकर मानो हरा कर दिया। प्रायः बहुतसे इतिहास-लेखकोंने अपने अपने इतिहास में नाना साहबके बारेमें इसी तरहकी बात लिखी है ; पर उनके बाल्य-बन्धु तांतियाटोपीका कहना है कि सिपाहियोंने नाना-साहबको पकड़ कर कैद कर लिया था और उन्हें जबरदस्ती अङ्गरेजोंके खिलाफ उठ खड़े होनेको लाचार किया था। चाहे जैसा हो, पर वे अङ्गरेज़ोंके शत्रु हो गये। लार्ड डलहौसीका किया हुआ उनका सर्वस्वहरण, अजीमुल्लाहकी मन्त्रणा और सिपाहियोंकी उत्तेजना—ये तीनों बातें उनकी इस अङ्गरेज-विद्वेषिताका कारण हुईं।

जब नानासाहब उनका साथ देनेको राजी हो गये, तब सिपाहियों ने उन्हें अपना राजा मान लिया और उनका नाम ले लेकर सैन्य-सङ्गठन आदि अनेक कार्यों का अनुष्ठान किया जाने लगा। पूर्वोक्त सूबेदार टीकासिंह बलवाई सिपाहियों के प्रधान सेनापति बनाये गये और जमादार दलरञ्जनसिंह तथा सूबेदार गङ्गादीन क्रमशः ५३ वीं और ५६ वीं पलटन के सेना-नायक नियत हुए। यद्यपि ये तीनों सेनापति हिन्दू ही थे, तथापि इस समय हिन्दू और मुसलमान अपना पारस्परिक भेद-भाव भूलकर एक-दिल होकर काम कर रहे थे, इसीलिये किसीने चूं-चरा नहीं की।

छठी जून, शनिवार के दिन नाना साहब का भेजा हुआ एक पत्र सेनापति ह्वीलरके पास आया, जिसमें उन्होंने लिखा था, कि हम लोग अब बिना विलम्ब के आप लोगों पर हमला करेंगे —होशियार हो जाइये।

बलवाई सिपाही जब कानपुर से दिल्ली जाने लगे, तब यहां के अँगरेजों ने चैन की साँस ली और सोचा, कि अब हम लोग यहां से इलाहाबाद भाग जायेंगे। पर नानासाहब का विचार बदल जाने से सिपाही दिल्ली न जाकर कल्याणपुर से ही कानपुर लौटने लगे। उपर्युक्त तीनों सेनापतियों ने सब के दिलों में अँगरेजों के प्रति घोर घृणाके भाव उत्पन्न कर दिये। सब लोग अँगरेजों के खून के प्यासे हो उठे। सिपाहियों के कानपुर लौट आनेका समाचार सुन, सेनापति ह्वील्र के होश उड़ गये। उन्होंने सभी सिविल और मिलिटरी कर्मचारियों को उसी नये रक्षा-स्थान में बुलवा लिया; पर वह मिट्टीकी दीवार चाहे जब गोलोंसे उड़ा दी जा सकती थी, इसलिये सेनापति की यह तरकीब कितनी भद्दी थी, यह बात सहज ही अनुमान में आ जाता है।

अबकी बार सिपाहियों ने अँगरेजोंके उसी आत्म-रक्षा-स्थान पर आक्रमण करने का विचार किया और रास्ते में ईसाइयों को मारते-कूटते और लूटते हुए वहां आ पहुंचे। ठीक दोपहर के समय आक्रमण आरम्भ हो गया। उस समय उस स्थान पर ४६५ मर्द थे, जिनमें अनेक सैनिक आफिसर, सिविल आफिसर, गोरे सिपाही, व्यापारी और क्लर्क थे। उनकी स्त्रियोंकी संख्या

२८० थी और प्रायः इतने ही छोटे-छोटे बच्चे भी थे। इस तरह वहां प्रायः एक हजार गोरे जीव आत्म-रक्षा के लिये छिपे हुए थे। ईंटों के मकान, खर-पातकी छावनी—जो धूप रोकने में भी असमर्थ थी—मिट्टी की चाहरदिवारी और सामने उत्तेजित सिपाहियों की भीड़! इसीसे पाठक वृद्ध सेनापति की अदूर-दर्शिता का अनुमान कर लें। इसीलिये हेनरी गिल्बर्ट ने अपनी The story of Indian mutiny में लिखा है:—

(What madness of in capacity had chosen this place as a harborer of refuge for a thousand precious souls in a weltering sea of murderous rebels.)

अर्थात्-यह कोरी उन्मत्तता और बड़ी भारी मूर्खता थी, जो यह स्थान रक्तपिपासु विद्रोहियों के समुद्र-समान विस्तार के सामने सहस्रों अमूल्य प्राणों की रक्षा के योग्य आश्रय-स्थल समझा गया।—अन्तमें ठीक दोपहर के समय तोप की आवाज सुन पड़ी, सुनते ही सब अँगरेज एक बार घबरा उठे। जो लोग सिपाही थे अथवा सिपाही न होते हुए भी हथियार चलाना जानते थे, उनके हाथ में बन्दूक दे दी गयी और वे सेनापति की आज्ञा-नुसार जगह-जगह पर बन्दूक लिये खड़े हो गये। इधर विद्रोही उस स्थान पर लगातार गोले बरसाने लगे। स्त्रियां और बच्चे कातर-स्वर से चिल्लाने लगे! लाचार, उन्हें अस्पताल में पहुंचा कर सभी मर्द आत्म-रक्षा के लिये धृढ़ता-पूर्वक प्रस्तुत हो गये।

महाराज नानासाहब का नाम ले-ले कर उत्तेजित सिपा-हियों ने छठी जून से लेकर छब्बीसवीं जून तक खूब गोले बर-

साये। अँगरेजों की दुर्दशा सीमाको पहुंच गयी। इस समय अँगरेजों के सामने जैसी विपद दिखलाई दी, वैसी किसी इतिहास के किसी युद्ध में नहीं दिखाई दी होगी। शर्द मुल्क के रहनेवाले अँगरेज जेठ को कड़ी धूप में गोलों के सामने डटे रहने को लाचार हुए, इससे बढ़कर और आफत क्या हो सकती थी? स्त्रियों और बच्चों का तो और भी बुरा हाल हो रहा था। रात दिन ऐशोआराम और मौजकी गोद में पलनेवाली गोरी बीवियां और उनके लाड़ले बच्चे इस भयङ्कर विपत्ति में पड़ कर भय और कष्ट से सूख गये। उनके प्राण छटपटाने लगे।

सेनापति के हुक्मके मुताबिक सभी अस्त्र धारण करने योग्य अँगरेजोंको हथियार पकड़ा दिये गये; प्रत्येक मनुष्यको तीन २ सङ्गीनदार बन्दूकें दे दी गयीं। शिक्षित सैनिकों को आठ-आठ बन्दूकें तक दी गयीं। 'मरता क्या न करता?' इस कहावतके अनुसार वे लोग सामने मृत्यु की नदी लहराती देख, आत्मरक्षा के लिये प्रस्तुत हो गये।

इधर बलवाई भी चुप नहीं थे। सूबेदार टीकासिंहने शनिवार के दिन अस्त्रागार से तोपें ला-लाकर जगह-जगह रखवा दीं। रविवार के दिन सवेरे से हिन्दी और उर्दू में लिखे हुए घोषणापत्र सर्वत्र बांटे जाने लगे। इन घोषणापत्रों में हिन्दुओं और और मुसलमानों को अपने-अपने धर्मों की रक्षा के लिये एक हो जाने की सलाह और उत्तेजना दी गयी थी। इससे साधारण श्रेणी के हिन्दुओं और मुसलमानों में बड़ी उत्तेजना फैली। सर्वसाधारण बड़े उत्साह से सिपाहियों की सहायता के लिये आगे

बढ़ आये। जिन सब जमींदारों को अपना सनातन अधिकार नष्ट हो जाने के कारण अँगरेजों पर दिली नफरत हो गयी थी, वे लोग भी सिपाहियों से मिल गये। यदि केवल सिपाही बिगड़े होते, तो झटपट दबा दिये जाते; पर यहां तो बहुतेरे लोग; जिन्हें अँगरेजों की स्वार्थ-पूर्ण नीति ने पहले से ही वैरी बना रखा था, उनसे आ मिले थे, देश-भर में शान्ति-स्थापन करना उनके लिये कठिन हो गया था। इसीलिये अँगरेजों के धन-जन की भयङ्कर हानि हुई।

सोमवार तारीख ८ वीं जून से विद्रोहियोंका बड़ा भीषण आक्रमण होने लगा। रक्षा-स्थान में छिपे हुए वीर अँगरेज बड़ी बहादुरी और दिलेरी के साथ अपनी और अपने बाल-बच्चों की रक्षा करने लगे। विद्रोहियोंके गोले प्रति दिन उनकी जान लेने लगे। प्रतिदिन बहुतसे गोरे मरने या घायल होने लगे। जो लोग आज से पहले कभी लड़ने-भिड़ने के पास नहीं गये थे, वे भी वीरता के साथ अग्नि-शिखाके सामने डटे रहे। क्या इञ्जिनियर, क्या पादरी, क्या व्यापारी—सभी श्रेणी के अँगरेज लाचार सिपाही बन गये। प्रति दिन अपनी आँखों के सामने भयङ्कर काण्ड संघटित होते देख, गोरी बीबियों में भी साहसका सञ्चार हो गया। वे भी यथासाध्य मर्दों की मदद करने लगीं, तोभी बहुतसी स्त्रियां ऐसी थीं, जिनकी दुर्दशा का अन्त नहीं था। उनमें कितनीही आसन्न-प्रसवा हो रही थीं और कितनी ही के वहीं बच्चे भी पैदा हुए। प्रसव-यातनाके कष्ट के सिवा उन बेचारियों को और भी कितनी ही तरह के कष्ट उठाने पड़े।

एक स्त्री अपने दो छोटे-छोटे बच्चोंको गोद में लिये अपने स्वामी के पीछे-पीछे फिर रही थी। इसी समय एक गोली आकर उसके स्वामी के लगी। वह वहीं ढेर हो गया। उस स्त्री के दुःखकी सीमा न रही। वह रोती हुई अपने स्वामी के ऊपर गिर पड़ी। उसके एक बच्चे को भी गोली लगी और उसके भी दोनों हाथों में घाव लगा। बच्चे को गोद में लिये रहना भी उसके लिये असम्भव हो गया। और लोग उसे वहां से उठा कर घर के अन्दर ले गये। इस तरह की अनेक शोचनीय घटनाएँ प्रति दिन देखने में आती थीं। कितने ही स्त्री-पुरुष और बच्चे गोली खा-खाकर मरने लगे।

इधर सेनापति ह्वीलर प्रतिक्षण दूसरे स्थानों से सैनिकों को आनेकी राह देख रहे थे। उन्हें आशा थी, कि पंजाब से सर-जान लारेन्स अवश्य ही कुछ सैनिक भेजेंगे और इलाहाबाद से नील साहब भी आते ही होंगे। लखनऊ से सर हेनरी लारेन्स भी कुछ कुमुक अवश्य भेजेंगे, इसकी भी उन्हें पूरी उम्मीद थी। परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें कहीं से सहायता नहीं मिली। पञ्जाब से सर जान लारेन्स ने लिखा कि हमें तो स्वयं सहायता की आवश्यकता है, हम कहां से आपकी सहायता करें? लाचार सेनापति ह्वीलर ने जब कहीं से सहायता आती नहीं देखी, तब १४ वीं जून की शाम को उन्होंने एक पत्र लखनऊ के जज गोबिन्स साहब को लिखा, जिसमें अपनी दुरवस्था और सहायता की आवश्यकता के विषय में उन्होंने बड़े अधीरता-भरे शब्द लिखे थे। पर इसका भी कोई फल न हुआ। लाचार हो, उन्हें

अपने ही साहस, दृढ़ता और आत्म-त्याग के बल पर टिकना पड़ा। उन्होंने आत्मरक्षा करते हुए जीवन विसर्जन करने का सङ्कल्प कर लिया।

एक सप्ताह इसी तरह बीत गया। आठवें दिन जिन दो घरों पर फूस की छावनी थी और जिनमें रोगी, असमर्थ, बूढ़े, स्त्रियाँ और बच्चे भरे हुए थे, उनके छप्पर में आग लग गयी। यह देख, सब लोग बहुत घबराये और आग बुझाने की चेष्टा करने लगे। इधर बलवाइयों के हमले का ज़ोर भी बहुत बढ़ गया। बचाते बचाते भी दो सैनिक उसी आग में जल मरे। उक्त दोनों मकान जलकर भस्म हो जाने से स्त्रियों, और बूढ़े बच्चों के रहने योग्य कोई स्थान न रह गया। दिन की धूप और रात की ओस से बचाव की कोई सूरत न रही। और तो और, हमला करने वालों की गोलियों से वहां की तमाम चीजें नष्ट-भ्रष्ट हो गयीं। डाक्टरी के यन्त्र और दवाइयों के केस और आलमारियां भी नष्ट होने से न बचीं। इस लिये बीमारों और घायलों की चिकित्सा होनी भी कठिन हो गयी। घोर कष्ट और आर्त्तनाद के साथ लोग अकाल मृत्यु के शिकार होने लगे।

हम ऊपर भवानीसिंह नामक एक प्रभुभक्त सूबेदार का हाल लिख चुके हैं। अपने स्वदेशियों और स्वधर्मियों का पक्ष छोड़ अँगरेज़ों का तरफदार हो गया था, इसी लिये सिपाहियों ने उसे बेतरह घायल कर दिया था। उसे इसी आश्रय-स्थान में लाकर अँगरेज़ उसकी उचित सेवा-शुश्रूषा कर रहे थे। इसी समय बाहर से एक गोली उसके और लगी, जिससे उसकी

मृत्यु हो गयी। उसी केसे सरकार के प्रायः १०० नमकहलाल नौकर इसी जगह पड़े हुए थे। उन्होंने अँगरेजों की बड़ी सहायता की; पर जब रसद-पानी चुकने लगा, तब उन्हें थोड़ा-बहुत रुपया देकर वहाँ से बाहर चले जाने के लिये कहा गया। लाचार, वे इच्छा न रहते हुए भी वहाँ से चले गये। कितने तो रास्ते में मारे गये और कितने ही सकुशल अपने-अपने घर पहुँच गये। क्यों अँगरेजों ने ऐसे वीरों, नमकहलालों और प्रभुभक्तों को अपने पास न रहने दिया, इसका कारण कुछ समझ में नहीं आता: शायद सब काले चमड़ेवालों पर उन्हें यही सन्देह हो रहा था, कि कहीं मौका पा ये भी न बदल जायें, इसी लिये उन लोगों ने इन्हें भी बला की तरह टाल दिया। अथवा रसद के अभाव से इन्हें दूर कर दिया गया; क्योंकि जितनी रसद थी, उससे अँगरेजों की ही उदर-पूर्त्ति होनी कठिन थी, फिर इन्हें कोई कहां से और कब तक खिलाता?

क्रमशः बहुत से अँगरेज मरने लगे। कानपुर के कलक्टर हिलर्सडन (Hillrsdon) साहब अपने घर के बरामदे में खड़े हो, नानासाहब से सन्धि कर लेने की चेष्टा कर रहे थे, इसी समय एक गोली आ लगी और वे पास ही खड़ी अपनी प्यारी पत्नी के पैरों के पास गिर कर परलोक सिधार गये। इनके दो दिन बाद गोले की चोट से दीवार का कुछ हिस्सा टूट कर मिसेस हिलर्सडन के सिर पर फट पड़ा, जिससे वह बेचारी भी वैधव्य के दुःख से छुटकारा पा गयी। बूढ़े सेनापति व्हीलर के पुत्र लेफ्टिनेण्ट व्हीलर, घायल हो, एक कमरे में सोये

हुए थे। उनके पिता, माता और वहनें पास ही वैठी हुई थीं—एक वहन उनके पैरों के पास वैठी हुई उन्हें हवा कर रही थी। एकाएक एक गोला आकर सेनापतिके घायल पुत्र का सिर उड़ा ले गया! यह शोचनीय दुर्घटना देख, माँ, वाप और वहनों की छाती फट गयी और वे जोर २ से रो उठे। लिण्ड-से नामक एक सैनिकके मुँह पर ही गोला आ लगा, जिससे उसका चेहरा विगड़ गया और आंखें फूट गयीं—वेचारे की जान न वची, कुछ ही समय वाद वह भी मर गया। इसी तरह कितने ही सैनिकों और उनके स्त्री वच्चों को गोले-गोलियों के आघात से प्राण-त्याग करना पड़ा।

यद्यपि अँगरेजों की ओर से भी गोले-गोलियाँ छूट रही थीं, तथापि विद्रोहियों का जोर घटना तो घटना, और भी वढ़ता चला गया। कुछ लोग मरते तो जरूर ही थे, पर शीघ्र ही वहुत से लोग इधर-उधर से आकर उनमें मिल जाते थे। आजमगढ़, वनारस, लखनऊ और इलाहावाद के वहुत से विद्रोही सिपाही उनसे आ मिले थे। मीर नवाव नाम के एक मुसल-मान ताल्लुकेदार, जो लार्ड डलहौसी के सताये हुए थे, अपने वहुत से हथियारवन्द सिपाहियों के साथ विद्रोहियों की सहा-यता करने को चले आये थे। कहने का मतलव यह, कि उधर एक वन्द जगह में पड़े हुए अँगरेजों की संख्या दिन दिन छीजती जाती और इधर उत्तेजित जनता के अधिकाधिक लोग आ-आकर विद्रोहियों की संख्या वढ़ाते चले जाते थे। स्थान और समय के अभाव से जो अँगरेज उस रक्षा स्थान में मर जाते, वे

एक कूएं में डाल दिये जाते थे। इस तरह बेचारे मुर्दों की मरने पर भी दुर्गति ही होती थी!

हमला करनेवालोंने नव-निर्मित प्राचीरके उत्तरकी तरफ अँगरेजोंके क्रीड़ा-गृहके पास, तोप भिड़ा रखी थी। नन्हें नवाब नामक एक धनी मुसलमान यहांके अध्यक्ष बनाये गये थे। पहले हिन्दू-सिपाहियोंने इनका और बाकरअली नामक एक अन्य मुसलमानका घर लूट लिया था और दोनोंको कैद कर लिया था; पर पीछे मुसलमान-सिपाही जब इस बातपर अड़ उठे तब उन्हें भी नानासाहबके समान सम्मान प्रदान किया गया और वे भी छुटकारा पाकर सिपाहियोंकी मदद करने लगे। अजीज़न नामकी एक रण्डी सिपाहियोंकी बड़ी प्यारी थी। इसी स्थानपर तोपके पास खड़ी खड़ी सिपाहियोंको उत्साहित कर रही थी। इस रमणीके साहस और उत्तेजनाने सिपाहियोंके दिल दूने कर दिये थे। दक्षिणकी तरफ नन्हें नवाब अपनी तोप लिये गोले बरसा रहे थे। पूर्वकी तरफ बाकर अली अपना जौहर दिखला रहे थे। दक्षिण-पश्चिमके कोनेपर एक बड़ीसी अट्टालिका थी। उसे अङ्गरेज लोग "सावेडार हाउस" कहा करते थे और सर्वसाधारणमें वह "सवेदा कोठी" के नामसे मशहूर थी। यहांपर हिन्दुओंका दल डटा हुआ था - इसी कोठीमें नानासाहब अपने परिवार सहित विराज रहे थे। यहींपर सूबेदार टीकासिंहका भी तम्बू गड़ा हुआ था। तांतियाटोपी आदि नाना साहबके चतुर मन्त्री भी यहींसे अङ्गरेजोंकी सर्वस्व हानि करनेका [illegible]

रहे थे। इस प्रकार हिन्दू मुसलमानोंने मिलकर चारों ओरसे अँगरेजोंके इस आश्रय-स्थानको घेर लिया था।

शान्ति-रक्षा और विचार-कार्य करनेके लिये नाना साहबकी ओरसे कितने ही अधिकारी नियुक्त कर दिये गये थे। हुलास-सिंह नामक एक व्यक्ति प्रधान शान्तिरक्षक बनाया गया था। बाबा भट्ट प्रधान विचारक बने हुए थे। अज़ीमुल्लाहखाँ और ज्वालाप्रसाद भी शान्तिरक्षाके कार्यमें लगे हुए थे। इनलोगों की बातों का नाना साहब पर बड़ा प्रभाव पड़ता था, इसलिये वे खूब मनमानी घरजानी कर रहे थे।

२१ वीं जून को अयोध्या के उत्तेजित अधिवासी इन लोगों से आ मिले। २३ वीं जून को आक्रमणकारियों ने युद्ध की बड़ी प्रबल तैयारी की। आज से सौ वर्ष पहले लार्ड क्लाइव ने ठीक इसी दिन पलासी के मैदान में अँगरेजों की विजय-लक्ष्मी को इस देश में ला बिठाया था। नानासाहब के मन्त्रियों ने कहा, कि बस आज ही अँगरेजों की सत्ता का अन्तिम दिन है और आप ही इस देश के राजा होंगे। इसी लिये आज के दिन सिपाहियों के उत्साह की मात्रा बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। उस समय खासी लड़ाई हुई।

इधर दिन-दिन अँगरेजों के आदमी कम होते चले जाते थे, रसद चुकती चली जाती थी। प्रायः २५० अँगरेजों के मुर्दे एक कूएँ में डाल दिये गये। तीन सप्ताहों तक उनके कष्टों की कोई सीमा नहीं रही। उनकी तोपें भी प्रायः सब बेकार हो गयीं। बहुतेरे भूख-प्यास और घाव के मारे

तड़प-तड़प कर दिन विताने लगे। उन लोगोंने कितनी वार वाहरसे मदद मँगानेके लिये गुप्त-दूत भी भेजे ; कोई कोई तो सिपाहियों द्वारा मार डाले गये ; और जो लोग किसी तरह वचकर निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचे भी उनका लौटना असम्भव हो गया। इसी समय एक दिन एक अँगरेज महिला नानासाहव के खीमेसे एक पत्र लेकर आयी जिसमें अजीमुल्लाहखांके हाथके लिखे हुए ये ही कई एक वाक्य लिखे थे :—"महारानी विक्टोरिया की प्रजाके नाम—लार्ड डलहौसीकी कार्रवाइयोंसे जिनका किसी तरहका लगाव नहीं है, अथवा जो लोग हथियार नीचे रख देनेके लिये तैयार हैं, वे चुपचाप इलाहावाद चले जा सकते हैं।" परन्तु सेनापतिको इस पत्रपर विश्वास नहीं हुआ। वे किसी प्रकार औरत-वच्चोंको वलवाइयोंके भरोसेपर छोड़नेको राजी नहीं हुए। नये छोकरोंने भी हथियार छोड़कर नामर्दों की तरह भाग जानेकी अपेक्षा अन्त तक लड़ना ही पसन्द किया। ह्वीलर साहव, मूर और ह्विटिंग नामक अपने दो सहयोगियोंके साथ इस वारेमें सलाह करने लगे। अन्तमें यही तय पाया कि स्त्रियों, वच्चों और रोगियोंको यहांसे भेज देना ही ठीक है। इसके वाद उपर्युक्त अङ्गरेज महिलाने नाना साहवके पास आकर कहा, कि सेनापतिगण आपके पत्रपर विचार कर रहे हैं, दो दिनके वाद वे उसका उत्तर देंगे। यह सुनकर सिपाहियोंने गोला वरसाना वन्द कर दिया।

२६ वीं तारीख के सवेरे ही अजीमुल्लाह और ज्वालाप्रसाद नानासाहवके दूत वन कर अँगरेजोंके इस प्राचीर-वेष्ठित स्था-

स्थानके पास आये। कप्तान मूर, ह्विटिङ्ग और डाकघरके कर्म-चारी रोडे साहब उन लोगों से मिलने आये। बड़ी देरकी बात चीत के बाद दोनों पक्षों की ओर से यह बात तै पायी, कि अँग-रेज लोग यह स्थान छोड़ दें, अपनी तोपें और रुपया पैसा हमारे हवाले कर यहां से चले जायें। हां, उन्हें अपनी बन्दुकें और छोटे-मोटे हथियार ले जाने दिया जायगा। घाट पर उनके लिये नावें तैयार रहेंगी। नानासाहब स्वयं जाकर उन्हें नावों पर सवार करा देंगे। खाने-पीने के लिये काफी आटा-मैदा और भेड़ बकरे भी दिये जायेंगे। यह सब शर्तें एक कागज पर लिखी गयीं और वह कागज अजीमुल्लाह के हवाले किया गया।

तीसरे पहर एक आदमी अँगरेजों के पास आकर बोला,—"महाराज नानासाहब को सब शर्त्तें स्वीकार हैं; पर उनका हुक्म है, कि आप लोग आज ही रातको यहां से चले जायं।" इस पर ह्वीलर साहब ने आपत्ति की। उन्होंने कहा,—कि आज रातको सबका यहां से जाना नहीं हो सकता, इसलिये कल सवेरे तक समय देना ही पड़ेगा। यह सुन, वह दूत बोला,—"महाराजको आप लोगों की वर्त्तमान स्थिति भली भांति मालूम है। यदि फिर गोले बरसने आरम्भ हुए, तो आप लोगों में से एक भी जीता न बचेगा, इसलिये आपलोग सीधे मन से उनकी बातें मान लीजिये।" पर सेनापति इस धमकी से जरा भी न डरे, उन्होंने झटपट कहा,—"हम लोग भले ही सब के सब मारे जायं; पर इस रात को तो यहां से नहीं टल सकते।" यह सुन दूत लौट गया। शामको वह फिर लौटा और बोला;—

"अच्छी बात है, आप लोग कल सवेरे ही यहां से जाइयेगा।" इसी समय तीन आदमी अँगरेजों की कार्रवाइयों पर नजर रखने के लिये नानासाहब के भेजे हुए यहां आये, जिनमें एक ज्वालाप्रसाद भी था। ज्वालाप्रसाद ने उस समय बूढ़े सेनापति से खूब मीठी मीठी बातें कीं और उन लोगों को जो कष्ट उठाने पड़े थे, उनके लिये सहानुभूति प्रकट की।

सूर्यास्त होते न होते अँगरेजों ने अपनी तोपें शत्रुओं को सौंप दीं। इसके बाद तीन अँगरेज गङ्गा के किनारे जाकर देख आये, कि ४० नावें उन्हें लेजाने के लिये घाटपर बँधी हुई हैं। टाड नामक एक अँगरेज ने कुछ दिनों तक नानासाहब को अँगरेजी पढ़ायी थी। वही, नानासाहब से सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कराने के लिये 'सवेदा' कोठी पर गये। नानासाहब उनसे बड़ी सज्जनता से पेश आये और वे हस्ताक्षर कराकर सन्तुष्ट-चित्त से लौट आये।

सूखे हुए चेहरे, मलिन वेश और कातरनयन देख, बहुतों की आंखें भर आयीं। कितने ही विस्मय से भर गये और कितने ही पहिले से भी अधिक भयङ्कर भाव का परिचय देने के लिये मौका ढूँढ़ते रहे।

गङ्गा के सती-चौरा-घाट पर नौकाएं बँधी हुई थीं। यह स्थान अँगरेजों के उक्त रक्षास्थान से १ मील दूर था। घाट पर जाने का जो रास्ता था, उसमें एक जगह एक सफेद रंग का लकड़ियों का बना हुआ पुल था। अँगरेज लोग इसी पुल की राह घाट की तरफ जाने लगे। सिपाही सब बीच बीच में उन लोगों के पास आकर तरह तरह की बातें पूछते थे। अनेक अँगरेज अफसरों के मरने का हाल सुन कर उन्होंने दुःख भी प्रकट किया।

कहते हैं जिस समय सब लोग सवारियों पर चढ़ चुके थे, उस समय केवल ३४ वीं पलटन के कर्नल इवर्ट ही बाकी रह गये थे। वे घायल थे और सब के अन्त में पालकी पर सवार हुए थे। उनकी सहधर्मिणी भी उनकी पालकी की बगल से चली जा रही थी। जब सब पालकियां आगे बढ़ गयीं, और वह पालकी सब के पीछे रह गयी, तब एकाएक उन्हीं की पलटन के ७।८ सिपाही वहां चले आये और कड़क कर कहारों से बोले, कि पालकी नीचे रखदो! कहारों ने उनकी आज्ञा का पालन किया। कर्नल चकित होकर सिपाहियों की ओर देखते हुए बोले,—"क्यों भाइयो! क्या इरादा है?" सिपाहियोंने उनकी नक़ल करते हुए कहा,—"कहिये! कैसी बढ़िया

क़वायद हो रही हैं ?" यह कह, वे बड़े जोर से हँस पड़े और एक साथ कितनी ही तलवारें उनके ऊपर बरस पड़ीं। इसके बाद उन हत्यारों ने उनकी पत्नी को भी मार डाला।

अस्तु ; किसी न किसी तरह और सब लोग गङ्गाके किनारे आ पहुंचे। उस समय गंगा में पानी बहुत ही कम था, तीर के पास बहुत बड़ी रेती पड़ गयी थी। इस लिये नावें तीर से दूर थीं। अफसर लोग घुटने भर पानी में खड़े होकर नावों पर रोगियों तथा स्त्री बच्चों को सवार कराने लगे।

इसी समय अकस्मात् कहीं से बिगुल बज उठी, जिसकी आवाज़ सुनते ही नावों के माँझी—मल्लाह कूद कूदकर तीर की ओर दौड़ पड़े। पहले से जो संकेत उन्हें किया गया था, तदनुसार उनमें से कितनों ने नावों के छप्पर में आग भी लगा दी। तुरत ही वह फूस की छावनी जलने लगी !

कहा जाता है, कि ताँतियाटोपी के हुक्म से कितनी ही तोपें तीर पर भिड़ा रखी गयी थीं।

चली जा रही थी। उसके साथ उसका १५ वर्ष का एक नौजवान लड़का भी था। उस अंगरेज बालक के मां बाप पूर्वोक्त प्राचीर के अन्दर ही मर चुके थे, इसी लिये वह दासी उस बच्चे को प्राण के समान पाल रही थी। सिपाहियों ने उसकी गोदमें एक अँगरेज के बच्चे को देख कर कहा,—"तुम उस बच्चे को हमारे हवाले कर दो और चुपचाप घर चली जाओ।" पर बुढ़िया ने उनकी बात नहीं मानी। लाचार, सिपाहियों ने उसे मार कर उसकी गोद से जबर्दस्ती वह लड़का छीन लिया और उसे भी मौत के हवाले कर दिया! केवल उसका अपना पुत्र जीता बचा। उसे सिपाहियों ने छुआ तक नहीं। इसी प्रकार हत्यारे सिपाहियों ने कितने ही लड़कों और लड़कियों को बुरी तरह मार डाला। इतनेमेंकुछ अँगरेजोंने देखा, कि एक नाव आगे चली जा रही है; इस लिये वे झट पानी में कूद गये और तैरते हुए उस नाव के पास पहुंच गये। इनमें कप्तान माब्रे टामसन, प्राइवेट मर्फी और लेफ्टिनेण्ट हेरिसन भी थे। ईश्वर की दया से ये गोलों की बाढ़ से बचते हुए साफ निकल भागे।

सबको मार गिराकर बलवाइयोंने प्रायः १२५ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको कैद कर लिया और उनके शरीरपरसे बहुतसे कीमती गहने उतार लिये। इसके बाद वे सब लोग नानासाहबके सामने लाये गये। उन्होंने उन्हें एक कमरेमें बन्द कर रखनेका हुक्म दे दिया और इलाहाबादसे आये हुए कुछ सिपाही उनके पहरेपर नियुक्त कर दिये गये।

ऊपर कहा जा चुका है कि एक नाव पानीमें बहती हुई

चली जा रही थी, जिसकी सीधपर टामसन आदि कई जने तैरते हुए गये थे। उस नावपर कितने ही वीर और साहसी अँगरेज सवार थे और बिना डांड़के ही नाव धाराके बहाव पर चली जा रही थी। तीर परसे सिपाहियोंने उसपर निशाना बांधकर गोले छोड़े और कितनोंको मारकर जल-समाधि दे दी। तो भी वे लोग आगे बढ़ते चले गये। पर खाने-पीनेके नाम कुछ भी न रहने के कारण सब लोगोंके प्राण होठोंपर आ रहे थे। स्थान-स्थान पर पानी सूख जानेसे रेती पड़ रही थी, इसलिये उन्हें नाव को ठेल-ठालकर ले जाना पड़ता था। दूसरे दिन अर्थात् २८ वीं जूनको यह नाव कानपुरके पास ही नजफगढ़ नामक स्थानमें फिर रेतीमें आ पड़ी। इसी समय पुनः उसपर गोलियां बरसने लगीं। एकाएक बड़े जोरकी वर्षा होने लगी और शत्रुओंने गोले बरसाने बन्द कर दिये।

यह न मालूम हुआ, कि वह किस ओर जा रही है। सवेरा होनेपर उन्होंने देखा कि नाव फिर तीरके किनारे आ लगी है।

इस समय बदमाशोंको भी खूब बन आयी थी। ये लोग भी सिपाहियोंकी देखादेखी अँगरेजोंके खूनके प्यासे हो रहे थे। इन्हें पूर्णरूपसे विश्वास हो गया था, कि अँगरेजोंका राज्य यहाँसे उठ गया, इसी लिये ये मनमानी करनेके लिये सदा तैयार रहते थे। ये लोग सिपाहियोंसे मिलकर अपनी जेबें गरमानेकी धुन में थे। इन भगोड़े अँगरेजोंकी नाव जब तीरपर आ लगी, तब ये बदमाश उनपर हमला करनेके लिये दौड़े। यह देख, कप्तान टामसन कई सिपाहियोंके साथ तीरपर चले आये और बलवाइयोंसे लड़ने लगे। बाकी लोग उसी नावपर रहे।

कुछ ही देर बाद वह नाव उनकी नजरसे गायब हो गयी। लगातार गोलियां खाकर बलवाइयोंके पैर उखड़ गये! टामसनने तीरपर आकर देखा कि नाव तो नदारद है। यह देख, वे बेतरह घबराये।

इधर उस नावपर सवार लोग धारामें बहते हुए एक ऐसे स्थानपर पहुंचे जहांके जमींदार बाबू रामबख्श अङ्गरेजोंके कट्टर दुश्मन थे। वे उन्हें वहां आया देख, बहुतसे हथियारबन्द आदमीयों सहित वहां पहुंचकर उनपर हमला करने लगे। वे लोग यह रंग बेरंग देख, घबराये हुए इधर उधर भागने लगे। भागते-भागते वे तीन मील तक चले गये। वहां उन्हें एक मन्दिर दिखाई । अभागोंने वहीं जाकर शरण ली। वहां उन्हें अच्छा

और ठण्डा जल पीनेको मिला। उनका पीछा करते हुए उनके शत्रु भी वहां आ पहुंचे और उन्होंने उस मन्दिरको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख कुछ अँगरेज दरवाजे पर डट गये और संगीनें ताने हुए उनकी राह रोकने लगे। साथ ही कुछ लोगों ने गोलियां भी छोड़ीं, जिनसे कई बलवाई मारे गये। इससे नाराज हो बलवाइयोंने बहुतसी सूखी लकड़ियां मन्दिरके दरवाजे पर ला रखीं और उनमें आग लगा दी। उन्होंने सोचा कि उसके धुएँसे मन्दिरमें छिपे हुए अँगरेजोंका दम घुटकर प्राण निकल जायेंगे; पर तुरत ही बड़े जोरकी आँधी चलने लगी; इससे उनकी सोची हुई बात न होने पायी—धूआं दूसरी ओर जाने लगा। यह देख, बलवाइयोंने दूर ही से उन आगमें बारूदकी पोटलियां फेंकनी शुरू कीं। अब तो अँगरेजोंने देखा कि इस भयङ्कर मन्दिरमें रहना खतरेसे खाली नहीं है। वे वहांसे दौड़े हुए फिर नदीके किनारे आये और १४ आदमियोंमेंसे ७ जने अपने हथियार वगैरह फेंककर पानीमें कूद पड़े। तीरपर खड़े हुए बलवाइयोंने उनपर गोलियां छोड़कर तीन आदमियोंके प्राण ले लिये शेष चार जने तैरते हुए आगे बढ़ते चले गये। कुछ दूर

लिये उन्होंने इन चारों तैरनेवालेोंको बचाया। इन चारोंमें एक कप्तान टामसन भी थे।

तीन सप्ताह तक ये लोग राजा दिग्विजयसिंहके यहां अतिथि बनकर रहे। सिपाहियोंको जब उनके यहां छिपे रहनेका पता लगा तब उन्होंने राजा दिग्विजयसिंहसे उन्हें अपने हाथमें सौंप देनेका अनुरोध किया, पर इन्होंने उनकी बात नहीं मानी। कुछ दिनोंके बाद राजा साहबने उन लोगोंको अपने एक मित्रके यहां भेज दिया। उन्होंने भी उन लोगों को बड़ी खातिर के साथ रखा।

इसी तरह अन्य कई भारतीयोंने भी अँगरेजोंकी इस विपद्के समय प्राणरक्षा की थी। मयूर तिवारी नामक एक ब्राह्मण ने एक अंगरेजको, जिसका नाम डङ्कन था अपने घर रखा था। कई आदमियोंने दो कुमारी बालिकाओंको बड़ी भारी विपद्से बचाया था, जिसमें उन्हें अपने प्राणोंकी बाजी लगा देनी पड़ी थी। इसी तरह एक ओर इस देशके कुछ लोग तो अँगरेजोंके प्राणोंके गाहक बन बैठे थे और दूसरी ओर परोपकारी भारतीय उन्हें बचानेके लिये अपने परोपकारी हाथ फैलाये हुए थे। कहनेका मतलब यह कि यदि भारतवर्षके लोग उस समय अँगरेजोंके सहायक न होते तो उनका इस विपद्से उद्धार न होता।

नौकासे जो कई सिपाही नीचे उतरे थे, उनमेंसे सिर्फ चार ही बचे, शेष मारे गये। यह बात हम पहले ही लिख चुके हैं। अब देखिये, जो लोग उस नावपर सवार रह गये थे, उनका क्या हुआ? उसपर सब मिलाकर कोई ८० आदमी थे। वे

सबके सब कैद कर लिये गये। ३० वीं जूनको वे बैलगाड़ियों पर सवार हो कानपुर पहुंचे। वहां लाकर स्त्रियोंको पुरुषोंसे अलग किया गया। इसके बाद सब पुरुषोंको जानसे मार डालने का हुक्म जारी किया गया। क्रमशः सब को गोली मार दी गयी। एक पति परायणा महिला जिनका नाम मिसेस बोआईज़ (Mrs. Boyes) था अपने पति डाक्टर बोआईज़ को छोड़ कर अलग रहनेको किसी प्रकार राजी नहीं हुई थीं। वे अबतक वृक्षसे लिपटी रहनेवाली लताकी भांति अपने प्राण-पति के शरीरसे चिपटी हुई थीं। उन्होंने कहा कि यदि मरना ही है तो मैं अपने स्वामीके साथ ही मरूँगी। इसी लिये जब गोली चली तब एक साथ ही दोनों स्वामी-स्त्री उसके शिकार हो गये! इस प्रकार गोली मारनेपर भी जो लोग नहीं मरे, उनको सिपाहियोंने तलवारसे दो टुकड़े कर डाला!

इस प्रकार अपनी पैशाचिक वासना परितृप्त कर उन लोगोंने स्त्रियों और बच्चोंको कैद कर लिया। उनके साथ ही वे कैदी भी रखे गये जो गंगा किनारे पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे।

थे उसी राहसे वे जाते थे। इसीलिये उन्होंने गद्दी पाकर भी अपनेको पराधीन ही समझा। इधर मुसलमानोंके मनमें कुछ और ही भाव पैदा होने लगे थे। वे एक हिन्दूको यों बढ़ते देख भीतर-ही-भीतर कुछ जले और अपनी भी शान ऊँची करने की धुनमें लगे। बिठूरमें नानासाहबके गद्दीपर बैठते ही पूर्वोक्त नन्हें नवाब कानपुर के शासक बन गये और वहां मुसलमानोंकी ही तूती बोलने लगी। हिन्दू-मुसलमानोंमें फूट न पैदा हो जाये, ऐसा होता तो अंगरेजों का बल और बढ़ जानेकी सम्भावना थी। पर इतना होते हुए भी नानासाहबको मुसलमानोंकी प्रधानता अच्छी नहीं लगती थी; किन्तु चूंकि उनका प्रधान मन्त्री अजीमुल्लाहखां भी मुसलमान ही था, इसलिये वे खुल्लमखुल्ला यह बात किसीसे कह नहीं सकते थे; इधर उनका नाम ले लेकर उनके भाई भतीजे भी खूब मनमानी घरजानी कर रहे थे। मतलब यह कि वे कानपुरके अधीश्वर होते हुए भी काठके उल्लू बन रहे थे और मतलबी दुनिया उन्हें मनमानी तौरसे नचा रही थी।

इधर अँगरेजों की नयी पलटनके आने की खबर सुन, लोगों में भय पैदा होने लगा और बहुतेरे डरके मारे घर छोड़ भागने लगे थे। लोगोंको धैर्य देनेके लिये पेशवाकी ओर से कितने ही घोषणापत्र जारी हुए। साथ ही सिपाहियों को इनाम देने की भी व्यवस्था की गयी—नहीं तो सम्भव था, कि ये भी पीछे अपने ही घर के दुश्मन बन जाते।

कानपुर के एक अमीर मुसलमान ने एक होटल बनवाया

था। नानासाहब यहां आकर उसी में रहने लगे। दरवाजे पर दो तोपें रख दी गयीं और दिन रात हथियारबन्द सन्तरियों का पहरा पड़ने लगा। पहले तो नानासाहब अजीमुल्लाहखाँ वगैरह के बहकावे में आकर अँगरेजों के विरोधी बन गये, अब उन्हें यह चिन्ता व्यापी, कि यदि नयी गोरी पलटन आयी, अपनी रक्षा का क्या उपाय किया जायगा? दिन-रात सलाह-मशवरा होने लगा।

नानासाहब के महल से थोड़ी दूर पर एक छोटा सा बंगला था, जिसे किसी अँगरेज ने अपनी रखनी के लिये बनवाया था। इसीलिये सब लोग उसे 'बीबी-घर' कहा करते थे। घर बहुत ही छोटा था, उसमें २० फुट लम्बाई और १० फुट चौड़ाई वाले सिर्फ २ घर थे। आँगन पन्द्रह हाथ से अधिक चौड़ा न था। जो अंगरेज महिलाएँ और बालक-बालिकाएँ सवेदाकोठी में कैद थीं, वे अबके यहीं लाकर रखी गयीं। इनकी संख्या २०० से अधिक थी। इधर इस संख्या में और भी वृद्धि हो गयी। कुछ अँगरेज फतेहगढ़ से भाग कर नावसे कानपुर चले आ रहे थे। बेचारों को कानपुरके भीषण काण्डों का कुछ भी पता न था। सहसा नवाबगञ्ज के निकट आते ही उनकी नाव रोक ली

लिये तरसते हुए प्राण-त्याग करने लगे। जो जीते बचे, उनका जीवन मृत्यु से भी बुरा था। नानासाहबके कानों तक इनके दुःख-दर्द की कहानी नहीं पहुंची। अधिकार के मद में आकर लोग इसी तरह निरपराध मनुष्यों को कैद करते हैं और उनके दुःख-दर्दों की ओर से कान बहरे कर लेते हैं; पर जो सर्व-नियन्ता है, उस तक वह दर्दभरी आवाज जरूर पहुंचती है और किसी को आज, तो किसी को कल, अपने किये का फल मिल ही जाता है। इसी नियम के अनुसार शीघ्र ही नानासाहब के कुल कारनामों पर पानी फेर देनेके लिये नील साहब की सवारी कानपुर में आ पहुंची।

दशवां परिच्छेद।

अंगरेजों ने बुरी तरह बदला लिया।

—:-:※:-:—

कानपुर-काण्ड की कथा सर्वत्र शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गयी। उस समय सेनापति नील इलाहाबाद में विश्राम कर रहे थे। यहीं ३० वीं जून को सेनापति हेनरी हावेलाक कानपुर तथा लखनऊ की यात्रा के इरादे से आये थे। उन्होंने ७ वीं जुलाईको बड़ी भारी बरसात के होते रहने पर भी कानपुर की ओर यात्रा कर ही दी। उनके अधीन प्रायः १५०० सैनिक थे, जिनमें १००० अँगरेज़, १३० सिक्ख और कितने ही देशी घुड़सवार थे। कप्तान माडके अधीन ६ बड़ी बड़ी तोपें भी उनके साथ थीं।

इसके पहले सेनापति हावेलाकने मेजर रेनड ([illegible]) की अधीनतामें २ तोपोंके साथ ८०० आदमियोंको पहले ही रवाना कर दिया था। वे लोग सेनापति हावेलाक की राह देखते हुए इलाहाबाद से चल कर 'लोहंग' नामक स्थान में पड़े हुए थे। घोर वर्षा के कारण रास्तेमें कहीं कीचड़, कहीं पानीका सामना करते हुए सेनापति हावेलाक लगातार आगे बढ़ते गये।

शुरू की। टीकासिंह और बाबा भट्ट उनकी कुल आज्ञाओं का पालन करने के लिये प्रस्तुत हो गये। सारी तैयारी हो चुकने पर नानासाहबका अत्यन्त प्रिय अनुचर ज्वालाप्रसाद ९ वीं जुलाई को १५०० पैदल सैनिक और तोपची ५०० घुड़सवार और और १५०० साधारण मनुष्यों के साथ इलाहाबाद की ओर रवाना हुआ। इसके साथ १२ तोपें थीं। टीकासिंह भी इन लोगों के साथ ही सेना के सञ्चालन का भार लेकर चला। शीघ्र ही ये सब लोग फतेहपुर पहुंच गये। वहीं पड़ाव डाला गया।

११ वीं जुलाई को सेनापति हावेलाक मेजर रेनड की सेना से जा मिले। १२ वीं जुलाई को यह सम्मिलित सैन्यदल फतेहपुर से ४ मील की दूरी पर 'बेलिन्दा' नामक स्थान में पहुंच गया। यदि जेनरल हावेलाक ठीक समय पर मेजर रेनड के सैन्यदल से न जा मिलते, तो नानासाहबकी फौज इनका सत्यानाश कर डालती। जो हो, दोनों दलों के मिल जाने से यह भयङ्कर विपत्ति सिर से टल गयी और ये लोग सानन्द अपने खाने-पीने और विश्रामका प्रबन्ध करने लगे।

इसी समय एकाएक तोपका एक गोला आकर सेनापतिके सामने गिरा। गुप्तचरों ने भी आकर खबर दी, कि शत्रु-सेना फतेहपुर में ही ठहरी हुई है। बस, खाना-पीना भूल गया और युद्ध की तैयारी होने लगी। थोड़ी ही देर में उभयपक्ष के सैनिकोंकी भिड़न्त हो गयी। कानपुर के सिपाहियों ने सोचा था; कि उन्हें केवल रेनड की सेना का ही सामना करना पड़ेगा इसलिये वे अपनी विजय निश्चित समझे हुए थे। पर यहां तो

दो दो सेनाओं से मुकाबला करना पड़ गया, इसलिये वे बेतरह चकराये ; पर पीछे पैर देना तो वीरोंका धर्म नहीं है, यही सोच कर वे मैदान में ही डटे रह गये और लगे लगातार गोले बरसाने। बन्दूकों से भी फायरें दगने लगीं। पर अँगरेजोंकी बन्दूकें ३०० गजकी दूरी से निशाना मारती थीं। ज्वालाप्रसाद के सैनिकों के पास ऐसी अच्छी बन्दूकें नहीं थीं। इसलिये उन्हें अधिकतर अपनी तोपों का ही सहारा लेना पड़ता था। इधर अँगरेजों की तोपें भी चुप नहीं थीं—वे भी अग्नि-वृष्टि कर रही थीं। इस समय कप्तान माडकी चतुराई और फुर्ती तारीफ के लायक थी। कुछ ही देर के युद्ध में विद्रोही दलके पैर उखड़ गये, वे लोग अपनी तोप-बन्दूकें छोड़ कर बेतहाशा भाग चले। अँगरेजों ने प्रायः १५० विद्रोहियों को रण-भूमि में गिरा दिया। इस युद्ध में बहुतसे देशी सिपाही भी अँगरेजों की ओर से लड़े थे ; पर पीछे उन पर सन्देह होने के कारण उनके हथियार और घोड़े छीन लिये गये।

इधर कई सप्ताहों से फतेहपुर में अँगरेजों की प्रधानता नष्ट हो गयी थी। जनता में विशेष उत्तेजना फैली हुई थी ; क्योंकि वहां के कुछ आदमी ईसाई बना लिये गये थे। मेरठ के समाचार सुन कर ये लोग और भी उत्तेजित हो रहे थे। इसी समय कानपुर में गोलमाल होने का समाचार मिला। इलाहाबाद के कुछ विद्रोही सिपाही कानपुर जाते समय यहां भी आये और उन्होंने यहां का सरकारी खजाना लूट लेना चाहा ; पर वहां के कारदारों ने उनके कार्य में बाधा डाली, इसलिये वे विफल-

मनोरथ हो, कानपुर चले गये ; परन्तु पीछे जब इन पहरेदारों ने सुना, कि उनके दल के सभी लोगों ने इलाहाबाद में कम्पनी से युद्ध किया है, तब वे भी खजाने पर पहरा देना छोड़ कर कानपुर की तरफ चल दिये। हां, उन्होंने किसी अँगरेज का कुछ अनिष्ट नहीं किया।

इसके अनन्तर ९वीं जूनको एकाएक फतेहपुर पर तूफान बरपा हो गया। इधर इलाहाबाद और उधर कानपुर से बहुत से विद्रोही सिपाही यहां आ पहुंचे। उनलोगों ने यहां के सर्वसाधारण हिन्दू-मुसलमानोंको खूब उभाड़ा। मुसलमान तो पहले से ही ईसाइयों पर जले बैठे थे—वे इसबार बेतरह बिगड़ खड़े हुए। उत्तेजित जनता ने कैदखाना तोड़ डाला, कैदियों को रिहा कर दिया, खजाना लूट लिया, कचहरियों के कुल कागजपत्र जला दिये और अँगरेजों को यहां से जान लेकर भाग जाने को विवश किया। और तो सब भाग गये ; पर वहां के जज राबर्टटुकर साहब नहीं भागे। वे कुछ पुलिसवालों को साथ ले, घोड़े पर सवार हो, उत्तेजित जनता को समझाने-बुझाने और समय पड़ने पर विद्रोहियों से युद्ध भी करने लगे। अन्त में उन्हें विद्रोहियों के हाथ प्राण गँवाने पड़े। टुकर साहब बड़े भलेमानस, परोपकारी और दयालु पुरुष थे। उनका इसीलिये वहाँ बड़ा मान था। इसी कारण उनके मारे जाने का [illegible] को बड़ा दुःख हुआ।

पाँच सप्ताहों तक फतेहपुर में घोर अराजकता छायी रही। लोग मनमानी लूटमार करने में लगे हुए थे। जिस समय हावे-

लाक साहब यहां पहुंचे, उस समय यहां के रहनेवाले सभी भाग गये। सारा नगर सूना हो गया। हाट-बाजार सब बन्द हो गये।

फतेहपुर में गड़बड़ी शुरू होते ही वहाँ के मैजिस्ट्रेट शेरर साहब इलाहाबाद चले गये थे। जब वहाँ से जेनरल हावेलाक आने लगे, तब ये भी उनके संग यहाँ तक आये। उस समय स्थान-स्थान पर किये गये विद्रोहियों के अत्याचारों का संवाद पाकर अँगरेज इस देशवालों पर इतने बिगड़े हुए थे, कि इस सेना ने रास्ते में लोगों को खूब ही तबाह किया। उनकी राक्षसी-लीलाने सर्वसाधारण हिन्दुस्तानियों को कैसी विपत्ति में डाल दिया था, उसका हाल उक्त शेरर साहब की ही जबानी सुन लीजिये। वे लिखते हैं :—

जला दिये, सैकड़ों आदमियों को मुफ्त में ही फांसी पर लटका दिया, किसी का सिर काट लिया और किसीके गोली मार दी।

अस्तु; फतेहपुर की लड़ाई का समाचार कानपुर पहुंचा। नानासाहब के भाई बालराव अँगरेजों का सामना करने के लिये भेजे गये। उन्होंने कानपुर से २२ मील दूर औंग नामक एक स्थान में पड़ाव डाला। उनके वहां रहने को खबर पाते ही सेनापति हावेलाक वहां आ पहुंचे और १५ वीं जुलाई को दिन के नौ बजे दोनों दलों में युद्ध छिड़ गया। दो घंटे की घनघोर लड़ाई के बाद विद्रोही भाग चले।

औंग से कई मीलों के फासले पर पाण्डु नामकी एक नदी है। उसके पार पहुंच कर बालराव ने वहां दो तोपें लगा दीं। अँगरेज लोग जब उस पुलके पास पहुंचे, तब उन्होंने तोपें दागनी शुरु कर दीं; पर कुछ ही देर बाद तोपें बेकार हो गयीं और गोले बरसने बन्द हो गये। यह देख हावेलाक साहब ने बड़े जोर का हमला किया और उन्हें बुरी तरह खदेड़ दिया। इसी लड़ाई में पूर्वोक्त मेजर रेनड भी घायल हुए और दो दिन बाद मर गये। बालराव के भी कन्धे में गोली लगी और उन्हें रण-भूमि छोड़ देनी पड़ी। इस युद्ध में सिपाहियों ने बड़ी वीरता दिखायी थी और बहुतों का ऐसा ख्याल है, कि यदि उस समय उनके दल में कोई चतुर सेनापति होता, तो वे कभी न हारते और अँगरेजों को निश्चय ही हरा देते। इस विद्रोह में प्रायः हर जगह सुचतुर सेनापतियों का अभाव ही देखने में आता था और यही विद्रोहियोंके विफल होने का सब से प्रबल कारण था।

खैर, बालराव के घायल हो, हारकर लौटने का समाचार पा—नानासाहब के दल में शोक छा गया। अब यह सलाह होने लगी, कि इस समय करना क्या चाहिये? जितने आदमी थे उतनी रायें पेश होने लगीं। किसी ने कहा, कि यहां से बिठूर जाकर अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिये, तो किसी ने कहा, कि फतेहगढ़ के सिपाहियों से मिल जाना चाहिये और किसी-किसी की सम्मति हुई, कि विद्रोहियों के कानपुर आने की राह में खड़े होकर उनका सामना करना चाहिये। आखिरकार, यही अन्तिम बात सर्वसम्मत हुई, युद्ध की तैयारी होने लगी।

इसी समय अजीमुल्लाहखाँ ने नानासाहब से कहा,—"अँगरेज अपनी औरतों और बच्चों को छुड़ाने आ रहे हैं; इसलिये अगर उन सबको कत्ल कर दिया जाये, तो वे अपना सा मुँह लिये आप ही लौट जायेंगे।" नानासाहब को अजीमुल्लाहखाँ की बात काटने की हिम्मत न पड़ी। यही सलाह पक्की हो रही।

अन्तमें कई कसाई और जल्लाद कैदखाने के भीतर घुसे और तलवारों से सबके सिर धड़ से अलग करने लगे। रोने-चिल्लाने के सिवा उन अभागे जीवों के हाथ में और कोई उपाय नहीं था, इसलिये मारे चिल्लाहट के कुहरामसा मच गया। इस तरह उस सन्ध्या के समय निरपराध और निरीह नारियों और उनके प्यारे बच्चों की बुरी तरह हत्या की गयी! १७ वीं जुलाई के सवेरे ही सब की लाशें पासवाले कुएँ में डाल दी गयीं। कितने ही अधमरे और कितने ही जीते—जो उस कुएँ में डाल दिये गये —किसी पर दया नहीं की गयी!

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेख योग्य है। इतने उत्तेजित होने पर भी किसी विद्रोही ने किसी स्त्री की इज्जत नहीं बिगाड़ी और न किसी का कान-नाक काटा। वे उनके खून के प्यासे थे—उनका प्राण नाश करके ही वे सन्तुष्ट हो रहे।

इसी दिन अर्थात् १६ वीं जुलाई को ही घुड़सवार, पैदल और गोलन्दाज सब मिलाकर प्रायः ५००० सैनिकोंके साथ नाना-साहब अँगरेजों का मुकाबला करने के लिये चल पड़े। कानपुर से ४ मील दक्खिन 'अहरवा' नामक गांव में पड़ाव डाला गया, यहां से दाहिनी ओर को कानपुर की छावनी का रास्ता था और बायीं ओर दिल्ली जानेवाली राह थी, बायीं तरफ गङ्गा बह रही थी और दाहिनी तरफ ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ एक गांव और आमका बड़ा भारी बाग था। गङ्गा की तरफ जो ढालवीं जगह थी; वहीं बड़ी-बड़ी तोपें रखी गयीं। आम-बाग और उक्त गांव की तरफ भी तोपें लगा दी गयीं। जहाँ

दोनों राहें मिली थीं, वहां और उसके दोनों तरफ पैदल सैनिक खड़े किये गये, जिनके पीछे घुड़सवार पलटन भी डटी हुई थी।

अँगरेज अब भी बहुत दूर थे। १५ वीं जुलाई को उन्होंने यात्रा की और रात-दिन चल कर १४ मील का सफर ते कर डाला। इसके बाद खाने-पीने और आराम करने के अनन्तर वे फिर चल पड़े। जब पास पहुंचे, तब नानासाहब की वह विशाल सेना देख, बड़े चकराये। उनके पास सिर्फ १००० गोरे और ३०० सिक्ख थे। इसलिये उन्होंने सोचा, कि इस समय ठेठ सामने चले जाने से शत्रुओं के हाथ मारे जाने के सिवा और कुछ लाभ न होगा। उन्होंने बड़ी चतुराई से अपने सैनिकों के कई विभाग किये और कितने ही रास्तों से शत्रुओं पर हमला करने का उन्हें हुक्म दिया। पैदल, घुड़सवार और गोलन्दाज-सभी एक साथ युद्ध के लिये तैयार हो गये। उनकी सेना को आगे बढ़ते देख, नानासाहब की तोपें दगने लगीं। यह देख, अँगरेज सेनापति ने अपने सैनिकों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

वढ़ आये ; अन्तमें ये भी भागनेके ही लक्षण दिखाने लगे। इधर अँगरेजी सेना के एक दल के पीछे हटते ही दूसरा दल उसका स्थान ग्रहण कर लेता और वड़े उत्साह से युद्ध करने लगता। सिक्खों ने भी इस युद्ध में अँगरेजों की वड़ी सहायता की।

उधर सिपाहियों में सुयोग्य सेनापति न होने के कारण एक वार जहां हटने की नौवत आती; वहां पूरी भगदड़ मच जाती थी। 'इण्डियन एम्पायर' (Indian Empire) नामक पुस्तक के लेखक मार्टिन साहव का कहना है, कि यदि इस समय सिपाहियोंके साथ कोई रण-नीति-निपुण सेनापति होता, तो अँगरेजों की पूरी तवाही आ जाती। पर ऐसा न होने के कारण जरा-सा दवते ही वे लोग भागने लग जाते थे। इसीलिये उनकी एक के वाद दूसरी तोप छिन जाने लगी। सेनापति हावेलाक की चतुराई से सिपाहियों की संख्या अधिक होने पर भी उनकी सव तोपें छिन गयीं—उनके टिकने का स्थान न रहा—सवके सव भाग चले। उन्हें भागते देख, कप्तान माड की तोप उन पर गोले वरसाने लगीं। अव तो किसीने पीछे फिर कर देखने का भी साहस न किया—लड़ना तो वड़ी दूर की वात है।

इस युद्ध में हावेलाक साहव की पैदल सेना की सङ्गीनें ही अधिकतर काम आयीं—उनकी तोपों और घुड़सवार-सेना को इस विजय का श्रेय नहीं दिया जा सकता, सिपाही हारकर भागे सही ; पर अयोग्य सेनापतियों के होते हुए भी, उन्होंने जिस वीरता और पराक्रम के साथ युद्ध किया, वह अवश्य ही प्रशंसा के योग्य है। यदि वे तितर-वितर न हो जाते और दृढ़ता के

साथ मैदान में डटे रहते, तो निश्चय ही अँगरेजों को नेस्तोनाबूद कर डालते। जो हो, इस हारके कारण अथवा अँगरेजों के साथ विद्रोह करने के कारण, कोई उनकी निन्दा भले ही करे; पर उनके साहस, वीरत्व और रण-कौशल की प्रशंसा किये विना कोई नहीं रह सकता।

कुल अढ़ाई घंटेके युद्धने ही अँगरेजों के हाथ विजय-लक्ष्मी सौंप दी। नानासाहब निरुत्साह हो, अपने घोड़े पर चढ़े हुए युद्ध-स्थल से चल पड़े। उनके सिपाही भी इधर-उधर भाग चले।

१७ वीं जुलाई के प्रातःकाल जेनरल हावेलाक कानपुरका उद्धार करने चले। रास्तेमें ही उन्होंने मेमों और बच्चोंकी हत्या का हाल सुना। सुनते ही जीतकी खुशी रञ्जमें बदल गयी। वे लोग टूटे हुए दिलसे कानपुरकी ओर अग्रसर होने लगे।

उनकी अग्रगामी सेना जिस समय कानपुरकी छावनीके पास पहुंची उसी समय उन्हें दूर ही से धुएँ का पहाड़ सा दिखाई दिया। इसके क्षण ही भर बाद इतना बड़ा धड़ाका हुआ कि कानोंके परदे फटने लगे—जमीन हिलती हुई मालूम पड़ी! वे यह देख समझ गये कि शत्रुओंने शस्त्रागारमें आग लगा दी है। सचमुच बात भी यही थी। विद्रोहियोंने शस्त्रागारमें आग लगा दी थी और उसे नेस्तोनाबूद कर भाग गये थे। इस तरह बिना परिश्रमके ही कानपुर फिर अँगरेजोंके हाथ आ गया। इसी समय जेनरल हावेलाकने सुना कि नानासाहब बिठूरमें बड़ी भारी फौज जमा कर रहे हैं। सुनकर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई; पर पीछे यह खबर गलत निकली।

नानासाहबके युद्ध-भूमिसे विठूर पहुंचते ही उनके अनुचर-गण उनका साथ छोड़कर भागने लगे। उनके प्रधान मुसलमान मन्त्री भी नौ दो ग्यारह हो गये। तब तो नानासाहब बड़े ही घबराये और औरतोंके साथ गंगा पार हो भाग जानेकी चेष्टा करने लगे। उन्होंने इसी इरादेसे घाटपर आकर नाव किराये की और सब लोगोंसे कहा कि मैं बीच धारामें पहुंचकर गंगामें कूद, प्राण त्याग कर दूँगा! पर रातों रात गंगा-पार हो, वे प्राण लेकर भाग गये। लोगोंने सोचा कि सचमुच उन्होंने गंगामें कूदकर प्राण दे दिये। विठूरका राज-प्रसाद खाली हो गया। अँगरेजोंका उसपर भी अधिकार हो गया।

अब अँगरेजोंको हिन्दुस्तानियोंसे वैर भँजानेका पूरा मौका मिला। अँगरेज सैनिक बड़े विचित्र जीव होते हैं। शराब के नशेमें चूर होकर वे चाहे जो कर डालें। कोई किसी कारणसे उनका विरोध न करे, ये उसे दण्ड देनेके लिये झट तैयार हो जाते और उस समय दया-मायाको हृदयसे निकाल बाहर कर देते थे। कोई ऐसा पाप नहीं जो वे झोंकमें आकर न कर डालें। उस समय औरत हो या मर्द—कोई उनके हाथसे छुटकारा नहीं पा सकता। कानपुर और विठूर हाथमें आनेपर अपने सामनेका मैदान शत्रुओंसे शून्य देख सेनापति हावेलाकके सैनिकोंने भी अपनी इस उद्दण्ड-प्रकृतिका परिचय दिया। कानपुरमें गोरों, गोरी बीबियों और गोरे बच्चोंपर जो जुल्म हुआ था, उसकी याद कर वे एक बार ही सब कालोंको नेस्तोनाबूद कर देनेके लिये तुल गये। फिर तो उन्होंने ऐसे

शेरर साहब फिर वहांके मजिस्ट्रेट बनाये गये। १८ वीं जुलाई को उन्होंने एक घोषणा निकाली जिसमें यह प्रकट किया गया, कि अबसे कानपुरमें फिर अँगरेजोंकी अमलदारी हो गयी और हमारे ही आईन-कानून जारी हो गये। इसके बाद और भी बहुतसे हाकिम मुकर्रर होकर अपना अपना काम करने लगे।

इसके बाद जेनरल हावेलाकने दिल्लीके रास्तेमें कुछ सैनिकों को भेजा क्योंकि उन्हें उधरसे विद्रोहियोंके आनेका डर था; पर पीछे वह डर बेजड़ मालूम हुआ। उधर एक दल बिठूरमें भी आया और नानासाहबके छोड़े हुए धनका मालिक बन बैठा। उनकी सम्पत्तिका बहुत बड़ा हिस्सा सिपाहियोंके हाथ लगा। सिक्खोंने बाजीराव पेशवाकी तीन लाखकी हीरे मोतियोंसे जड़ी हुई तलवार अपने कब्जेमें करली। बहुत से सोने चाँदीके बर्तन-बासन भी उनके हाथ लगे।

इसी समय कानपुरकी रंग-भूमिमें सर्वसंहारक मूर्त्ति लिये हुए सेनापति 'नील' भी उतर आये। हावेलाक साहबके सैनिकों ने बेचारे कानपुरवालोंका सत्यानाश करनेमें जो कुछ कसर रख छोड़ी थी, उसे पूरा करनेके ही लिये मानों आपका शुभागमन हुआ। वे २० वीं जुलाईको कानपुर आ पहुंचे।

उस समय लखनऊमें विद्रोहियोंने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। आगरे पर भी उन्हीं लोगोंका अधिकार हो रहा था और दिल्ली तो उनका प्रधान अड्डा ही हो रही थी। इसलिये नील साहब को कानपुरकी रक्षा और प्रबन्धका भार सौंप सेनापति हावेलाक लखनऊके लिये रवाना हो गये।

कानपुरका 'चार्ज' अपने हाथमें लेते ही नील साहब वहांके हत्याकाण्डके अपराधियोंकी खोज ढूँढ़ कराने लगे। उन्होंने इलाहाबादमें तो केवल लोगोंको फाँसी ही दी थी, यहां उन्होंने एक नये ढंगकी सजा भी तजवीज़ की। उन्होंने हुकम जारी किया कि जो लोग अपराधी प्रमाणित हों, उन्हींसे मेमों और बच्चोंके खूनसे रंगा हुआ 'बीबी-घर' साफ कराया जाये; इसके बाद उन्हें फांसी दी जाये! जिस कुएँ में मृत स्त्रियों और बच्चों की लाशें डाली गयी थीं, उसे मिट्टीसे भरवाकर उन्होंने कब्रसी बना डाली। इसके बाद अपराधियोंसे बीबीघर साफ कराया जाने लगा। जो लोग इनकार करते थे उनकी पीठ मारे कोड़ों से फोड़दी जाती थी। इस प्रकार नीच कर्म करानेके बाद उन बेचारोंको फांसी भी दे दी जाती थी। अपनी इस भीषण प्रतिहिंसाके विषयमें नील साहब स्वयं लिखते हैं :—

शेरर साहब फिर वहांके मजिस्ट्रेट बनाये गये। १८ वीं जुलाई को उन्होंने एक घोषणा निकाली जिसमें यह प्रकट किया गया, कि अबसे कानपुरमें फिर अँगरेजोंकी अमलदारी हो गयी और हमारे ही आईन-कानून जारी हो गये। इसके बाद और भी बहुतसे हाकिम मुकर्रर होकर अपना अपना काम करने लगे।

इसके बाद जेनरल हावेलाकने दिल्लीके रास्तेमें कुछ सैनिकों को भेजा क्योंकि उन्हें उधरसे विद्रोहियोंके आनेका डर था; पर पीछे वह डर बेजड़ मालूम हुआ। उधर एक दल बिठूरमें भी आया और नानासाहबके छोड़े हुए धनका मालिक बन बैठा। उनकी सम्पत्तिका बहुत बड़ा हिस्सा सिपाहियोंके हाथ लगा। सिक्खोंने बाजीराव पेशवाकी तीन लाखकी हीरे मोतियोंसे जड़ी हुई तलवार अपने कब्जेमें करली। बहुत से सोने चाँदीके बर्तन-बासन भी उनके हाथ लगे।

इसी समय कानपुरकी रंग-भूमिमें सर्वसंहारक मूर्त्ति लिये हुए सेनापति 'नील' भी उतर आये। हावेलाक साहबके सैनिकों ने बेचारे कानपुरवालोंका सत्यानाश करनेमें जो कुछ कसर रख छोड़ी थी, उसे पूरा करनेके ही लिये मानों आपका शुभागमन हुआ। वे २० वीं जुलाईको कानपुर आ पहुंचे।

उस समय लखनऊमें विद्रोहियोंने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। आगरे पर भी उन्हीं लोगोंका अधिकार हो रहा था और दिल्ली तो उनका प्रधान अड्डा ही हो रही थी। इसलिये नील साहब को कानपुरकी रक्षा और प्रबन्धका भार सौंप सेनापति हावेलाक लखनऊके लिये रवाना हो गये।

कानपुरका 'चार्ज' अपने हाथमें लेते ही नील साहब वहांके हत्याकाण्डके अपराधियोंकी खोज ढूँढ़ कराने लगे। उन्होंने इलाहाबादमें तो केवल लोगोंको फाँसी ही दी थी, यहां उन्होंने एक नये ढंगकी सजा भी तजवीज़ की। उन्होंने हुक्म जारी किया कि जो लोग अपराधी प्रमाणित हों, उन्हींसे मेमों और बच्चोंके खूनसे रंगा हुआ 'बीबी-घर' साफ़ कराया जाये; इसके बाद उन्हें फांसी दी जाये! जिस कुएँ में मृत स्त्रियों और बच्चों की लाशें डाली गयी थीं, उसे मिट्टीसे भरवाकर उन्होंने कब्रसी बना डाली। इसके बाद अपराधियोंसे बीबीघर साफ़ कराया जाने लगा। जो लोग इनकार करते थे उनकी पीठ मार बेतों से फोड़दी जाती थी। इस प्रकार नीच कर्म करानेके बाद उन बेचारोंको फांसी भी दे दी जाती थी। अपनी इस भीषण प्रतिहिंसाके विषयमें नील साहब स्वयं लिखते हैं :—

"मेरा उद्देश्य कापुरुष, बर्बर और विद्रोही पुरुषों को उनके कुकर्म के लिये भयङ्कर दण्ड देना ही है। इस तरह मैं उनके मन में आतङ्क उत्पन्न करना चाहता हूं। सबसे पहले मैंने एक सूबेदार को पकड़ा, जो उच्च श्रेणी का ब्राह्मण था। उसने पहले तो मेरी, बीबीघरकी रक्त-परिष्कार करने की आज्ञा नहीं मानी—वही रक्त, जिसके बहाने में उसने भी सहायता दी थी—पर पीछे जब मेरे हुक्म से उसपर बेतों की मार पड़ने लगी, तब वह दुराचारी झट उस काम को पूरा करने के लिये तैयार हो गया। जब सब काम खतम हो गया, तब उसे बाहर लाकर फांसी दे दी गयी और उसकी लाश सड़क के किनारे एक गड्ढे

में गाड़ दी गयी। कानपुर में जो भयानक अत्याचार और हत्या-काण्ड इन लोगों ने मचाया था, उसे देखकर कौन इन राक्षसों के प्रति 'दया' दिखलानेकी बात सुनने को तैयार होगा ?"

इस तरह सेनापति नीलने ३री नवम्बर १८५७ तक कानपुर-वालों को अपनी प्रतिहिंसा के कड़वे फल ख़ूब चखाये। अन्तमें इसके लिये इनकी बड़ी बदनामी भी हुई और इनके हाथ से यहां का अधिकार छीन कर सर कालिन कैम्पवेल को यहां का सर्व प्रधान् नियन्ता बनाया गया। उन्होंने यही कहकर पूर्वोक्त प्रकार की हत्यारी-लीलाएँ बन्द् करवादीं, कि ऐसे भीषण कार्य अँग-रेजों के नाम पर धब्बा लगानेवाले और किसी ईसाई-मत को माननेवाली सरकार के लिये लज्जा के विषय हैं!

अस्तु ; अब हम नाना साहब के विषय में दो-चार बातें लिख कर इस अध्याय को समाप्त कर देना चाहते हैं। कहते हैं कि उस दिन बिठूर से रवाना हो, वे अवध के जंगलों में जाकर छिप रहे। वहां भी उन्होंने कुछ दिनों तक पूरा दल बाँध रखा और राजसी ठाट से रहने में समर्थ हुए। नवम्बर महीने में जब ताँतियाटोपी ने कानपुर पर दूसरा हमला किया, तब वे भी उसमें शामिल हुए ; पर सर कालिन कैम्पबेल के हाथ से बुरी तरह हार खाकर जब सब विद्रोही भाग खड़े हुए, तब नानासाहब भी हिमालय की तराईवाले जङ्गलों में चले गये। वहां भी उनको चैन न मिली। अँगरेज़ों की धाक उस समय चारों ओर फैल गयी थी और जंगलों में भी उनके अनुचरों ने नाना साहब का पिण्ड नहीं छोड़ा। इस प्रकार वे नित्य-शङ्कित, नित्य-दुःखित,

नष्ट-गौरव, नष्ट-प्रभाव और नष्ट-स्वास्थ्य हो, दो वर्ष तक नेपाल के जङ्गलों में इधर-उधर भटकते फिरे और इसी अवस्था में परलोक-वासी भी हुए। * उनके सभी साथी जहाँ तहाँ भाग गये थे। उनका इस प्रकार मरना भी उनके बहुत से साथियोंने नहीं जाना। उनके अनुचरों में से बहुतसे लोग अँगरेजों के हाथ में पड़कर फाँसी पर लटका दिये गये। इन फांसी पड़ने वालों में पाठकों के पूर्व परिचित ज्वालाप्रसाद भी एक थे।

यही इस संसार की परिवर्त्तन-शीलता है। जो एक दिन सारे भारतवर्ष का सम्राट् होने का स्वप्न देख रहे थे, उनके मर जाने पर उनकी प्रेत-क्रिया भी ठिकाने से नहीं हुई! पृथ्वी के इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं। जगद्विजयी नैपोलियन की कथा तो सैकड़ों वर्षों की पुरानी हो गयी है, इस लिये हम पाठकोंको हाल के जर्मन-सम्राट् विलियम कैसर और सम्राट् ज़ार निकोलस के ही विचित्र भाग्य-परिवर्त्तन की ओर देखने का अनुरोध करते हैं।

अंगरेज इतिहास-लेखकोंने नानासाहबको मनुष्यके रूपमें महाराक्षस तक कह डाला है। इसी तरहकी उपाधि एक दिन वीर नैपोलियनको भी मिली थी। गत युरोपियन-महाभारतके अधिनायक कैसेर विलियमको भी इस सम्मानतीय उपाधिसे विभूषित किया गया था। रूसके वर्त्तमान भाग्यविधाता, [illegible]

---

* एक बंगाली पर्यटक लेखक का कहना [illegible] है श्रीमन्त नानासाहब अभी भी नेपालके जंगलों में तपस्या कर रहे हैं। [illegible] है, क्योंकि यह ६५ ही वर्षकी बात है।—लेखक।

आचार्य, लेनिन भी नर-प्रेत कहे जानेका सौभाग्य अर्जन कर चुके हैं। पर यह सब एक पक्षीय बातें हैं। दूसरा पक्ष क्या कहता है, यह देखना भी आवश्यक हैं। अपने शत्रुको सभी लोग ऐसी उपाधियोंसे सम्मानित करते हैं, जैसा उनके शत्रु करते हैं। इतिहास तो इतिहास, रोजमराहकी घटनाएँ भी हमें यह सत्य-सिद्धान्त बतलाया करती हैं।

नानासाहबके साथ लार्ड डलहौसीने पूरी विश्वासघातकता की—उनकी पेन्शन बन्द कराकर उन्हें अँगरेजोंका वैरी बना दिया; पर तो भी वे अँगरेजों के साथ सज्जनतासे पेश आते रहे। यदि अजीमुल्लाहखां कैसे दो चार आदमी उनके सलाहकार न होते, तो वे कभी अँगरेजोंसे विरोध न करते; पर मनुष्यको घटना चक्रका दास बनना पड़ता हैं। इस प्रकारके उदाहरण प्रत्येक इतिहासमें वर्त्तमान है। फिर नानासाहब ही इतने बुरे क्यों? दूसरे नानासाहबको अपने कियेका दण्ड भी तो मिल गया। उन्हींको नहीं उनके साथियोंको ही नहीं; उनके अभागे देशवासियों तकको इस प्रायश्चित्तका भागी बननापड़ा और उनके जीवन के अन्तिम दिन बड़े कष्टसे व्यतीत हुए। क्या इतनेपर भी इतिहास लेखकोंकी कठोर लेखनी उनपर दया न करेगी?

चाहे जो हो, अँगरेज नानाका नाम और कानपुरका काण्ड कभी नहीं भूलते। सिपाही-विद्रोहमें यह काण्ड अतिशय प्रसिद्ध है और इसी लिये कानपुर की याद आते ही अँगरेजोंके हृदय में भय क्रोध और अनुत्तापके भाव भर जाते हैं। परन्तु हम पहले भी कह चुके हैं और फिर भी कहते हैं कि पृथ्वीमें केवल

कानपुर में ही ऐसी लीला नहीं हुई। पृथ्वीके इतिहासमें ऐसी अनेक घटनाओंके उदाहरण मिलते हैं और उनके नायक हिन्दुस्तानके काले आदमी ही नहीं, विलायतके साफ और गोरे चाम वाले भी हैं!

ग्यारहवां अध्याय ।

पंजाब-प्रकरण ।

उस समय अँगरेजों को इस देश से नेस्तोनाबूद कर देने के लिये मानों सभी के दिल उछल रहे थे। खोयी हुई स्वाधीनता फिर से पाने के लिये सबके हृदय में उमंग भर रही थी। जहाँ तहाँ इस देश के लोगों में अँगरेजों के विरुद्ध उठ खड़े होने का भाव जागृत हो रहा था और विद्रोह का हाल सुन सुन कर प्रायः सभी स्थानों के लोग उत्तेजित और कुछ कर दिखाने के लिये चञ्चल हो रहे थे। पर पञ्जाब के सिक्ख बड़े बहादुर, स्वाधीनता-प्रिय और स्वधर्म-निष्ठ होते हुए भी चुपचाप थे ; क्योंकि वे ऐसी हलचल में शामिल होना नहीं चाहते थे, जिसके फल से दिल्ली के मुगल-सम्राट् का प्रभाव बढ़ने की सम्भावना थी। मुग़लों से इनका वैर था। इसी लिये वे अँगरेजों का ही साथ देने को तैयार थे। यदि उस समय सिक्ख लोग भी विद्रोहियों से मिल जाते, तो क़यामत ही बरपा हो जाती। दूसरे पञ्जाब के उत्तर में रहने वाले स्वाधीन अफगानों से भी उनकी बनती नहीं थी—यदि इस समय अफगान और सिक्ख एक होकर अँगरेजों के खिलाफ खड़े हो जाते, तो भी आफत आ जाती। पर आपस की अनबनने पञ्जाबके

कहते हैं, किलेमें जिन सिपाहियोंका पहरा था, उनको बारी १५ वीं मईको खतम होनेवाली थी और उनके स्थानमें दूसरी पलटन आनेवाली थी। सिपाहियोंने साजिश की, कि जब पहरा बदलनेका समय आवे तभी ये दोनों सैन्य-दल मिलकर अँगरेजोंपर हमला कर दें और खजाना तथा सिलह-खाना लूट लें। इसके बाद कारागारके दो हजार कैदियोंको छुटकारा दे दिया जाये, जिससे वे सब भी मिलजुलकर अँगरेजोंका सत्यानाश करें। षड्यन्त्रकारियोंने भीतर ही भीतर यह आग फिरोजपुर, फिलौर, जालन्धर और अमृतसर तक पहुँचादी थी। पहले दो अङ्गरेजोंने इस षड्यन्त्रका भण्डाफोड़ किया; पर अधिकारियोंको विश्वास नहीं हुआ कि सभी सिपाही इसमें सम्मिलित होंगे। जो हो यह बात राबर्ट माण्टुगोमरीके कानों तक भी पहुंची और ब्रिगेडियर से बड़ी देर तक सलाह करने के बाद उन्होंने यही निश्चय किया कि सिपाहियोंको एकबारगी निरस्त्र कर दिया जाये। १३ वीं मईको सब सिपाहियोंको परेडके मैदानमें जमा होने का हुक्म दिया गया।

१२ वीं की रातमें छावनीके अन्दर साहबोंका बड़ा भारी जलसा हुआ। साहबों और मेमोंका नाच रातभर बड़े ठाटसे होता रहा। यदि सिपाहियोंने यथार्थमें षड्यन्त्र-रचना की होती तो उन्हें इस तरह नाच तमाशेमें पड़ा देख वे कभी बाज न आते और उसी समय उनपर टूट पड़ते। इसीसे मालूम होता है कि स्वार्थी और खुशामदी टट्टुओंने झूठमूठ यह खबर अँगरेज अधिकारियोंको दी थी।

अस्तु ; १३ वीं मईके प्रातःकाल सब सैनिक परेडके मैदानमें हाजिर हुए। उनके आगे बन्दूक पीछे तोप लगादी गयीं और अस्त्र शास्त्र रख देनेका हुक्म दिया गया। केवल ६०० गोरे सैनिकोंने इस तरह २५०० देशी सिपाहियोंको चुपचाप निरस्त्र कर डाला। उदास मुँह बनाये सब निरस्त्र सिपाही अपने अपने घर लौट गये।

उस समय किलेमें २६ वीं पल्टनका पहरा था। उनका पहरा १५ वीं मई तकके लिये था। १४ वीं मईके बड़े सबेरे ८१ वीं गोरी पल्टनके कितने ही सैनिक एकाएक किलेमें घुस आये। उनके अध्यक्ष कर्नल स्मिथने सबको हथियार रख देनेका हुक्म दिया। लाचार बेचारोंको यह आज्ञा माननी पड़ी। [illegible] किया गया, यह उन्हें नहीं मालूम होने पाया।

गांवोंकी रक्षाके लिये तैयार कर दिया। वे लोग लाठी, सोंटा, बर्छा, भाला आदि साधारण हथियार लिये हुए सहकारी कमिश्नर मि० मैकगटनके साथ लाहौरके रास्तेमें जा डटे। पर पीछे यह भय मिथ्या ही हुआ। शत्रु सिपाहियोंके स्थानमें लाहौरसे कुछ अंगरेज सैनिक इन लोगोंकी सहायताके लिये आ पहुँचे।

इन दोनों स्थानोंके सिवा और और स्थानोंमें भी गड़बड़ होनेका भय था। खासकर फिरोजपुर और फिलौरके अधिकारियोंको तो अपने यहां के सिपाहियों पर बड़ा सन्देह हो रहा था।

११ वीं मईकी रातको ही एक दूत मेरठ और दिल्लीका समाचार लिये हुए लाहौरसे फिरोजपुर आ पहुंचा। यहांकी छावनी के प्रधान अफसर ब्रिगेडियर ईनसने इसके साथ ही साथ जब लाहौरके निरस्त्र हो जानेका हाल सुना तब उन्होंने भी अपने सिपाहियोंको परेडके मैदानमें जमा होनेका हुक्म दिया। उनका मतलब यह था कि वहां जमा करके वे सिपाहियोंके चेहरे मोहरे और चेष्टासे उनके मनकी थाह लगायेंगे। उनकी इस परीक्षा का परिणाम सन्तोषजनक नहीं निकला। उन्हें किसी पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सैनिक-विभागके कर्मचारियोंके साथ सिपाहियोंको निरस्त्र कर डालनेके विषयमें परामर्श करना आरम्भ किया। पर यह प्रस्ताव बहुतोंको नापसन्द हुआ। अन्तमें यही तय पायाकि कल सवेरे दोनों सैनिक दलोंको (जो वहां थे) अलग अलग कर दिया जाये।

बहुतसे गोरेसैनिक पहरा दे रहे थे। विद्रोही सिपाहियोंने झटपट उन सैनिकों पर हमला कर दिया और उनके अफसरको मार गिराया ; पर अन्तमें उन्हें बुरी तरह हारकर भागना पड़ा। इसके बाद फिर अस्त्रागारके अन्दरवाले देशी सिपाही भी निरस्त्र कर दिये गये और वह सम्पूर्ण रूपसे सुरक्षित रह गया।

इधर छावनी और बाजारोंमें गड़बड़ होने लगी। सर्वसाधारण बिगड़ उठे और लूट पाट करने लगे। छावनीमें अङ्गरेजोंके बँगले, बबर्चीखाने, होटल और गिरजे जलाये जाने लगे। हाहाकार मच गया; पर यहांके विद्रोहियोंने अफसरोंके औरत बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। जो हो यहांके बहुतसे सिपाही भी बागी होकर दिल्ली चले गये और प्रधान बलवाइयोंसे जा मिले। हां; यहां लाहौरकी तरह शान्ति नहीं बनी रही। कुछ न कुछ उपद्रव हो ही गया। सिपाहियोंका बल क्षीण करने के लिये अँगरेजों ने देशी सैनिकों के अस्त्रागार स्वयं नष्ट कर डाले थे।

मेरठकी घटनाओंका समाचार पाकर ही फिलौरके किलेमें अँगरेज सिपाहियोंका रखना निश्चय किया गया और युरोपियन स्त्रियों तथा बच्चोंको निरापद स्थानों में पहुंचा दिया गया। तोपें भी उचित स्थानों पर चढ़ाई गयीं। छावनी का हरएक अफसर आनेवाली विपद्के लिये हर घड़ी तैयार रहने लगा। यहां के अस्त्रागारकी रक्षाके लिये जालन्धरसे डेढ़सौ गोरे मंगाये गये।

जालन्धर के आसपास बहुतसी छावनियां थीं। जालन्धर के सिपाहियों को भी यदि निरस्त्र करने की चेष्टा की जाती, तो

इसमें शक नहीं, कि होशियारपुर, काँगड़ा, नूरपुर और फिलौर के सिपाही उन लोगों की मदद करने के लिये अँगरेजों के विरुद्ध उठ खड़े होते। सच पूछिये, तो इसी डर के मारे अधिकारियों ने ऐसा नहीं किया। साथ ही कपूरथलाके युवा महाराज रणधीरसिंह की सहायता भी जालन्धर की रक्षा करने में बड़ी अमूल्य सिद्ध हुई। यद्यपि अँगरेजों ने इन्हें भी लूटा था और इनके राज्य का कुछ अंश हड़प कर लिया था, तथापि ये परोपकारी नरेश उनकी सहायता करने से बाज नहीं आये!

इधर पञ्जाब के अधिकारियों को सबसे बड़ा डर पेशावर का

और बूढ़े बहादुरशाह फिर सम्राट् बनाये गये हैं। यह खबर पा; पेशावर के शासनकर्त्ता कर्नल निकोलसन और एडवर्डिस बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने निविली चेम्बरलेन नामक एक सुचतुर सैनिक अफसरको बुलाकर उनसे परामर्श करना आरम्भ किया। १३ वीं मई को सेनापति रीडके बंगले पर सभा बैठी। निश्चय हुआ, कि इस गड़बड़ी के जमाने में पञ्जाब के सब शासक और सैनिक पुरुष एक साथ रहें। जेनरल रीड को सब सैन्य-दलों का अध्यक्ष बना दिया गया। साथ ही एक स्थायी सैनिक-दल भी संगठित हुआ और चेम्बरलेन साहब चीफ कमिश्नर-साहब से सलाह करने के लिये रावलपिण्डी भेजे गये। १६ वीं मई को वे वहां जा पहुंचे। इसी दिन प्रधान कमिश्नरकी आज्ञा-नुसार हर्बर्ट एडवर्डिस भी रावलपिण्डी की ओर रवाना हो गये।

सबसे मिल और सबकी बातें सुन कर चीफ कमिश्नर सर-जान लारेन्स ने बहुत से सिक्खों और अफगानों को अपनी सेना में भर्त्ती किया और पुलिस की संख्या और शक्ति बढ़ादी। स्थान-स्थान पर पुलिस का कड़ा पहरा रख दिया गया। खजाने की रक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया। प्रत्येक स्थान के शासक को सन्देहास्पद व्यक्तियों को फांसी पर लटका देने का अधिकार दे दिया गया।

कहते हैं, कि मुसलमानों की ओर से पञ्जाब के सिपाहियों को भड़कानेके लिये कितने ही पत्र भेजे गये थे। वे सब अधि-कारियों के हाथ पड़ गये। तोभी जनता में यह सन्देह घर कर

अभी निरस्त्र कर देना चाहिये। सबेरे ही यह काम करना निश्चय हुआ। बड़े तड़के उन दलोंके अधिनायकोंकी तलबी हुई। जब उन लोगों ने अपने दलों के निरस्त्र किये जाने की बात सुनी, तब बड़ी दृढ़ता के साथ इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा, कि इस का परिणाम यही होगा, कि ये सब सिपाही भी परेड के मैदान में ही उत्तेजित हो उठेंगे और खूनखराबी करने को तैयार हो जायेंगे। पर उन लोगों की कोई बात नहीं सुनी गयी। सिपा-हियों को निरस्त्र करना ही निश्चय रहा।

यथासमय सिपाही मैदान में कतार बांध कर खड़े हुए। गोरे सैनिक, हथियार बांधे, मौका पड़ते ही उन पर गोली छोड़ने के लिये तैयार हो, खड़े हो गये। सिपाहियों ने चुपचाप अपने अफसरों की बात मानली और एक स्थान पर अपने हथियार जमा कर दिये। उनके अफसरों को उनकी यह बेइज्जती बहुत बुरी लगी। यहां तक, कि कई अफसरों ने तो अपने हथियार भी उन्हीं के हथियारों के साथ रख दिये।

हथियार छिन जाने पर सब सिपाही चुपचाप छावनीमें चले आये। पर इस घटना का उन पर ऐसा शोकजनक प्रभाव पड़ा कि उनमें से कितने ही पहाड़ की तराइयोंमें भाग कर चले गये। कहीं ये पहाड़ी जातियों से मिल कर नयी आफत न उठादें, इस डर से उनकी गिरफ्तारी का हुक्म जारी हुआ। बेचारे बहुत से भगोड़े पकड़े गये। जिन गाँवों में वे छिपे हुए थे, वहाँ के लोगों ने उनको गिरफ्तार करवा दिया! बिना आज्ञा के छावनी छोड़ कर चले जाने के लिये उन पर मामला चलाया गया।

फैसले में एक सूबेदार को फांसी तथा एक हवलदार और दूसरे सिपाही को कैद का हुक्म सुनाया गया ; बेचारा सूबेदार सब के सामने ही फांसी पर लटका दिया गया !

इस घटना के बाद ५५ वीं पलटन को निरस्त्र करने का विचार हुआ। कर्नल हेनरी स्पाटिशउड इस सैन्यदल के अध्यक्ष थे। उन्होंने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया ; पर उनकी चान न रही। इधर सिपाही-दल को निरस्त्र करने के लिये गोरे सैनिक भी चले आये। अपने अधीनस्थ विश्वासी सिपाहियों का यह अपमान कर्नल स्पाटिशउड को असह्य हो उठा। उन्होंने अपने अकेले कमरे में जा, आप से आप अपनी जान दे दी।

कर्नल स्पाटिशउड के मरने से सिपाहियों को बड़ी चिन्ता

के पहाड़ी राजाओं से अपने धर्म के नाम पर सहायता मांगी और न मिलने पर वीरों की भांति डट कर युद्ध किया ; पर इस युद्धमें उन्हें जय न मिली। १२० आदमी मारे गये, १५० गिरफ्तार हुए तथा ३०० से ४०० तक मनुष्य घायल हो गये। जो स्वस्थ शरीर लिये भाग सके, वे सोवाट के प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा आखुन्दके पास पहुंचे और उनको धर्म-नाशक अँगरेजोंके विरुद्ध उभाड़ने लगे ; पर उन्होंने इनकी बात नहीं मानी—हाँ, इन्हें सिन्धु नदी के उस पार काश्मीर की ओर भेज दिया। काश्मीर के रास्ते में ही हजारा जिले के डिपटीकमिश्नर मेजर विचर ने उनका रास्ता रोक दिया। लाचार, वे काश्मीर न जाकर कोहिस्तान की ओर मुड़े ; पर यहां भी मेजर विचर के तैनात किये लोग उनकी राह रोके खड़े थे। राह की रुकावट, भोजन-वस्त्र का अभाव, वर्फिस्तान की ठण्ड की तकलीफें बर्दाश्त करते हुए भी वे दिलके कच्चे नहीं थे, इसलिये जब उन्होंने अपनी सब राहें बन्द देखीं और शत्रु उन पर हमला करने को भी तैयार हो गये, तब जहां तक बन पड़ा, वहां तक उन्होंने उनका मुकाबला किया, पर पीछे उन्हें भाग्य के सामने सिर झुका ही देना पड़ा और आत्म-समर्पण करने पर भी किसीको फांसी और किसीको गोली नसीब हुई ! यह तो हिन्दुस्तानी वीरों का ही धर्म है, कि शरणार्थी की जान नहीं लेते ; नहीं तो दुनियां में और कौन ऐसा करता है ?

जो १२० सिपाही गिरफ्तार हुए थे, उनमें से किसी को मृत्यु और किसी को कारावास का दण्ड दिया गया। बेचारों

का अपराध इतना ही था, कि वे डरकर छावनी से भाग गये थे। नहीं तो उन्होंने न किसी अफसर को मारा था, और न किसी का घर जलाया था। पर उस समय जैसी अन्धेर-नगरी थी, उसको देखते हुए तो यही गनीमत मालूम होता है, कि सब लोग तोप से नहीं उड़ा दिये गये। सरजान लारेन्स का हुक्म था, कि कमसे कम इन क़ैदियों में से एक चौथाई अवश्य फांसी पर लटका दिये जायें, नहीं तो सभी हिन्दुस्तानी बाग़ी हो जायेंगे।

थे ; पर किसी का किया कुछ न हो सका—सब महज तमाशाई की तरह वह भयानककाण्ड देखते रह गये। इससे लोगों के दिल पर अँगरेजों का पूरा रोब छा गया और सब के सब डर गये। अँगरेजों का उद्देश्य सिद्ध हुआ। पर यदि वे उन बेचारों का खूने-नाहक न करके उन्हें सैनिक नियम को तोड़ डालने के अपराधों में ही कैद कर देते, तो भी वह उद्देश्य पूरा हो सकता था ; पर उस समय तो अँगरेजों के सिर पर सिपाहियों की ही तरह खून सवार था। वे भला इस यज्ञ में सिपाही-पशुओं की बलि दिये बिना कैसे मानते?

सोवाक-नदी के तीर पर आबजाई नामक स्थान के दुर्ग में ६४ वीं पलटन के सिपाही मौजूद थे। निकोलसन साहब जिस दिन भागे हुए सिपाहियों का पीछा करने निकले थे, उसी दिन उन्हें पता लगा, कि आजुनखाँ नामक एक प्रसिद्ध साहसी अफगान यहाँ आया हुआ है और उक्त पलटन के सिपाहियों को उभाड़ रहा है। यह खबर पाते ही उन्होंने उक्त पलटन के भी हथियार छीन लेने का हुक्म दिया।

अवध पर अँगरेजों का अधिकार हो जाने से सभी मुसलमान बिगड़े हुए थे। उन्हें भय हो रहा था, कि कल हैदराबाद का भी यही हाल होगा। फिर तो मुसलमानों की अमलदारी कहीं न रह जायेगी। इसी से बहुतसे पहाड़ी मुल्कों में रहनेवाले मुसलमान अँगरेजों पर आफत ढाने की धुन में थे। उक्त आजुनखाँ भी उनमें एक था। सिडनीकाटन की कुशलता ने उसकी एक न चलने दी और उसे अपने स्थान को लौट

जाने को विवश किया। इधर आवजाई-दुर्ग के सैनिकों के हथि-
यार भी छीन लिये गये।

जालन्धर-विभाग के कमिश्नर मेजर लेक मेरठ और दिल्लीकी
दुर्घटनाओं के समय-जालन्धर में नहीं थे। वे जब लौटे, तब
उन्होंने सिपाहियों को बहुत ही असन्तुष्ट देखा, इसलिये उन्होंने
चाहा, कि इनके हथियार छीन लिये जायें; परन्तु अफसरों ने
उनकी यह राय पसन्द नहीं की। इस लिये उनके हथियार
नहीं छिने; पर साथ ही उन्हें सन्तुष्ट करने का भी कोई उपाय
नहीं किया गया।

सिपाहियों को भी अपने साथ लिये चलें। इसी मतलब से उन्होंने पहले फिलोर के सिपाहियों को भी खबर भिजवायी। इसके बाद वे रात के एक बजे जालन्धर से चल दिये। ब्रिगेडियर जान्स्टन तुरत उनका पीछा करने के लिये गोरे सैनिकों-को न भेज सका। दूसरे दिन सात बजे सुबह में उनके आदमी भागे हुए सिपाहियों की खोज में चले; पर कहीं पता न पा; अपनासा मुंह लिये लौट आये।

इसी समय खबर उड़ी, कि फिलोर का रंग भी बेरंग हो रहा है; बस एक अँगरेज सेनाध्यक्ष दो तोपों और कुछ गोरे सैनिकों को साथ लिये हुए फिलोर की ओर चल पड़े। उनके साथ पञ्जाब का २ नं० का घुड़सवार दल भी था। वहाँ पहुँच कर उन्होंने सुना, कि यहाँ के अफसर तो किले में हैं और सिपाही शायद सतलज पार कर गये होंगे। कुछ ही देर बाद जालन्धर के सिपाही भी आ पहुंचे। अँगरेज सेनापति समझ न सके, कि इस समय क्या करना ठीक है? वे इसी सोच-विचार में रह गये और भागने वाले आसानी से निकल भागे। इधर जालन्धर के सिपाही यहाँ आकर सतलज के उस पार पहुंचने की चेष्टा करने लगे।

उस समय लुधियाने के सहकारी कमिश्नर थर्नटन साहब सिपाहियों का वेतन देने के लिये वहां आये हुए थे। उन्होंने जब उनके भाग जाने का हाल सुना, तब झटपट एक घोड़े पर सवार हो, सतलज के किनारे पहुँचे और उसका पुल तोड़ डाला। पुल टूट जानेसे सिपाहियोंको और कई मील दूर जाकर पार पहुंचने

की कोशिश करनी पड़ी। इसके बाद उन्होंने लुधियाने पहुंच कर देखा कि वहांके डिपुटी कमिश्नर मि० रिकेट्स जालन्धर की खबर पाकर लुधियानेकी रक्षा का उपाय कर रहे हैं। उन्हें भय था कि कहीं दिल्ली जाते जाते ये सिपाही लुधियानेमें लङ्का-दहन-लीला न दिखादें। इधर खुद लुधियानेकी सेनामें ही भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी। इसलिये डिपटी कमिश्नर घबरा रहे थे कि जालन्धरके सिपाही सतलज न पार करें तो अच्छा है। इसी समय डिपटीकमिश्नरकी प्रार्थनाके अनुसार नाभाके राजाने उनके पास दो तोपें और कितने ही घुड़सवार तथा पैदल सिपाही भेज दिये। उन्हें लिये हुए वे जालन्धरके सिपाहियोंके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये चल पड़े।

उन्हें पता लगा कि थनर्टन साहबने पुल तुड़वा दिया है इसलिये सिपाही और ४ मील पीछे हट गये तथा जहां नदीकी धार पतली और पाट कम है वहींसे पार उतरनेकी चेष्टा कर रहे हैं। यह समाचार पा वे लौट आये और लेफ्टिनेण्ट विलियम्स भी सिपाहियोंको लिये हुए सिपाहियों के आनेकी राह देखने लगे। प्रायः १५०० सिपाही सतलज के इस पार आये। आते ही इन्हें अंगरेज सैनिकों से युद्ध करना पड़ा। अंगरेजोंकी तरफसे सिक्ख भी अपने भाई बन्धुओंको मारने लगे! भारतवासियों की ही सहायता से अँगरेजी राज्य की यहां जड़ जमी, और जब वह जड़ हिलने लगी, तब भी हिन्दुस्तानी ही उसके [illegible] आगे और तनख्वाह की बदौलत ने अपने भाइयों का [illegible] करने [illegible] [illegible]। अंगरेजों के पास तोपें थीं—वे उनसे सिपाहियों [illegible]

बरसाते रहे और सिपाही केवल बन्दूकों के ही बल पर उनके हमले को रोकते हुए उनके ऊपर गोलियों की बौछार करने लगे। दो घंटों तक खूब जम कर युद्ध हुआ। अँगरेज़ों के छक्के छूट गये, सिक्ख पस्तहिम्मत हो गये, नाभा के सिपाही नौ दो ग्यारह हो गये। डिपटी कमिश्नर हिकेटस और सेनापति विलियमस भी टूटे हुए दिलसे लौट कर छावनी में चले आये।

इस प्रकार शत्रुओं को हराकर उत्तेजित सिपाही और भी जोश में आ गये और बड़ी तेजी के साथ लुधियाना-नगरमें पिल पड़े। किले के सिपाहियों के भी जीमें जोश भर आया। शहर के गुण्डे-बदमाश, यह मौका देख, लूट-पाट करने के लिये घरसे बाहर निकल आये। देखते-ही-देखते सारे शहर में उत्पात मच गया। बहुत से ऐरे-गैरे और अवारा लोग लुधियाने को आबाद किये हुए थे, अबके उनकी बन आयी। सबके सब अँगरेज़ों को मटियामेट करने के लिये कमर कस कर मैदान में आये। बहुतसे काबुली भी लूट-तराज करने लगे। सरकारी गोदाम तथा अमेरिकन पादरियों के घर-द्वार लूटने के बाद ये लोग गिरजों में आग लगाने लगे। छापाखाना नष्ट कर दिया गया। कैदखाना तोड़ कर कैदी भगा दिये गये। व्यवसायी लोग सिपाहियों के डर के मारे उन्हें रसद पानी पहुंचाने लगे। दूकानदारोंने दूकानें बन्द कर दीं। महाजनोंने अपने रुपये जमीन में गाड़ दिये। सारे शहर में अराजकता छा गयी। सर्व-साधारण सिपाहियों की पूरी सहायता करने लगे। सारा दिन लूट पाट जारी रही। युरोपियन लोग पद पद पर प्राण-

भयसे कम्पित होते रहे पर कुशल हुई, जो किसी की जान नहीं गयी। शाम होते न होते बलवाई लुधियानेसे बाहर हो गये और दिल्ली की ओर रवाना हो गये।

यद्यपि अंगरेजोंकी कम हानि नहीं हुई, तथापि सिपाहियोंके शीघ्र चले जाने से उनको चैनकी सांस लेनेका मौका मिल गया। उस समय लुधियानेमें गोरे सैनिकोंका पता भी नहीं था। इस लिये यदि सिपाही यहांके किलेपर कब्जा कर लेते तो आसानी से उनका काम बन जाता और अँगरेजोंकी भविष्यमें और भी हानि होती। पर उस समय सिपाहियोंने इन सब दूरकी बातों का विचार नहीं किया। यदि उनका कोई चतुर सेनापति होता तो इस स्थानको कभी न छोड़ता और किलेको अपने हस्तगत किये बिना न रहता।

इसके वाद लुधियाने के सिपाहियों के हथियार छीन लेने का हुक्म जारी हुआ। जालन्धर के गोरे सिपाहियों की सहायता से डिपटीकमिश्नरने यह काम सहजमें ही पूरा कर डाला। जो लोग इधर-उधर छिपे पड़े थे, उन्हें पास पड़ोस के राजा-रजवाड़ों और जमीन्दारों ने अँगरेजों के हाथ में सौंप दिया। जो लोग घरों में हथियार रखे हुए थे, उनके हथियार छीने जाने लगे। सरकार की तरफ से घोषणा कर दी गयी, कि कोई अपने पास हथियार न रखे। जिसके पास हथियार पाये जायेंगे, उसे सजा दी जायेगी। इस हुक्म के जारी होने से लोगों में और भी जोश फैला।

इस प्रकार लोगों को वेहथियार कर, अँगरेजों की तरफ से दिल्ली की छावनी के अँगरेजों के लिए युद्ध-सामग्रियां भेजी जाने लगीं। पटियाला, झिन्द और नाभा के राजाओं ने इस काम में अँगरेजों की पूरी सहायता की।

इसी समय अँगरेजों ने सीमान्त-प्रदेश के युद्ध-कुशल और हट्टे-कट्टे जवानों को अपनी सेना में भर्त्ती करना शुरू किया। कप्तान डेली इन नये सैनिकों के अध्यक्ष बनाये गये। १३ वीं मई को ये लोग नौशहरा पहुंचे और सेनापति काटन के हुक्म से फिर अटक चले आए। वहां का किला इन्हीं के करते सुरक्षित रहा। १६वीं मईको उन्हें फिर वहां चलकर १८वींको रावलपिण्डी पहुंचना पड़ा। यहीं पर कप्तान डेली को आज्ञा मिली, कि झट अपने सैनिकों के साथ दिल्ली चले जाओ। लाचार, वे तुरत रवाना हो गये। रास्ते में उन्हें लुधियाने में ठहरना पड़ा।

५वीं जून को अम्बाले और ६ठी जून को करनाल में उनका डेरा पड़ा। वहां पर दिल्ली से भागे हुए बहुत से अँगरेज छिपे हुए थे। उन्होंने कप्तान डेली से मिल कर कहा, कि वहां के आस पास के गांवों में बहुतसे विद्रोही छिपे हुए हैं। सम्भव है, कि ये लोग किसी दिन हम लोगों को लूट मार कर खदेड़ दें; यह सुन, कप्तान डेली ने पास पड़ौस के गांवों को चौपट करने का इरादा कर लिया। हो सकता है, कि उन गांवों में कुछ उत्तेजित मनुष्य रहे हों; पर उन थोड़े से लोगों के अपराध के लिए सारे गांव के गांव को तबाह करना; कितना बड़ा अन्याय था, यह साफ समझ में आ जाता है; पर उस समय अँगरेजों के सिर ऐसे फिरे हुए थे, कि उन्हें न्यायान्याय की ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता था। इसीसे कप्तान डेली ने बिना आगा-पीछा देखे, झट अपने सैनिकों को गांवों पर हमला करने का हुक्म दे दिया। इस प्रकार एकाएक बेचारे गांववालों पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा।

इस प्रकार ग्रामों को जलाने के पुण्य में सम्मिलित हो रहने के कारण कप्तान डेली ठीक समय पर दिल्ली न पहुंच सके। वे ६ वीं जून को वहाँ पहुंचे और उसी दिन उन्हें बलवाइयों से युद्ध करना पड़ा। उनके सैनिकों ने बलवाइयों को पीछे हटा दिया। इस युद्ध में उनके एक सहकारी सेनापति की मृत्यु हुई। उसे जिसने मारा था, उसे मेहरवानसिंह नामक एक गुर्खे ने तलवार से मार डाला।

कप्तान डेली की कार्रवाइयों को देख यही मालूम होता है कि उस समय अँगरेज सारे हिन्दुस्तान को खाली देखकर ही शायद सन्तुष्ट होते। भारतवासियों की जान का कोई मूल्य ही नहीं रह गया था। उन्हें कुत्ते बिल्लियों की तरह मार डालने में ही उन्हें मजासा मालूम होता था और एक के अपराध पर सौ दोसौ को दण्ड देना ही उस समय उनका दैनिक कार्य हो रहा था। उस समय वे न किसी का रोना सुनकर पसीजते न किसी का गिड़ गिड़ाना सुनकर दया दिखलाते—उलटे प्रार्थना करनेवालों की जान मार कर उन्हें संसार के सब झंझटों से सदा के लिए छुटकारा दे देते थे।

हाँ कुछ स्त्रियों और बच्चों को उन्हों ने बचाया था; पर यह बचाना सिर मुँड़ाकर बालों की रक्षा करने के समान ही था; क्योंकि जिन घरों के सिरपरस्त ही न रहे, उनकी स्त्रियों और बालक बालिकाओं की रक्षा ही हुई, तो क्या हुआ?

बारहवां अध्याय।

दिल्ली और बहादुरशाह।

हम पहले किसी अध्याय में लिख आये हैं, कि दिल्ली से कुछ दूर एक स्थानपर दिल्ली के उद्धार के लिये आयी हुई अँगरेजी सेना की छावनी थी। उस स्थानपर ग्वालियर के दौलतराव सिन्धिया की पत्नी का एक मकान था, जो हिन्दू-राव का बँगला कहलाता था। उसी में उनके भाई फ़ौजीराव भी रहते थे। वे बिलकुल साहबी ठाट बाट वाले आदमी थे। इसलिए उन्होंने बंगले को साहबी ढङ्ग से सजा रखा था। उस दिन वह मकान बिलकुल खाली था। अँगरेज सेनापति ने उसी में अपना डेरा डाला। सेना के बहुत से अफसर उसी में रहने लगे।

सिपाही और २२ तोपें थीं। इनके सिवाय पञ्जावसे आये हुए सिपाही और गुर्खा फौज भी थी। इधर वलवाइयोंकी संख्या इनसे कहीं अधिक थी। उनके पास हथियारों की भी कमी नहीं थी। इसी लिये सिपाहियों ने वार वार अंगरेजों को यहांसे भगा देनेकी चेष्टा की। १२ वीं जूनको उन्हों ने एक वड़ा भयानक हमला अँगरेजों पर किया, पर हरा दिये गये।

इसके वाद १७ वीं जूनको दूतों ने आकर खवर दी कि सिपाही किशनगञ्ज नामक गांवमें "वैटरी" लगा रहे हैं और वहींसे अंगरेजों की छावनी उड़ा देने की चेष्टा में है। यह समाचार पाते ही लेफ्टिनेण्ट टूम्स और मेजर रोड थोड़े से सैनिकों को लिये हुए वहां जा पहुंचे और "वैटरी" को नष्ट कर सिपाहियों को मार भगाया। ३०० सिपाही हताहत हुए। अँगरेजों की ओर केवल ३ मरे और १२ घायल हुए।

क्रमशः दिल्लीमें वलवाइयों की संख्या वढ़ने लगी। रोज ही इधर उधर के उत्तेजित सिपाही आ आकर दिल्ली में जमा होने लगे। १९ वीं जून को उन्हों ने फिर वड़ा भयङ्कर आक्रमण अंगरेजी छावनी पर किया। उनकी तोपों ने अंगरेजों के छक्के छुड़ा दिये। सारा दिन युद्ध होता रहा—क्रमशः अँधेरी रात हो आयी। पञ्जाव से आये हुए कप्तान डेली घायल हुए। कितने ही मरे तथा आहत हुए। अँगरेजों की चिन्ताका वार-पार न रहा।

२२ वीं जून को ८५० सैनिक तथा ५ तोपें और पञ्जाव से आ पहुँची। इस कुमुक के आने से अँगरेजों का वल वढ़ा

सही ; पर उधर जालन्धर और फिलौर के सिपाहियों के दिल्ली आ जाने से बलवाइयों की भी बलवृद्धि हो गयी।

२३ वीं जूनको सिपाहियों ने अपना पूर्ण पराक्रम दिखाने का निश्चय कर लिया था। सौ वर्ष पहले आज के ही दिन अंगरेजों ने पलासीके मैदानमें सिराजुद्दौलाको पराजित कर अंगरेजी सल्तनतकी नींव डाली थी। कुछ पत्रा-पण्डितों ने सिपाहियों से कह रखा था कि बस आज के ही दिन अंगरेजी राज्य का अन्त हो जायेगा। इसी लिये सिपाहियों के दिल खूब बढ़े हुए थे। उन्होंने सब्जीमण्डी के पास आकर अंगरेजों

वर्नार्ड इतने पर भी दिल्ली पर धावा बोलनेके लिये प्रस्तुत न हुए। वे अपनी शक्तिको बलवाइयों के सामने अत्यन्त क्षीण समझ कर चुप रहे। केवल छोटी-मोटी लड़ाइयां होती रहीं। —दिल्लीपर अधिकार करनेकी चेष्टा नहीं हुई। इस प्रकार समस्त जून महीनेमें सिपाहियों के कोई ३० आक्रमण हुए।

५ वीं जुलाईको सर हेनरी वर्नार्ड को हैजा हो गया और वे उसी दिन मृत्युको प्राप्त हो गये। उनके मरने पर सेनापति का कार्य-भार जेनरल रीडको सौंपा गया पर वे भी तुरत ही बीमार होकर अम्बाले चले गये और ब्रिगेडियर विलसन सेनापति बनाये गये। इसी समय ६०० सैनिकों की सहायता और भी आ पहुँची, पर इधर बरेलीके प्रसिद्ध बलवाई बख्तखां के अधीन ४००० चार हजार नये बलवाई दिल्ली आ पहुंचे। यहां आते ही बख्तखां दिल्लीके बादशाह की ओर से सिपहसालार मुकर्रर कर दिया गया। इसी समय झांसी, राजपूताना पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशके भिन्न भिन्न स्थानों से और भी बहुतसे बलवाई दिल्लीमें आ पहुंचे। बलवाइयोंकी इस बलवृद्धिका वृतान्त सुन सुनकर सेनापति विलसन बड़े व्याकुल हो उठे।

अबकी बारके सिपाहियोंने दिल्ली और पञ्जाबके बीच अँगरेजों के लिये सिपाहियों और रसद-पानीका आना-जाना रोक देने की चेष्टा की ; पर यह चेष्टा विफल हुई। इसके बाद उन्होंने लगातार कई और हमले अँगरेजी छावनी पर किए ; पर कुछ नतीजा न निकला। इधर अँगरेज भी दिल्ली को हाथ में करने का कोई प्रयत्न न कर सके।

इन्हें इस तरह एक प्रकार से अकर्म्मण्य की भांति दिल्ली के पड़ोस में बैठे देख कर सर जानलारेन्स उकता उठे। उन्होंने बड़े याट लार्ड केनिङ्ग से पूछा, कि यदि आप की राय हो, तो मैं पेंशावर से कुछ सैनिक लिये हुए दिल्ली पहुंच जाऊँ और नगर पर झटपट अधिकार कर लूं; पर लार्ड केनिङ्ग ने उनकी बात नहीं मानी। यही ठीक भी हुआ; क्योंकि यदि वे पेशावर से चल देते, तो अफगान और अफरीदी बलवाई हो उठते और कर्नल निकोलसन के कड़े हाथों ने पञ्जाब में जो शान्ति स्थापित कर दी थी, वह फिर भङ्ग हो जाती।